

ISSN 2349-638x
Impact Factor 7.149

AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY
RESEARCH JOURNAL

PEER REVIEW & INDEXED JOURNAL

Email id : aiirjpramod@gmail.com

www.aiirjournal.com

SPECIAL ISSUE No. 100

हिंदी साहित्य में संवैधानिक मूल्य

मुख्य संपादक

प्रा. प्रमोद तांदळे

SPECIAL ISSUE PUBLISHED BY

AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY
RESEARCH JOURNAL

Peer Review & Indexed Journal | Impact factor 7.149

Email id : aiirjpramod@gmail.com

www.aiirjournal.com

Mob.8999250451

अतिथि संपादक

डॉ. राम चाघ

प्राचार्य

कै. व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय,
बाभळगाव

कार्यकारी संपादक

प्रो. डॉ. रणजीत जाधव

हिंदी विभागाध्यक्ष

कै. व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय,
बाभळगाव

सह-संपादक

प्रा. डॉ. मा. ना. गायकवाड

हिंदी विभाग

कै. व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय,
बाभळगाव

No part of this Special Issue shall be copied, reproduced or transmitted in any form or any means, such as Printed material, CD – DVD / Audio / Video Cassettes or Electronic / Mechanical, including photo, copying, recording or by any information storage and retrieval system, at any portal, website etc.; Without prior permission.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal

ISSN 2349-638x

Special Issue No.100

26th Nov. 2021

Disclaimer

Research papers published in this Special Issue are the intellectual contribution done by the authors. Authors are solely responsible for their published work in this special Issue and the Editor of this special Issue are not responsible in any form.

संपादकीय

आजादी के अमृत महोत्सव एवं संविधान दिवस के उपलक्ष्य में महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादेमी तथा कै. व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय बाभलगांव ता. जि. लातूर के संयुक्त तत्वावधान में 26 नवंबर 2021 को 'हिंदी साहित्य में संवैधानिक मूल्य' विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन कर राज्य तथा देश के प्रमुख चिंतकों के शोधालेखों को आमंत्रित कर उसे प्रकाशित करना एक साहित्यिक उपलब्धि है।

समता, बंधुता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय हमारे प्रमुख संवैधानिक मूल्य हैं। इन संवैधानिक मूल्यों के लिए ही साहित्य का अधिकतर लेखन होता है। आदिकाल से लेकर आधुनिक साहित्य में संवैधानिक मूल्यों पर विपुल मात्रा में लेखन हुआ है। भक्ति कालीन संत हो या आधुनिक कालीन लेखक और कवियों ने समता, बंधुता, स्वतंत्रता और न्याय का ही संदेश दिया है। संत नामदेव, कबीर, रैदास, तुलसीदास या आधुनिक कालीन लेखकों में जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, यशपाल, हरिवंश राय बच्चन, महादेवी वर्मा, दिनकर एवं धूमिल के साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। संवैधानिक मूल्यों को अंगीकृत करने से ही एक सुदृढ़, संपन्न एवं प्रगत समाज का निर्माण होगा। संविधान का मूल उद्देश्य जाति, वर्ण, वर्ग तथा शोषण रहित समाज की स्थापना करना है। संविधान की शुरुआत ही 'हम भारत के लोग' शब्दों से हुई है। इसमें सभी के लिए समान अधिकार हैं ना कोई छोटा है ना बड़ा। सब एक समान है। हम इस वर्ष आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। यह महोत्सव मनाते समय हमें यह विचार करना चाहिए कि क्या हमारे देश में आज सही अर्थों में समता, बंधुता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय स्थापित है। इसका उत्तर है नहीं। आज भी हमारे देश में आर्थिक एवं धार्मिक विषमता एवं ऊंच-निचता की समस्या दिखाई देती है। आओ हम सब मिलकर एक सुदृढ़, संपन्न एवं बलशाली भारत निर्माण के लिए प्रयास करें।

धन्यवाद !

Special Issue Theme :- हिन्दी साहित्य में संवैधानिक मूल्य (Special Issue No.100) ISSN 2349-638x Impact Factor 7.149			26 th Nov. 2021
Sr. No.	Name of the Author	Title of Paper	Page No.
1.	डॉ. मनोज पाण्डेय	समकालीन कथा साहित्य में संवैधानिक मूल्य	1
2.	प्रो. (डॉ) सतीश यादव	संवैधानिक मूल्यों के टूटने की कसक : 'राग दरबारी'	4
3.	डॉ. कुमार बनसोडे	समकालीन हिन्दी कविता में सामाजिकता एवं मूल्य	11
4.	प्रा. अमोल रमेश इंगले	ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सपना' कहानी में व्यक्त धार्मिक भेदभाव का चित्रण	15
5.	डॉ. मा. ना. गायकवाड	बाइसवी सदी उपन्यास में संवैधानिक मूल्य	18
6.	प्रो. डॉ. एम. डी. इंगोले	वामनदादा कर्डक के काव्य में सामाजिक समता	21
7.	कैप्टन डॉ. प्रो. अनिता मधुकरराव शिंदे	'निर्माणों के पावन युग में', इस कविता में संवैधानिक मूल्य	24
8.	प्रो. डॉ. बबनराव रंभाजीराव बोडके	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नव सामाजिक मूल्य	26
9.	डॉ. पवन नागनाथराव एमेकर	आशीर्वाद कहानी और संवैधानिक मूल्य	29
10.	प्रा. डॉ. विजय गणेशराव वाघ	हिन्दी साहित्य में संवैधानिक मूल्य सूफीमत के परिप्रेक्ष्य में	31
11.	प्रा. डॉ. वसंत गाडे	समकालीन हिन्दी कविता में मानव जीवन और बदलते संवैधानिक मूल्य	34
12.	डॉ. पुष्पा गोविंद गायकवाड	संत साहित्य में संवैधानिक मूल्य	40
13.	प्रा. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड	हिन्दी दलित उपन्यासों में संवैधानिक मूल्य	47
14.	प्रा. बाळासाहेब संभाजी कावळे	गिरिराज किशोर के उपन्यास में लोकतंत्रिक मूल्य की समिक्षा	51
15.	प्रो. अशोक मर्डे	अधिकार एवं समता की प्रखर दहाड - 'गूंगा नहीं था मैं'	55

Special Issue Theme :- हिन्दी साहित्य में संवैधानिक मूल्य (Special Issue No.100) ISSN 2349-638x Impact Factor 7.149			26 th Nov. 2021
Sr. No.	Name of the Author	Title of Paper	Page No.
16.	श्री. संतोष शिवराज पवार	हिंदी उपन्यास साहित्य में नव संवैधानिक मूल्य : शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलंबन	60
17.	डॉ. अयुबखान गुलाबखान पठाण	मध्ययुगीन काव्य में संवैधानिक मूल्य (विशेष कवि संत कबीर)	63
18.	डॉ.सूर्यकांत शिंदे	सांप्रदायिक सौहार्द और मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य	68
19.	डॉ.अशोक एम.पवार	हिन्दी की दलित कविता में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा विषयक चिंतन	72
20.	डी. बी. केंद्रे	राजेन्द्रयादव के कथा साहित्य में संवैधानिक मूल्य	76
21.	डॉ.धीरज जनार्दन व्हते	राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक भावना का चित्रांकन - 'जय भारत'	79
22.	प्रा.डॉ. सादिकअली हबीबसाब शेख	गोदान में राष्ट्रीय एवं समतावादी चेतना	82
23.	प्रा. विद्या बाबूराव खाडे	मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबुतरी' में संवैधानिक मूल्य	85
24.	प्रा.डॉ.वीरश्री वशिष्ठजी आर्य	मध्यकालीन संत काव्य में संवैधानिक मूल्य	87
25.	डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ	महानगरीय जीवन में बदलते मानव मूल्य उपन्यास 'तिसरा आदमी'	90
26.	प्रा. संतोष येरावार	सलाम आखरी उपन्यास में सामाजिक न्याय को तरसती वैश्या	95
27.	प्रा. डॉ. मोहन मुंजाभाऊ डमरे	अज्ञेय की कहानियों में संवैधानिक मूल्य	99
28.	डॉ.मजीद शेख	शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की पौराणिक नाट्याभिव्यक्ति : एक और द्रोणाचार्य	103
29.	एन.एस. भंडेकर	जहीर कुरेशी की गज़लें: धार्मिक संवेदना	108
30.	डॉ मुकुंद कवडे	धूमिल के काव्य में संवैधानिक मूल्यों का चित्रण	112

Special Issue Theme :- हिन्दी साहित्य में संवैधानिक मूल्य (Special Issue No.100) ISSN 2349-638x Impact Factor 7.149			26 th Nov. 2021
Sr. No.	Name of the Author	Title of Paper	Page No.
31.	डॉ. जयंत ज्ञानोबा बोबडे	हिंदी दलित साहित्य : मानव अधिकारों की पहल	116
32.	डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे	दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक संकुचितता	122
33.	प्रा सौ. डॉ. विजया जगन्नाथ पिंजारी-शिंदे	फणीश्वरनाथ रेणु के कथासाहित्य में सामाजिक चेतना	126
34.	प्रा. डॉ. दत्तात्रय लक्ष्मण येडले	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में संवैधानिक मूल्य	130
35.	पूनम यादव डॉ. अनिल ढवळे	रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में चित्रित - संवैधानिक मूल्य	135
36.	डॉ. हणमंत पवार	रैदास और समतामूलक समाज	139
37.	डॉ. वनिता बाबुराव कुलकर्णी	आदिवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार	142
38.	प्रा. निर्मला लक्ष्मण जाधव	गिरिराज किशोर के उपन्यास में संवैधानिक मूल्य	147
39.	डॉ. शिवाजी नागोबा भदरगे	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी दलित कविता में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति	151
40.	डॉ. विनोदकुमार विलासराव वायचळ 'वेदार्य'	मनीषा कुलश्रेष्ठ रचित उपन्यास 'शिगाफ' में चित्रित संवैधानिक मूल्य	154
41.	प्रा. के.एच. वाघमारे	श्यामनारायण पांडेय के काव्य में सांस्कृतिक तत्व	158
42.	डॉ. सचिन कदम प्रा. परमेश्वर माणिकराव वाकडे	स्वतंत्रता पूर्व हिंदी काव्य में संवैधानिक मूल्य	163
43.	प्रो. महेबूब मंगरूले	संवैधानिक मूल्यों से ओतप्रोत : भुवनेश्वर उपाध्याय की कविताएं	167
44.	प्रा. डॉ. जयराम श्री. सूर्यवंशी	समकालीन हिंदी गज़ल और संवैधानिक मूल्य (विनय मिश्र का गज़ल संग्रह 'सच और है' के विशेष संदर्भ में)	171
Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (ISSN 2349-638x) Peer Reviewed Journal www.aiirjournal.com Mob. 8999250451			3

Special Issue Theme :- हिन्दी साहित्य में संवैधानिक मूल्य (Special Issue No.100) ISSN 2349-638x Impact Factor 7.149			26 th Nov. 2021
Sr. No.	Name of the Author	Title of Paper	Page No.
45.	डॉ. मनोहर भंडारे	सामाजिक न्याय की धरोहर निर्मला पुतुल की कविता	174
46.	प्रा.डॉ. शेख मुख्त्यार शेख वहाब	सामाजिक समरसता के संवाहक : संत रविदास	179
47.	डॉ. गोरख प्रभाकर काकडे	साहित्य, समाज का नैतिक दायित्व एवं संवैधानिक मूल्य	184
48.	डॉ. शहेनाज अहेमद शेख	हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी दृष्टिकोण	188
49.	श्री. हिरामण देवराम टोंगारे	हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श	193
50.	डॉ. विरनाथ पांडुरंग हुमनाबादे	हिंदी नाट्य साहित्य एवं संवैधानिक मूल्य	197
51.	प्रा डॉ विश्वनाथ किशनराव भालेराव	हिंदी साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति	200
52.	डॉ. मृगेन्द्र कुमार राय श्रीमती गौतमी अनुप पाटील	लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में अभिव्यक्त संवैधानिक मूल्य (रक्त कमल , एक सत्य हरिश्चंद्र एवं गंगामाटी नाटक के विशेष संदर्भ में)	204
53.	प्रो. डॉ. रणजीत जाधव	समतामूलक समाज के महान स्वप्न दृष्टा संत रैदास	213

समकालीन कथा साहित्य में संवैधानिक मूल्य

डॉ. मनोज पाण्डेय

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

मानव मूल्यों का संबंध सभ्यता के विकास से जुड़ा हुआ माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि जैसे-जैसे मानव सभ्य होता गया, वैसे-वैसे वह सुसंस्कृत भी बनता गया, उसमें मानवीय गुणों का विकास होता गया, मानव में सामुदायिक भावना का विकास होता गया। उसके सामुदायिक भावना का आधार मूल्य चेतना ही थी। मानवीय मूल्यों के विकास से ही समाज व्यवस्थित हुआ। मानव अन्य जीवधारियों से विशिष्ट और सृष्टि के सबसे विकसित प्राणी के रूप में स्थापित हुआ। अर्थात् मनुष्य की मूल्य चेतना ही उसके विकास के विविध सोपानों को तय करने का आधार रही है। मनुष्य की मनुष्यता और महत्ता को आलोकित करने वाले मान-मूल्य ही उसके जीवन आधार बने हैं। मूलभूत मानवीय गुणों दया, क्षमा, ममता, करुणा, परोपकार, प्रेम, अपरिग्रह भावना, भाईचारा आदि-आदि मानव मूल्य के रूप में स्थापित होते गए। इन मूल्यों को मानव मेधा ने सदैव बनाए-बचाए रखने और बढ़ाने की कोशिश की।

आधुनिक काल के पूर्व विशेषकर मध्यकाल में समस्त जगत का नियंता मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था, समस्त मानवीय मूल्यों का स्रोत वहीं था। यहां तक कि मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य और जीवन की सार्थकता इसी में थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे। किंतु आधुनिक काल में ज्ञान - विज्ञान के आविष्कार से उस तर्कातीत मूल्य व्यवस्था और उसके नियंता मानवोपरि सत्ता के अस्तित्व पर सवाल उठने लगे, मनुष्य की गरिमा का नए स्तर पर उदय हुआ और माना जाने लगा कि सृष्टि का नियंता स्वयं मनुष्य है। वह अपने में स्वतः सार्थक और मूल्यवान है। यहां से मनुष्य को केंद्रीय स्थान प्राप्त होता है। यद्यपि मध्यकालीन संतों के यहां यह भावना कभी-कभी उदित हुई थी किंतु इसे अधिक महत्व नहीं प्राप्त हो सका था। आधुनिक काल में मनुष्य की मूल्यवत्ता स्थापित होने से ही मानव मूल्यों को लेकर चेतना का निर्माण होता गया और मनुष्य की गरिमा की रक्षा का भाव प्रबल होता गया। किंतु इसी आधुनिक दौर में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती रही हैं जिसमें अपनी नियति के, इतिहास निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूटे हुए लगते हैं, मनुष्य दिनोंदिन निर्थकता की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है। मानवीय गरिमा का क्षरण इस दौर में बड़ी तेजी से हुआ है। मानव मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। मनुष्य की ही दुर्दम नीतियों के कारण समाज में विश्रृंखलता व्याप्त हुई है। पर साथ ही, समग्र मानव समाज के अस्तित्व को स्वीकारने-समझने का भाव भी प्रबल हुआ है।

आजादी के बाद भारतीय संविधान में मानवीय गरिमा को सुरक्षित - संरक्षित और संपोषित करने के उद्देश्य से मूलभूत मानव मूल्यों को तरजीह दी गई है। समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता, एकता, भाईचारा और विश्वास बढ़ाने-बनाने के लिए ऐसे मूल्यों की प्रतिष्ठापना की गई है जिनसे लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सके। इन मूल्यों का समाज संचालन में तो महत्व है ही, मानव समाज को गरिमामय जीवन प्रदान करने में भी उल्लेखनीय भूमिका है।

साहित्य समाज का चित्रण होता है। समाज जीवन की विभिन्न स्थितियों को साहित्य के माध्यम से समझा जा सकता है। सामाजिक सोच-विचार-व्यवहार तथा सभ्यता और संस्कृति को संजोने - बरतने का एक विश्वसनीय माध्यम है साहित्य। कहा जाता है कि मूल्य किसी भी समाज की सभ्यता और संस्कृति की नींव है। समाज और संस्कृति के संदर्भ में मूल्यों की भूमिका असंदिग्ध है। कहते हैं साहित्य मानव को सही अर्थों में जीना सिखाता है और जीवन की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त और सर्वोत्तम माध्यम है। साहित्य में सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति प्रबल रूप में होती है। इसलिए साहित्य से यह अपेक्षा होती है कि वह समाज के दिग्दर्शक की भूमिका

निभाए। भारतीय संविधान के शिल्पकार डॉ बाबासाहेब आंबेडकर ने 1932 में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए एक भाषण में कहा था "मुझे देश के लिए इंजीनियर चाहिए, वकील चाहिए, परंतु सबसे अधिक आवश्यकता मुझे साहित्यकारों की है क्योंकि समाज को अगर सृजनशील बनाना है, समाज की पुनर्रचना करके उसे शोषण मुक्त करना है, उसकी धारणा समाज के नींव पर खड़ी करनी हो तो साहित्यकारों की जरूरत होती है। (डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांगमय, खंड 5, पृ.178)

भारतीय संविधान में मूलभूत मानवीय मूल्यों को ही संवैधानिक मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और यह अपेक्षा व्यक्त की गई है कि लोकतंत्र में सभी समाज, समुदाय उन मूल्यों से परिचालित हो। गौरतलब है कि संवैधानिक मूल्यों के मूल में मानवीय गरिमा को सर्वोपरि माना गया है। मानवीय गरिमा की सुरक्षा की गारंटी देता है हमारा संविधान। संविधान प्रदत्त मूल्य भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विकास से ही अंश हैं, जहां यह अपेक्षा की गई है कि समूचे मानव का ही नहीं बल्कि समूचे चराचर जगत का कल्याण हो। 'वसुधैव कुटुंबकम्' और 'जीओ और जीने दो' तथा 'अप्प दीपो भव' की अवधारणाएं हमारी मूल्य चेतना के ही द्योतक हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम भारत के लोग भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर 1949 ई. को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं।" (भारतीय संविधान की प्रस्तावना)

यह प्रस्तावना इस बात की घोषणा करती है कि भारत एक ऐसा समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक राष्ट्र है जिसमें सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता को सुरक्षित रखते हुए राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखने और सुदृढ़ करने के लिए भाईचारे को बढ़ावा दिया जायेगा। हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा तथा समाजवादी व्यवस्था पर बल दिया गया है। 24 अक्टूबर 1984 को संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार बिल (यूनिवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स) को स्वीकार किया गया और इसे पूरे विश्व में लागू करने की बात की गई। इसमें भारतीय संविधान में प्रदत्त मानवीय अधिकारों की अनुगूँज सुनाई पड़ती है। इसमें कहा गया है कि "यदि हम विश्व में शांति चाहते हैं तो हमें मनुष्य की गरिमा और मानव परिवार के सभी सदस्यों के बराबर अधिकारों को मान्यता देनी होगी, यदि हम अभिव्यक्ति और विचारों की स्वतंत्रता चाहते हैं और भय और अभाव से मुक्ति चाहते हैं, यदि हम शासकों की क्रूरता और शोषण से बचना चाहते हैं, सभी राष्ट्रों के बीच में मित्रतापूर्वक संबंध चाहते हैं तथा विश्व में मानव के स्तर को उठाना चाहते हैं तो हमें इन मानव अधिकारों को मान्यता देनी ही होगी और उन्हें विधि के द्वारा संरक्षण भी प्रदान करना होगा।" (रूपचंद गौतम- दलित मानवाधिकार, कांति पब्लिकेशन, दिल्ली, २००८, पृ.६२)

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण और अनुपालन को लेकर सचेतनता दिखाई पड़ती है। समकालीन कथाकार उन मानवीय मूल्यों की तरफदारी करता है जिनसे वैधानिक मान्यतानुसार समतामूलक समाज की स्थापना हो सके। सभी कथाकार ऐसे विघटनकारी तत्वों का खंडन करते हैं, उन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं जिनसे सामाजिक समरसता को खतरा होता है। समता, स्वतंत्रता और बंधुता जो कि सामाजिक विकास के अनिवार्य पहलू हैं, जिनकी स्थापना पर संविधान बल देता है, उन पर हिंदी कथाकारों ने गंभीरता से विचार किया है और अपने कथ्य के माध्यम से उन्हें स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

हिंदी कथाकारों ने प्रायः सामाजिक विसंगतियों को रेखांकित करते हुए एक स्वस्थ नागरिक समाज बनाने की पहल की है जो संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप हो। चाहे किसान के हक की बात हो चाहे मजदूर के, याकि सामाजिक अस्पृश्यता का मसला हो, जाति-लिंग भेद जनित विसंगतियां, कथाकारों ने इसे समाज की विद्रूपता मानते हुए इन पर गहरी चोट की है और संवैधानिक मूल्यों के तहत उस पक्ष की आवाज उठाई है जिसके अधिकारों का हनन हुआ है।

आठवें दशक के आसपास हिंदी कथा साहित्य में जो आवाज प्रखरता से उभरी और जिसने समूचे साहित्यिक चौखटे को हिला दिया और एक नए विमर्श की पेशकश की, संवैधानिक मान्यताओं को सामने रखकर समाज में उपेक्षित, पीड़ित वर्ग की आवाज बनकर हाशिए की वैचारिकी को केंद्रीय दृष्टि से देखने की पहल की, उसे दलित-स्त्री - आदिवासी विमर्श के रूप में आज प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है। यह विमर्श संविधान प्रदत्त मूल्यों पर बहस करता है, समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता को सामाजिक समरसता का मूल हेतु मानते हुए यह ऐसे समाज की स्थापना पर बल देता है जिसमें संवैधानिक मूल्यों को मानवीय गरिमा की सुरक्षा की गारंटी माना गया है। दलित- स्त्री - आदिवासी विमर्श का समूचा लेखन ऐसे समतामूलक समाज की प्रस्तावना रखता है जहां सामाजिक जातीय, लिंगीय विभेद की कोई गुंजाइश न हो। यह मानव की सत्ता का पक्षधर है। डॉक्टर अंबेडकर के सपने को दलित विमर्श साहित्यिक धरातल पर चरितार्थ करने पर बल देता है।

हिंदी में जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर', मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', कौशल्या बसंती का 'दोहरा अभिशाप' आदि प्रारंभिक कृतियां हैं जिन्होंने संवैधानिक मूल्यों को मद्देनजर रखते हुए मानवीय गरिमा के हित में आवाज उठाई और समता, स्वतंत्रता, बंधुता के भाव - मूल्य को स्थापित करने की पहल की। सूरजपाल चौहान, प्रेम कपाड़िया, कंवल भारती, रजनी तिलक, रमाशंकर आर्य जैसे कई नाम हैं जिन्होंने अपनी लेखनी में संवैधानिक मूल्यों को साहित्यिक कलेवर में चर्चा का विषय बनाया। मराठी में बाबूराव बागुल, लक्ष्मण गायकवाड़, ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे कथाकारों ने संवैधानिक मूल्यों को अपनी लेखनी के जरिए जनचर्चा का विषय बनाया।

दलित विमर्श के समान ही स्त्री विमर्श भी समाज में हाशिए की शिकार रही स्त्री के अधिकार को लेकर चेतना जागृत की। इस विमर्श ने संवैधानिक मूल्यों को तरजीह देते हुए यह स्थापित किया कि स्त्री को पुरुष के समान अधिकार है, अतः उसे बराबर का दर्जा मिलना चाहिए। स्त्री कथाकारों ने स्त्री जीवन की चुनौतियों को लक्षित कर समानता, स्वतंत्रता को अपना हक बताते हुए उन मान्यताओं, रुढ़ियों पर प्रहार किया जिनकी आड़ में दुनिया की आधी आबादी को छला जाता रहा है। चित्रा मुद्गल के 'आंवा', मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब', गीतांजलि श्री के 'माई', मंजुल भगत के 'नागपाश', प्रभा खेतान के 'पीली आंधी', 'अन्या से अनन्या' आदि उपन्यासों में स्त्री अस्मिता के स्वर्णों को सुना जा सकता है। स्त्री कथाकारों की लेखनी में संवैधानिक मूल्यों को तरजीह दी गई है।

इस तरह हिन्दी कथा साहित्य के प्रायः सभी पक्षों में संवैधानिक मूल्यों को, मान्यताओं को लेखकीय ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है। समूचा कथा साहित्य विशेषकर दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श मूलक लेखन में संवैधानिक मूल्यों को स्थापित करने का यत्न किया गया है।

संदर्भ :

- 1) शरण कुमार लिंबाले- दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 57
- 2) डॉ.अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 5, पृ.178
- 3) रूपचंद गौतम- दलित मानवाधिकार, कांति पब्लिकेशन, दिल्ली, २००८, पृ.६२
- 4) जयप्रकाश कर्दम- हाऊसिंग सोसायटी, दलित अस्मिता, (सं. विमल थोरात) प्रवेशांक, अक्टूबर 2010, पृ. 58
- 5) रोहिणी अग्रवाल-आकाश चाहने वाली लड़की के सवाल, -पितृसत्ता के ने रूप (सं. राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे), राजकमल पेपर बैक्स, 2010, पृ. 132

संवैधानिक मूल्यों के टूटने की कसक : 'राग दरबारी'

प्रो. (डॉ) सतीश यादव,

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर जि. लातूर (महाराष्ट्र)

सन् 1947 में देश आजाद हुआ स्वाधीन देश ने पहली बार मुक्त श्वास लिया। अनेक वर्षों की गुलामी के बाद देश ने आजादी का सुनहरा दिन देखा। भारतीय जनता ने आजादी की एक लंबी लड़ाई लड़ी थी। अंग्रेजों की अन्यायी, साम्राज्यवादी, शोषण की व्यवस्था को खत्म कर के स्वाधीनता का सूर्य उदित हुआ। आजादी की लड़ाई लड़ते समय लोगों ने राष्ट्र निर्माण तथा मानव-निर्माण के अनगिनत सपने देखे। लोगों में उत्साह था मानो उसकी खोई हुई चेतना लौट आई। जो है, उसने उससे प्यार किया प्यार किया इस मिट्टी से, खुली हवाओं से विशाल और अनंत आकाश से, यहाँ के पहाड़ों से फूल-पौधों से, यहाँ की जमीन से, यहाँ के आसमान से जो उसके पास नहीं था, उसका इंतजार किया। इस देश की आम जनता ने एक सपना देखा था, अब कोई बच्चा भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा, अब कोई छत बारिश में नहीं टपकेगी, अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा, अब कोई दवा के अभाव में घुट-घुटकर नहीं मरेगा, अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा, कोई किसी को नंगा नहीं करेगा। इस देश में जनतंत्र आया। जनतंत्र ने भारतीय जनता में विश्वास जगाया। त्याग, स्वतंत्रता, संस्कृति, शांति और मनुष्यता ये सारे मूल्य दिये। किंतु आजादी के कुछ सालों बाद ही ये सारे मूल्य पाँवों के नीचे कुचलता हुआ चुनावी माहौल गर्माता रहा। विश्वशांति और पंचशील के सूत्र समझाने वाले के पास भारतीय जनता के प्रश्नों का कोई जवाब नहीं था। आजादी के बाद जनसंख्या का विस्फोट होता रहा। जिम्मेदार सरकार के द्वारा जनता के भले के लिए विविध योजनाओं का अनावरण होने लगा। लोगों को यह बार-बार लग रहा कि आज नहीं तो कल सब ठीक होगा किंतु आजादी के बाद देश का मौसम ही बदलता गया। धीरे-धीरे आम आदमी का धैर्य टूटा रहा। सन् 1962 तक आते-आते ये भ्रम लगातार टूट रहा था। सन् 1965 ई. का युद्ध और शांति यात्री शास्त्री जी की मृत्यु ने उसे झकझोर दिया। भारतीय जनता को अब जनतंत्र खोखला लगने लगा था। सहानुभूति और प्यार धोखा लगने लगा था। आजादी की उमंगें और उल्लास का प्रकाश अब मंद पड़ने था। अकाल का लंगर, वन महोत्सव की कार्यप्रणालियाँ और जनता में धीरे-धीरे संवेदनशून्यता आने लगी। बुद्ध के देश में करुणा की जगह लोगों के करुण चीत्कार सुनाई पड़ने लगे। नफरत, साजिश और अंधेरे ने इस देश को पूरी तरह घेर लिया। देश में एक ओर अनाज से गोदाम मरे पड़े थे तो दूसरी ओर लोग भूख रहे थे। एक शर्मनाक दौर से समाज गुजर रहा था। भाईचारा, धर्म-निरपेक्षता, न्याय स्वतंत्रता, त्याग, जनतंत्र ये सारे मूल्य अब बेमानी लगे थे। हर चीज की यहाँ आकर व्याख्या बदलने लगी थी। खेत-खलिहान, उद्योग, व्यापार धीरे-धीरे खत्म होने लगा। समूचा देश एक यातना से गुजरने लगा था। राजनीति देश को स्वस्थ और सुंदर बनाने का एक माध्यम होता है। आजादी के पहले की राजनीति में कल्याण, लोक-चेतना, लोक-मंगल की कामना समूचा विकास का मुहावरा बनी थी। किंतु आजादी के बाद इस में एक के बाद एक चुनाव होते रहे। लोग मतदान करते रहे। किंतु लोगों की जिंदगी में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा, आखिर परिवर्तन की अपेक्षा भी कैसे की जा सकती थी? क्योंकि नेतृत्व ने एक लाचारों की फौज खड़ी की थी। दरबारी राग अलाप कर अपना उल्लू सीधा कर रहा था। नेतृत्व ने अस्मिताहीन, स्वाभिमानशून्य तथा लाचारों का वर्ग ही निर्माण किया। राजनीति ने लोगों के मन में अविश्वास, नफरत, संशय और सुविधाभोगी बनाया। राजनीति का सबसे क्रूर और भयानक दौर ये था कि मनुष्य की स्वतंत्रता को ही दबोच लिया जाय। देश में आपातकाल की घोषणा और भारतीय मनुष्य के सारे अधिकारों का संकोच हुआ। सत्ता में मदांध नेतृत्व ने आम जनता के समस्त अधिकारों को एक झटके के साथ दबोच लिया। राजनीति के रंग-बिरंगे झंडे फहराने लगे। गुट से गुट टकराने लगे और इस टकराने में जनता के बुनियादी प्रश्नों को षड़यंत्र के तहत विस्मृत किया गया। देश में जाति, धर्म, संप्रदाय, पेशा और पूँजी किलबिलाने लगे। जनता इस भीषण सड़ांध हो चुपचाप सह रही थी। एक बर्बरता के युग से समाज गुजर रहा था राजनीति ने सत्ता

और संपत्ति के दुर्ग खड़े किये. जिसके बाहर आम आदमी इंतजार में बैठा था, दुःख और भय से एक झुरझुरी लेकर. भय, भूख और आतंक इस देश में धीरे-धीरे फैलने लगा. राजनीति की विकृति ने देश को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया. अब सिर्फ 'राज' शेष था, 'नीति' गायब हो चुकी थी. राजनीति का एक ही मंत्र बन गया था कि किसी भी तरह से सत्ता प्राप्त की जाय। सारे जीवनमूल्य पाँवों के नीचे कुचले जा रहे थे. 'संपूर्ण क्रांति' के नारे का स्वार्थ का मुलम्मा चढ़ाकर राष्ट्र को लूटा जा रहा था. आजादी के बाद इन लुटेरों की एक फौज ही निर्माण हो गयी. जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्याय, अत्याचार और शोषण का नंगा नाच शुरू हुआ. सत्ता परिवर्तन तो हुए परंतु समाज का परिवर्तन नहीं हो पाया- क्योंकि, 'कुर्सियाँ वही हैं, सिर्फ टोपियाँ बदल गई हैं.' अर्थात् इस व्यवस्था में आम मनुष्य का कोई हमदर्द दिखाई नहीं देता. देश के सारे बुद्धिजीवी सुविधाभोगी हो गये. आतंक का नग्न दृश्य दिखाई पड़ रहा है. आज भी सभी ओर चिरपरिचित अंधकार है. स्वाधीन भारत ने जितने भी सपने देखे थे वे सारे सपने धीरे-धीरे टूटते गये. स्वातंत्र्योत्तर कालखंड इसी टूटन का कालखंड है. परिवेश की क्रूरता मनुष्य को और भी हैवान बना रही थी. जीवन की दिशाएँ धुंधली पड़ रही थी. राष्ट्र अनास्था, अमानवीयता और विकृतियों को अपने में समेटे हुए जी रहा था. ये वही दौर था, जिस दौर में आजादी के मायने ही बदल गये. जिन्होंने इन्कलाब का नारा देकर तथा सरफरोशी की तमन्ना पाल कर आजादी के लिए लड़ाई लड़ी थी, धीरे-धीरे उनका उपयोग मात्र रसीदी टिकिटों और कैलंडरों पर होने लगा. यहाँ तक कि चुनाव के मंच पर उनकी तस्वीरें टंगने लगीं. अर्थात् वोट मांगने के लिए उनका दुरुपयोग होने लगा. राजनीतिक तिकड़मबाजियों, विश्रृंखला, आर्थिक विपन्नता, धार्मिक विद्रूपता और सांस्कृतिक विरूपताओं का दौर लगातार चलता रहा. धर्म की राजनीति ने बचे-खुचे भाइयारे की हत्या की. अब देश में चारों तरफ अविश्वास, संदेह और संशय की दृष्टि से एक-दूसरे को देखा जाने लगा. जीवन में धीरे-धीरे मूल्यहीनता, भाई-भतीजावाद, धर्मांधता, भ्रष्टाचार, निहित स्वार्थ, नपुंसकता, शोषण और मजहब के नाम पर मानवता का खून करने वालों की औलादें पैदा हुई. हम एक ऐसी जाति-निरपेक्ष, धर्म-निरपेक्ष, वर्ण-निरपेक्ष सामाजिक व्यवस्था पैदा करना चाहते थे किंतु हम विरोधी दिशा में ही अग्रसर रहे. शोषण और आम जनता को लूटना लगातार चलता रहा. 'लूटने के मुहावरे बदलते रहे किंतु जिंदगी का मुहावरा बदल नहीं पाया.' इन परिवेश के बीच (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक) हिंदी उपन्यासों को रू-ब-रू कराने का काम श्रीलाल ने किया. श्रीलाल के पास परिवेश की सच्ची समझ है. परिस्थितियों के विश्लेषण की जबरदस्त शक्ति है, समाज के मन को पकड़ने की अद्भुत ताकत है, समाज की पोल खोलने वाली विलक्षण क्षमता है. मनुष्य और मनुष्य जीवन के यथार्थ प्रश्नों की सही जानकारी है. शहर हो या गाँव मनुष्य के टूटने का दर्द शुक्ल जी बराबर अपने में समाहित किये हुए हैं. जीवन संघर्ष के क्षणों को अभिव्यक्त करने की सुनिश्चित दिशा देने की क्षमता शुक्ल जी में विद्यमान है. लेखक परिस्थितियों का सम्यक आकलन लेखन की कौशलता से अद्वितीय रूप में करता है.

हमारे देश में सन् 1950 में संविधान लागू हुआ. संविधान के लागू होने से तीन महत्वपूर्ण काम हुए. पहला, सामंती व्यवस्था के खत्म होने एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हुई. दूसरा, अनेक संस्थानों में बंटा हुआ देश अब एकसंघ राज्य के रूप में अवतरित हुआ. ब्रिटीशों की गुलामी खत्म हुई और आजादी का सूर्य उदित हुआ. और तीसरा, जनता सार्वभौम हुई. जनता को अधिकार एवं कर्तव्य बहाल किये गये. स्वराज्य की मांग थी, सुराज्य लाने का संकल्प संविधान में किया गया. एक अर्थ से 'संविधान तमाम भारतीयों के लिए मानवाधिकार का, सपनों का एवं अस्तित्व का महाग्रंथ बन गया. जहाँ से संवैधानिक व्यवस्था ने 'हम भारतीय लोग' को सर्वोपरि समझा, वही सबके लिए समता, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता और बंधुता के मूल्य दिये. 'एक व्यक्ति - एक मूल्य' तथा 'एक व्यक्ति - एक मत' को प्रदान करते हुए मनुष्य को प्रतिष्ठापित किया। संविधान के केन्द्र में वर्ण, जाति, भाषा, सम्प्रदाय, प्रदेश, रंग तथा धर्म से ऊपर उठकर लोकसत्ता को केन्द्रीयता मिली. सही मायने में संविधान मानव मुक्ति का घोषणापत्र घोषित हुआ. विशेष बात यह कि संविधान के सम्मुख न कोई अमीर, न गरीब, न ऊँच-नीच, न श्रेष्ठ - कनिष्ठ, न कोई राजा-प्रजा और न ही कोई बेबस या लाचार. संविधान ने पहली बार भारतीयों के खोये हुए आत्मभान को जगाया,

उसे आत्मविश्वास, आलोचनान्ति और आत्मपरीक्षण का रास्ता दिखाया. अस्तु, आजाद भारत वर्ष में एक संवैधानिक व्यवस्था, प्रशासनतंत्र एवं जनतांत्रिक मूल्यों की लोकगामी व्यवस्था कायम हुई.

श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' (1968) उपन्यास का मूल विषय स्वतंत्रता परवर्ती भारतीय समाज की मूल्यहीनता को चित्रित करना है, राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टियों से भारतीय समाज पतन के कगार पर खड़ा हुआ है. इस गिरावट या पतनोन्मुखता को ही अपनी कथा के केन्द्रीय स्थल के रूप में स्वीकारा. 'शिवपालगंज' नामक गाँव को केन्द्र में रखते हुए लेखक ने हमारे समाज की प्रजातंत्रात्मक विद्रूपता को प्रश्नचिह्न करने के लिए रचा गया है. प्रजातंत्रीय मूल्यों की विद्रूपता कटघरे में ला खड़ा करने में ही इसकी सफलता है. लेखक ने संविधान लागू होने के मात्र 18 वर्ष बाद ही संवैधानिक मूल्यों की कैसे धजियाँ उड़ाई जा रही थी, इसे व्यंग्य शैली में बेकाक चित्रण किया है. यहाँ लेखक का उद्देश्य स्पष्ट है, जनतंत्र के सारे मूल्य कैसे धराशायी एवं अवमूल्यित हो रहे थे, यह बताना है. यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि, प्रस्तुत उपन्यास की रचना प्रजातंत्र के अवमूल्यन और सामायिक परिस्थितियों का विद्रूप संगीत उभारकर जनमानस को झकझोर देना है. अर्थात् उपन्यासकार केवल जनतांत्रिक मूल्यों का मखौल नहीं उड़ा रहा है बल्कि इन मूल्यों के ध्वस्त होने के प्रति चिन्ता जता रहा है. इन मूल्यों का भारतीयों के जीवन होने का महत्व भी बता रहा है. इन मूल्यों को बचाए रखने की जिम्मेदारी का अहसास भी कराता है. साथ ही यह भी संकेत देता है कि इधर धड़ाधड संवैधानिक मूल्यों का क्षरण हो रहा हो, उसी समय हमें इन मूल्यों को बचाने के लिए लंबी लड़ाई लड़नी पड़ेगी. अस्तु, इस उपन्यास से गुजरकर यह अहसास होता है कि संवैधानिक मूल्यों के टूटने की कसक पूरे सामर्थ्य के साथ यहाँ अभिव्यंजित हुई है. इसे समझने के लिए हमें उपन्यास के संवेदना-सूत्रों से गुजरना होगा, तभी इन बातों की पडताल हो सकती है.

'राग दरबारी' की वस्तु - योजना 35 खण्डों में एवं 335 पृष्ठों में विन्यस्त है; वस्तुतः इस उपन्यास के केन्द्र में शिवपालगंज है. उसके साथ ही शिवपालगंज के विविध क्षेत्रों की उथल-पुथल का चित्रण लेखक ने किया है. जिसमें चंगामल विद्यालय इंटरमीडिएट कालेज, को. ऑपरेटिव सोसायटी, गाँव पंचायत, पुलिस थाना, न्याय व्यवस्था तथा गाँव की स्थितियों का ब्यौरेवार चित्रण साहित्य मनीषी लेखक श्रीलाल शुक्ल ने किया है. ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण लेखक ने किया है. इसी वजह से रामदरश मिश्र लिखते हैं, 'राग दरबारी' अपने यथार्थवादी स्वभाव के कारण एक विशिष्ट कृति है, जिसमें गाँव के सारे मूल्यहीन व्यवहारवाद (जिसमें छोटे से लेकर बड़े तक सभी कहीं न कहीं मुबतला है) को बहुत निर्ममता या कलागत निस्संगता के साथ साकार किया गया है. '1 लेखक ने सबसे पहले गाँव के क्रूर यथार्थ की ओर ध्यान खिंचा है, जो आजादी के अठारह वर्षों बादहाली, अभाव, बेबसी, शर्मिन्दगी में जीने के लिए विवश है. गाँव की स्थिति यह है कि महिलाओं के लिए शौचालय की व्यवस्था नहीं है. लाचारी, शर्मिन्दगी एवं बेबसी के साथ मलमूत्र विसर्जन सड़क पर ही करना पड़ता है - ' थोड़े देर में ही धुंधलके में सड़क की पटरी पर दोनों ओर कुछ गठरिया-सी रखी हुई नजर आई. ये औरतें थी जो कतार बांधकर बैठी हुई थी. वे इत्मीनान से बातचीत हुई वायु-सेवन कर रही थी और लगे हाथ मलमूत्र विसर्जन भी. 2 वस्तुतः हम प्राथमिक सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं करा सके हैं. गाँव का सच यह भी है कि गाँव जाति, मुहल्लों में बंटा हुआ है. जाति, गरीबी, सामाजिक, आर्थिक विषमता नेगांवों को पूरी तरह तोड़ दिया है. संविधान ने विश्वास दिलाया था कि हम छुआछूत, समाजार्थिक विषमता को समाप्त करेंगे. किन्तु जाति व्यवस्था उग्र रूप धारण कर चुकी है, संविधान के अनुच्छेद 17 तहत छुआछूत खत्म कर दी गयी है किन्तु शिवपालगंज में अभी भी यह कायम है, और शिवपालगंज तो हर जगह फैला हुआ है. उपन्यास में द्रष्टव्य है चमरिहया मुहल्ले का व्यंग्यात्मक दृश्य - ' अछूत एक प्रकार के दुपाये का नाम है संविधान लागू होने से पहले छूते नहीं थे. संविधान एक कविता का नाम है, जिसके अनुच्छेद 17 में छुआछूत खत्म कर दी है, क्योंकि इस देश में लोग कविता के सहारे नहीं बल्कि धर्म के सहारे रहते हैं और क्योंकि छुआछूत इस देश का धर्म है, इसलिए शिवपालगंज में भी दूसरे गाँवों की तरह अछूतों के अलग-अलग मुहल्ले थे. ' 3 एक ओर जातियों में गाँव बंटे जाने का यह चित्र है तो दूसरी ओर ग्रामीणजन अभावों में जीने के अभ्यस्त हो चुके थे. बारिश, सर्दी (जाड़ा) और गर्मी के

मौसम में अत्यंत लाचारी में जीने के लिए वे विवश हैं. ' जाड़ा शुरू हो जाने पर किसी की देह पर ऊनी कोट नहीं दीख पड़ा। कुछ बच्चे एकाध फटे स्वेटर पहने हुए जरूर नजर आए; ओरतें रंगीन, पर सस्ती सिल्क की साड़ियों में लिपटी दीख पड़ी, पर ज्यादातर सभी नंगे पांव थी और मर्दों की हालत तो कहना ही क्या, हिन्दुस्तानी छैला, आधा उजला आधा मैला .4 गांव में अभी भी स्कूलों, सड़कों, बिजली, नल का पानी नदारद है. छंगामल विद्यालय के विद्यार्थियों को लगता है कि, 'हम असली भारतीय विद्यार्थी हैं, हम नहीं जानते कि बिजली क्या है, नल का पानी क्या है, पक्का फर्श किसे कहते हैं', सैनिटरी फिटिंग किस चिड़िया का नाम है .5 लेखक बताता है कि गांव कैसे हैं ? वह यह नहीं बताता कि कैसे होने चाहिए. यह उसका उद्देश्य भी नहीं है .लेखक गांव के न बदले हुए चेहरे से हमें परिचित कराता है. संविधान ने गांव और शहर, ग्रामीण और शहराती होने के भेदभाव को खत्म करने की बात कही है . किन्तु गांव आज भी शहर के दबाव में जी रहे हैं .विकास के नाम पर अधिकांश पैसा शहर खींच रहा है अतः गांव दिन ब दिन ऊसर बनते जा रहे हैं, वास्तव में शिवपालगंज क्या है? हमारे देश के एक बड़े वर्ग की जिंदगी का तबका जो सरकार को चूस रहा है और उसकी कीमत पर फल- फूल रहा है, यह है हमारी प्रजातंत्रीय प्रणाली का करिश्मा . जनतांत्रिय मूल्यों, आदर्शों का इससे बड़ा मखौल और क्या हो सकता है? यही आकर जनतंत्र के मूल्य धराशायी हो जाते हैं, गांव सामंतवादी मानसिकता एवं राजनैतिक दांवपेंच से बाहर आने के लिए तैयार नहीं है. पुलिस प्रशासन ने गांव को लूटने माध्यम बनाया है. इसी वजह से लक्ष्मीसागर वाष्णैय लिखते हैं, 'राजनीतिक दांवपेंच और प्रजातंत्र के नाम पर हुई देश की तबाही के अनेक जो चित्र 'राग दरबारी' में पेश गये गये हैं. वे प्रायः इने- गिने उपन्यासों में ही देखने को मिलते हैं . इनमें विषमता भी और रोचकता भी . ' 6

गांव का क्रूर यथार्थ यह भी है कि, सत्ता एक ही घर में सिमटकर रह जाती है. मध्यकालीन दरबारी संस्कृति आज भी गांवों में कायम है. इसलिए लेखक को लगता है कि 'असली शिवपालगंज तो वैद्यजी की बैठक में था. ' वैद्यजी जैसे नेताओं ने ही लोकतंत्र को बंधक बना लिया है. दरबारी संस्कृति लोगों को लाचार, बेबस एवं असहाय बनाने का जरिया गई हैं. वैद्यजी जैसे नेता लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी नये सामन्त जैसा व्यवहार करते हैं, त्रिभुवन सिंह ने बहुत ठीक लिखा है, 'स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नये सामन्तों का उदय हुआ है और नये दरबारी अस्तित्व में आये हैं. ये दरबारी परोपजीवी प्रवृत्ति वाले हैं, जो बगुलाभगत नेताओं की राग आताप रहे हैं.7 वस्तुतः यह शिवपालगंज का दरबार नहीं है, समूचे देश का ही दरबार है. विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यह दरबार दिल्ली तक फैला हुआ है. जिस गांव में शराब, भांग, नित्य मारपीट, न्याय के प्रति अनास्था वास्तविक चेहरा है. यह दरबार मध्यकालीन नहीं है, आधुनिक है . इसे भगवानदास वर्मा ने कुछ इस प्रकार दर्शाया - ' शिवपालगंज का दरबार आधुनिक जनतंत्रीय है. राग दरबारी इस उपन्यास की कथावस्तु आधुनिक दरबार के सभापति और सदस्यों के निहित स्वार्थों का दस्तावेज प्रस्तुत करती है. ' 8 गांव में अंधविश्वास, अशिक्षा, गंजहापन तथा गुलाम मानसिकता कायम है . गांव का पूरी तरह बिगड़ा हुआ चित्र लेखक खींचता है, जिसमें कहीं पर भी अतिरंजना या रोमांटीसाईज वृत्ति नजर नहीं आती .लेखक गांव का एकसरे निकालता है. यह अनुभूत जीवनबोध है, जिसे हमें समझना होगा.

गांव की विशिष्टता को दर्शाने वाले पात्र यहाँ उभरते हैं . न्याय की लड़ाई लड़ने वाले लंगडपरशद और दूसरी ओर सरकारी ग्रांट और कर्जे को लुटनेवाली कालिकाप्रसाद जैसी प्रवृत्ति .लंगड तहसील से जमीन की नकल पाना चाहता है, बिना घूस के बगैर नहीं. वह पांच रुपये के बदले दो रुपये देना चाहता है, परंतु पूरा वर्ष निकल जाता है, किंतु उसे नकल नहीं मिलती. सरकारी बाबू लोग उसे लटकाये रखते हैं . वह तहसील के चक्कर पर चक्कर काटता है किन्तु फाईल में त्रुटियाँ बताकर उसे नकल नहीं दी जाती. तब रंगनाथ उसे समझाले हुए कहता है, 'देखो लंगड तुम्हारे कायदे - कानून से कुछ नहीं होता. जानने की बात सिर्फ एक है कि तुम जनता हो और जनता इतनी आसानी से नहीं जीतती ' 9 दूसरा पात्र कालिकाप्रसाद है, जिसके माध्यम से सरकारी योजनाओं का दुरुपयोग करने वाली संस्कृति गांवों में कैसी फल-फूल रही है इसका जीवंत चित्रण लेखक ने किया है. कालिकाप्रसाद का पेशा सरकारी ग्रांट और कर्जे खाना था. वे सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीते थे. उनके तीन सहायक थे - क्षेत्रीय एम.एल.ए; खददर की पोशाक और उनकायह वाक्य - अभी तो वसूली की बात ही न कीजिए . आपको कार्रवाई

रुकने में दिक्कत न हो, इसलिए मैंने ऊपर भी दररवास्त लगादी है. '10 अर्थात् गांव का यह वास्तविक चेहरा है, जिसे हम नजरअंदाज नहीं कर सकते. जिसमें सनीचर जैसे बांगड़, अशिक्षित एवं वैद्यजी के मातहत भी है जो गांव प्रधान के रूप में निर्वाचित होते हैं. लेखक ने गांव के अत्यंत निर्मम, निस्संग चित्र को खींचा है. राजनीति समाज को स्वस्थ, संतुलित एवं सुंदर बनाने का जरिया है; किन्तु जब से चुनावों का दौर शुरू हुआ है, राजनीति ने लोगों को जोड़ने की अपेक्षा तोड़ा अधिक है. सत्ता राजनीति का क्रूर खेल यहाँ चल रहा है. राजनीति ने जनता को बांटने का काम किया. किसी भी तरह सत्ता हथियाई जाय यही मूलमंत्र बन चुका है.

उसके लिए तिकडमबाजी, तोडफोड का विष बोया जा रहा है. पंचायत, शिक्षा संस्थान तथा सहकारिता संस्थाएँ ताबे में रखने के लिए जोडतोड की राजनीति होती है, जिसने गुटबाजी, भाई-भतीजावाद, परिवारवाद एवं भ्रष्टाचार को जन्म दिया. सालों तक चुनाव नहीं और चुनाव होते भी हैं तो तमंचे के सहारे जीते जाते हैं. वैद्यजी ने एक दिन सपने में देखा, 'उन्होंने देखा कि प्रजातन्त्र उनके तरफ़

पास जमीन पर पंजों के बल बैठा है. उसने हाथ जोड रखे हैं. उसकी शक्ल हलवाहों-जैसी है और अंग्रेजी तो अंग्रेजी, वह शुद्ध हिन्दी भी नहीं बोल पा रहा है. फिर भी वह गिडगिडा रहा है और वैद्यजी उसका गिडगिडाना सुन रहे हैं. उसे बार-बार तख्त पर बैठने के लिए कहते हैं और समझाते हैं कि तुम गरीब तो क्या हुआ, हो तो हमारे रिश्तेदार ही, पर प्रजातन्त्र उन्हें बार बार हुजूर और सरकार कहकर पुकारता है'. 11 नेताओं के सम्मुख प्रजातंत्र लाचार दिखाई देता है. संवैधानिक मूल्यों को अपने स्वार्थ के लिए ताक पर रखा जाता है. लेखक ने गंदी राजनीति का क्रूर चेहरा उघाडकर रखा है.

छंगामल विद्यालय की स्थापना वैद्यजी ने की है. जब से स्थापित हुआ है चुनाव नहीं है. कर्मचारीगण या तो वैद्यजी के रिश्तेदार हैं प्राचार्य के. कॉलेज में अर्थकर गुटबाजी है, भ्रष्टाचार है. शिक्षा का काम छोडकर सारे काम यहाँ हो रहे हैं. वैद्यजी चुनाव की घोषणा कराते हैं. अपने पहलवान बेटे बद्री एवं छोटे पहलवान तथा गुंडों का सहारा लेकर समिति सदस्यों को सभा में ही आने नहीं देते. तमंचे के बल पर चुनाव जीतते हैं, और जाते-जाते अपने बड़े बेटे बद्री पहलवान को मैनेजर बनाते हैं. लोकतंत्र को इस प्रकार बंधक होते हुए देखकर रिसर्च कर रहा रंगनाथ बेचैन हो जाता है. संवैधानिक मूल्यों को टूटते देखकर विह्वल हो जाता है, 'जिस दिन से रंगनाथ ने मैनेजर का चुनाव देखा था, उसे अपने में इस बीमारी का शुबहा होने लगा था. वैद्यजी को देखते ही अचानक उसे वह दृश्य याद आ जाता जब प्रिंसिपल साहब चुनाव के बाद बरछी से बिंधे हुए सूअर की तरह चिचियाते हुए जय-जयकार करते कॉलेज से बाहर निकले थे. उसे ऐसा जान पडने लगा कि वैद्यजी के साथ रहते हुए वह डकैतों के किसी गिरोह का सदस्य हो गया है.' 12 खन्ना मास्टर और मालवीय के जोर जबरदस्ती इस्तीफे लिए जाते हैं. सीधे-सीधे मानवाधिकारों का हनन किया जाता है.

पंचायत के चुनाव का भी कोई अलग दृश्य नहीं है. वैद्यजी अपनी बैठक में भंग घोलने वाले, बांगड़, फटीचर सनीचर को प्रधान पद के लिए खड़ा करते हैं. यहाँ चुनाव जीतने के तीन तरीके प्रचलित हैं - रामनगरवाली तरकीब, नेवादावाली तरकीब और महिपालपुर वाली तरकीब. रामनगरवाल तरकीब में लोगों में प्रजातन्त्र के बिखर जाने, हिंसा का भय बताकर चुनाव जीता जाता है, नेवादावाली तरकीब में पुलिस प्रशासन, जाति, पैसा और धार्मिक बाबाओं की मदद से चुनाव जीता जाता है और तीसरी तरकीब है महिपालपुर वाली, जिसमें चुनाव अधिकारी को मैनेज करके चुनाव जीता जाता है. चुनाव जीतने के लिए बड़ा से बड़ा कमीनापन स्वीकार्य है. इसलिए रुपन बाबू कहते हैं, 'देखो दादा, यह तो पॉलिटिक्स है. इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है, यह तो कुछ भी नहीं हुआ. पिताजी जिस रास्ते में है उसमें इससे भी आगे कुछ करना पडता है. दुश्मन को जैसे भी हो चित करना चाहिए. यह न चित कर पाएंगे तो खुद चित हो जाएंगे और, बैठे चूरन की पुडिया बांधा करेंगे और कोई टका को भी नहीं पूछेगा.' 13 अर्थात् वैद्यजी के नेतृत्व में सनीचर प्रधान का चुनाव जीत जाता है, महिमालपुरवाली तरकीब से. चुनाव जीतने के लिए किसी भी प्रकार के हथकंडे का इस्तेमाल जायज है. चूंकि रंगनाथ एम.ए. हुआ है. लोकतंत्र, चुनाव, मतदाता के अधिकार, जनतांत्रिक व्यवस्था के

बारे में भलीभाँति परिचित है किन्तु जिस तरीके से सनीचर को जिताया गया है, उसे देखकर वह व्यथित है। रंगनाथ सोचता है, 'सनीचर के विजय के दिन उसने बहुत कुछ सोच डाला और इस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्यजी और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों में न जाने कितने सनीचर घुसे हुए दीख पड़े।' 14 वस्तुतः जो वैद्यजी हमेशा शासन की अकर्मण्यता, जनता का कल्याण तथा 'दायित्व' आदि शब्दों बार - बार उपयोग करते हैं। वे समय आने पर जनता के कल्याण के नाम पर कुछ भी कर सकते हैं। ऐसे समय में रंगनाथ को लगता है कि कुछ करना चाहिए पर कुछ भी नहीं कर पाते। बुद्धिजीवियों पर करारा व्यंग्य इस उपन्यास भी विशेषता है।

सहकारी सोसायटी में गबन हो जाता है, गेहूँ के दो ट्रक सोसायटी गोदाम में आने के बजाय सीधे मंडी में जाते हैं, वैद्यजी जांच अधिकारी के सम्मुख जांच और चुनाव करवाते हैं। अंततः अपने बड़े बेटे बट्टी पहलवान को सोसायटी का पदाधिकारी बनाते हैं। पुलिस प्रशासन को हाथ में लेकर धमकाना, लूटना रोज का खेल है। यह है हमारा गाँव और यह है उसकी असलियत, लेखक ने आजादी बाद पंचायत, सहकारिता सोसायटी, शिक्षा संस्थान और न्याय व्यवस्था में चल रही धांदली को बखूबी वर्णित किया है। हमारी संवैधानिक व्यवस्था लालफित शाही में कैसे फँसी हुई है, इसका भी जीवंत चित्रण लेखक ने किया है। मनमाना, स्वच्छंदी प्रशासन जिस तरह से काम कर रहा है इसके अनेक दृश्य उपन्यास में उभरते हैं। नैतिकता, न्याय, मानवाधिकार एवं शुद्ध आचरण की धजियां उड़ा गई हैं, भाई- भतीजावाद घर आंगन में आ चुका है। अपने स्वार्थ के लिए किसी भी स्तर पर नीचे गिरना आधुनिक मनुष्य की नियती बन चुकी है। इसलिए लेखक कहता है, 'यह गरजने वालों का नहीं, भुनभुनाने वालों का देश है।' वैद्यजी जैसे नेता देखते- देखते इतने बड़े नेता बन गए कि जितने जमीन के ऊपर हैं उतना ही सीधे नीचे घुसे हुए हैं। बातें तो प्रजातंत्र की करेंगे, मूल्यों की करेंगे किन्तु समय आने पर अपना वास्तविक रूप दिखा जाएंगे।

'राग दरबारी' का वैशिष्ट्य नयी जमीन पर फैलने का है। लेखक ने हमारे देश में राजनीति की छाया में उभरने वाले सामाजिक जीवन की विसंगतियों को बहुत विस्तार से परखा है, अर्थात् लेखक ने गाँव की कथा के जरिये स्वातंत्र्योत्तर भारत के बुर्जुआ जनतंत्र को उजागर किया है। उपन्यास का अंत मदारी की डुगडुगी पर बंदरों का नाच से होता है। इसमें भी अभिप्राय है। व्यवस्था तंत्र का बाजीगर डुगडुगी से जनसाधारण को बहलाता- फुसलाता एक छदम को साध रहा है। व्यवस्था वही कायम है, कायम है अन्याय, अत्याचार और शोषण। वैद्यजी की सत्ता और शासन दोनों कायम हैं। एक कसक के साथ उपन्यास समाप्त होता है किन्तु छोड़ जाता है कुछ सवाल, जो हमें बेचैन और अंतर्मुख कर देते हैं, इसलिए यह कहना अधिक जायज होगा कि राग दरबारी संक्रमण काल की मूल्यहीनता और संस्कार हीनता इस उपन्यास की उपलब्धि है। 15

निष्कर्ष:

श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' के मार्फत जिन सवालों को खड़ा किया है, के आज की अनसुलझे हुए हैं। स्वातंत्र्य संकोच, सामाजिक न्याय का दूर - दूर तक पता न होना, समता के स्थान पर विषमता का पोषण बंधुत्व तो संविधान में ही दर्ज है। इसलिए बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि यह लोकतंत्र नहीं है, लूटतंत्र है! मूल्यहीनता, अनैतिकता, विषमता, मनुष्य अधिकारों का हनन, सामंती वृत्ति का बोलबाला, बुद्धिजीवियों की सुविधाभोगी मनोवृत्ति, व्यवस्था तंत्र का मनमाना रूप, शासन की अकर्मण्यता और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का निरंतर क्षरण होना- यह है चुनौतियाँ जिसे लेखक ने बड़ी निर्ममता से पेश किया है। विशेष उल्लेखनीय बात है कि, संवैधानिक मूल्यों के टूट जाने कसक एक ओर है तो दूसरी ओर उसका महत्व भी लेखक रेखांकित करता है। व्यंग्य शैली का सार्थक उपयोग, भाषा का कलात्मक प्रयोग, दहकते जीवनानुभवों के वर्णन से श्रीलाल शुक्ल की प्रतिभाशीलता का परिचय मिलता है। इसलिए श्रीलाल शुक्ल प्रेमचंद और अज्ञेय के अधिक निकट पड़ते हुए नजर आते हैं। जो टूटे हुए मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हैं। और बंकिम के तो बहुत अधिक निकट हैं क्योंकि वह बार-बार उसकी याद दिलाते हैं। जो टूट चुका है पर टूटकर नष्ट हो जाने के योग्य नहीं है।

संदर्भ :

1. आज का हिंदी साहित्य संवेदना : संवेदना और दृष्टि, पृ. 127.
2. राग दरबारी ,श्रीलाल शुक्ल , पृ.13
3. वही, पृ.103
4. वही, पृ.111
5. वही , पृ.18
6. हिन्दी उपन्यास: उपलब्धियाँ, पृ. 138
7. डॉ.त्रिभुवन सिंह के लेख से
8. आधुनिकता के रचना संदर्भ , पृ.18
- 9.राग दरबारी ,श्रीलाल शुक्ल, पृ.379
10. वही , पृ.149
11. वही, पृ.137
12. वही, पृ. 147
13. वही , पृ. 148.
14. वही, पृ.243
15. राग दरबारी : व्यंग्य दृष्टि या व्यंग्यलीला, पृ.245

* प्रस्तुत आलेख के लिए राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली की सन् 2013 में प्रकाशित छठी आवृत्ति 'राग दरबारी 'उपन्यास को मूल स्रोत बनाया गया है.



समकालीन हिन्दी कविता में सामाजिकता एवं मूल्य

डॉ. कुमार बनसोडे

असोशिएट प्रोफेसर हिन्दी,
श्रीमती सुशीलादेवी देशमुख कॉलेज ,लातूर

समकालीनता से तात्पर्य है युगीन परिस्थितियों के अनुसार साहित्य सृजन। उसकी प्रेरणा पाकर साहित्यकार साहित्य सृजन करता है। किसी भी युग की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं का समग्र चित्रण ही समकालीन है। आज भौतिकवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद के कारण एक बेहद दबाव है। लूटो नहीं, तो लूट लिए जाओगे/ इन्हीं विरवण्डित और ध्वशोन्मुख मूल्यों के अवस आज साहित्य में उभर रहे हैं। इन्हीं मूल्यों की नियामक है समकालीन हिन्दी कविता।

समकालीन कविता में आम आदमी की पीड़ा, निराशा, कुण्ठा, अवसाद विसंगतियां एवं समय का सत्य देखा जा सकता है। समकालीन जनमानस को अपमान, तिरस्कार के प्रति सजग करता हुआ प्रतिशोध की भावना भरते हुए लिखता है

उदास लोगो / उठो और नामंजूर करो / सड़क पर मिल दो / उठो / और चोट करो / उठो / और जिसने तुम्हें कुचला था/उसे घोड़े की नाल बना दो / उसकी हठवादिता को उसकी मजबूत दुर्भावनाओं को / सड़क पर मिला दो / उसकी पाखण्डी संगीने छीनो / और दोनों पर निकालकर / उन घमण्डी आँखों का पानी / चिड़िया को पिला दो।

(1)

समकालीन कविता जहां एक ओर जनमानस के प्रति संवेदना आमीयका का भाव रखती है वहीं कवि जो महान होने का ढोंग करते हैं उनके चेहरे पर से नकाब उतारता है।

रात उनके लिए

दिन भर के कुकर्मों पर पड़ा पर्दा है

नंगे को कपड़े की तरह लपेट लेते हैं

ढके हुए

पूरे नंगे हो जाते हैं

रात हरेक को प्रभावित करती है।(2)

समकालीन सामाजिक जीवन तनाव भरा है समकालीन कवि ने समकालीन कविता में अति यथार्थ को स्तरीय अभिव्यक्ति दी है। सामाजिक जीवन में सम्बन्धों में तनाव जो अधिक बढ़ता जा रहा है। पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव का कारण भौतिकवाद, कृत्रिमता और स्वार्थपरकता है।

किसी ने कहा / इसकी कोई जुबान नहीं / जब इसे कहना कुछ और करना कुछ होता है / तो यह इसी तरह अपनी जुबान बदल लेता है / मतलब इधर भी चरता है उधर भी चरता है।(3)

समकालीन कवि आम आदमी के दुख दर्द की अभिव्यक्ति सहजता से करता है। ग्रामीण जीवन की दशा और दिशा पर संकेत करते हुए कवि लिखता है।

कुएँ पर झुकी हुई एक स्त्री

बैलगाड़ी की चूँ-चूँ और पाताल से आता हुआ

एक बाल्टी पानी

प्यासे दुख उसकी प्रतीक्षा में है

इस अनोखे जड़ चित्र को निहारने में अब रतिभर रुचि नहीं है

हिलती हुई लालटेन के बावजूद

धयसारी स्त्री पर बोझ और पेट में बच्चे के बावजूद
हजारों हजारों लोग
कभी - कभी एक गमछे से झाड़ी पोंछी अपनी जिन्दगी में
पैदा कर ओढ़ते-बिछाते हैं एक गाना
जिसका सिरहाना पैताना नहीं पता चलता।(4)

समकालीन कविता जहाँ एक ओर आम जन के दुख दर्द को सहजता से अभिव्यक्त करती है। वहीं उसे अव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था से लड़ने की प्रेरणा देती है।

मेरी कविता इस इन्सान का ब्यान है
जो बन्दूकों के गोदाम से
अनाज की खवाहिस रखता है। (5)

समकालीन हिन्दी कविता में जानवाद की प्रवृत्ति है। समकालीन कविता में जनवादी चेतना को प्रोत्साहन देने वालों में अरुण कमल का नाम उल्लेखनीय है। इसी क्रम में अरुण कमल जी लिखते हैं।-

किसी दिन तो कभी तो
बड़ी होगी जड़े अन्दर
और चलकर पिया होगा
एक ही जल कुण्ड से जल
कहीं सुदूर पृथ्वी में जब हमारे रोम अन्तिम
मिले होंगे
तब अचानक हिली होगी फुनगियां तक
एक ही तो भूल में हम
एक ही है भूमि जल संसार अपना
एक ही अन्नत प्रदेश
उतने ही अलग
उतने ही एक
जितनी दो आँखें(6)

समकालीन कविता आम जनता से सम्पृक्त है। इसलिए उनकी कविता में अनुभूति की गहराई दृष्टिगोचर होता है। अपनी कविता में वे निर्धन, असहाय कमजोर मनुष्य को वर्णित करते हैं। उनकी कविता निर्बल मनुष्य का पक्ष लेती है जो शासकों का निशाना बनाती है।

केवल शब्दों का फाहा लिए
जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से
जो सबसे कमजोर है
जो अपने कोटे के लिए भी हाथ उठा नहीं सकता
जो न शासक बनना चाहता है न शासित
पर जो लक्ष्य है केवल लक्ष्य वीर धनुधारी का।(7)

सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए लिखते हैं।-

गुजरता है क्यों मेरा रास्ता
उजड़े घरों बर्बाद खेतों से

समकालीन हिन्दी कविता में जहाँ जनवादी चित्रण है वहीं संवेदनशीलता भी है। नारी की संघर्षशीलता का वर्णन समकालीन कविता में है। अत्याचार से पीड़ित स्त्री बार-बार घर से भागने का प्रयास करती है। सामाजिक

वर्जनाए उसे पुन. बार-बार घर की चारदिवारी में लौटने के लिए विवश करती है। उसे मुक्ति का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता।

वह बार-बार भागती रही
ज्यों अचानक किसी ने नींद से पुकारा
कभी किसी मन्दिर की सीढ़ी पर बैठी रही घंटों
और फिर अन्धेरा होने पर लौटी
कभी किसी दूर के संवन्धी किसी परिचित के घर
दो-चार दिन काटे।(8)

भौतिकतावाद, बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति के कारण हमारी संस्कृति एवं मूल्यों में बिखराव आ चुका है। हमारे परम्परागत विरासती मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी ने विज्ञान में तो तरक्की कर ली है लेकिन मूल्यों के विरक्त होते जा रहे हैं। नकारात्मक मूल्य उनके नायक बन रहे हैं। यह चिन्ता का विषय है। संवेदनशीलता के स्थान पर भौतिकवाद पनप रहा है। अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में चित्रण किया है। कैलाश बाजपेयी हवा में हस्ताक्षर कविता में लिखते हैं -

आज तक कोई उपयोग न कर पाए हम
तुम्हारी चुप चीख को

हमें माफ करना मां बाजार में
आह का कोई मूल्य नहीं है।(9)

वर्तमान में मूल्यों एवं रिश्तों का कोई महत्व नहीं है। इनकी स्थिती ठीक बैंक के ए.टी.एम की तरह है। यदि ए.टी.एम में पैसा है तो कीमत है यदि पैसा नहीं तो शून्य। हमारे मूल्य टूटते जा रहे हैं। इस दौर में जिस प्रकार ग्लास में दूध, चाय या पानी खत्म होने पर उसे तोड़कर फेंक देते हैं ठीक उसी प्रकार रिश्ते भी अर्थ आधारित हो रहे हैं।

लोक संस्कृति और गांव में स्पन्दित चेतना समकालीन कविता में दृष्टव्य है। अभिनव कदम पत्रिका में प्रकाशित उपेन्द्रनाथ मिश्रा की कविता गांव में लोक चेतना वर्णन है। मनुष्यता को मिटाने वाले उतर आधुनिक औजारों से कवि मुक्ति चाहते हैं। बचपन में देखे गांव को बचाने की इच्छा उसके मन में प्रवलबन जाती है।

शहर से दूर
लौटना चाहता हूँ गाँव की पगडंडियों पर
गाना चाहता हूँ प्रेम देवता की ऊर्जा को
पीपल की छांव में बतियाना चाहता हूँ
बचाना चाहता हूँ विलुप्त हो रही लोक धुनों को।(10)

युद्धरत आम आदमी 2001 के विशेषांक में प्रकाशित कविता ग्रेस कपूर की एक और जनी शिकार है। उदाहरण द्रष्टव्य है।-

कहां गई महुआ की सुगंध
महुआ और डोरी की
गूलर और केरोंडू की
कहां खो गया बांसों का संगीत
और न जाने कहां उड़ गई
संघना की सुगंध।(11)

समकालीन कविता में लोक बिम्ब भी कवियों ने प्रस्तुत किए हैं। अरुण कमल की कविता 'मातृभूमि' में लोक विंब का आकर्षण रूप मिलता है। कवि को लगता है कि मैं मेले में खोए बच्चे के समान हूँ। धान के पौदों ने इतना ढक दिया है कि रास्ता तक नहीं सूझता। ये पक्तियाँ लोक मानस के चिन्तन का उदाहरण है -

वे बकरियाँ जो पहले बूंदे गिरते ही
भागी और छुप गई पेड़ की ओट में
सिंधु घाटी का वह साँढ
खूब चौड़े पट्टेवाला जो भीगे जा रहा है
पूरी सड़क छँके।।(12)

जगदीश विकल की कविता तीज पुजाई रिश्तों के रेशों को उजागर करती है। बेटी की चिट्ठी मिलने पर माँ के मन में उभर आती है। चिन्ताएं यहां वर्णित हैं -

आहत अबोध कबूतर की तरह
माँ के हाथ में
कांप रही है बेटी की चिट्ठी
अक्षर-अक्षर से झरते हैं
दुःख और आँसू
पहली बार गई है
बेटी ससुराल
और गई नहीं तीज पुराई।(13)

निष्कर्ष

समकालीन हिन्दी कविता में समाज एवं मूल्यों का विघटन अत्यन्त सुदृढ़ ढंग से प्रस्तुत किया है। समकालीन युग में बाजारवाद भूमण्डलीकरण के प्रभाव के समाज में मूल्यों में गिरावट आई है। सामाजिक मूल्यों में टुटन एवं बिखराव है। यह चिन्तनीय है।

संदर्भ

1. रात आब भी मौजूद है - लीलाघर जगूड़ी - पृ0 - 24-25
2. बची हुई पृथ्वी - लीलाघर जगूड़ी - पृ0 - 22
3. रात अब भी मौजूद है - लीलाघर जगूड़ी - पृ0-22
4. भय भी शक्ति देता है - लीलाघर जगूड़ी - पृ0-114
5. घबराए हुए शब्द- लीलाघर कमल - पृ0-36
6. अपनी केवल चार - अरुण कमल - पृ0-88 वाणी प्रकाशन दिल्ली - 1996
7. नए इलाके में - अरुण कमल - पृ-23 वाणी प्रकाशन दिल्ली - 1996
8. पुतली के संसार - अरुण कमल - पृ0 - 18 वाणी प्रकाशन दिल्ली - 2004
9. हवा में हस्ताक्षर - कैलाश बाजपेयी - पृ0-10
10. अभिनव कदम - अक्टूबर 2000- पृ0-28
11. एक और जनी - ग्रेस कपूर - पृ0 - 21
12. कांची पत्रिका - नवम्बर - 2002 पृ0-21
13. मधुमति जनवरी -2008 पृ 03

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सपना' कहानी में व्यक्त धार्मिक भेदभाव का चित्रण

प्रा. अमोल रमेश इंगले

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
शिवनेरी महाविद्यालय, शिरूर अनंतपाल,
जि. लातूर महाराष्ट्र-413 544

भारतीय समाज व्यवस्था की नींव वर्ण और जाति के आधार पर बनी हुई है। सामाजिक मूल्यों के निर्धारण में धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। कारण समाज और धर्म का अटूट रिश्ता है। धर्म के प्रभाव से ही सामाजिक मूल्यों का संवर्धन होता है तथा पूरा समाज नियंत्रित रहता है। वेद, पुराण, शास्त्र, मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रंथों के आधार पर ही समाज के नियम, रीति रिवाज, रूढ़ि परंपराएँ बनी जो भेदपूर्ण थी। बहुजन वर्ग के लिए अभिशाप बनकर उभरी है। जिससे हमारे देश की जाति व्यवस्था तथा धर्म व्यवस्था शूद्र, आदिवासी, पिछड़े एवं नारी के लिए कितनी दर्दनाक एवं शोषणकारी थी यह ज्ञात होता है। देश में कई कुरीतियों को धर्म के मूल्य के नाम पर जायज़ ठहराया गया है। जिसकी बदौलत भारतीय समाज बिखरकर अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िग्रस्तता परंपराएँ आदि से खोखला बन गया था। ब्राह्मणी व्यवस्था ने हजारों सालों से समाज व्यवस्था पर अपनी हुकूमत बनाकर लोगों को वर्ण और जाति में विभाजित किया था। इस बिगड़ी सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था को सुधारने के लिए देश के विभिन्न युगों में जन्मे गौतम बुद्ध, संत तुकाराम, महात्मा बसवेश्वर, संत कबीर, ई. वी. पेरियार रामास्वामी, राष्ट्रपिता ज्योतिबा फुले, लोकहितैषी राजर्षि शाहू महाराज तथा संविधान निर्माता डॉ. भीमराव आंबेडकर जी ने अपने हिसाब से जन आन्दोलन चलाते हुए समतामूलक समाज के लिए समता, बंधुता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों की स्थापना की।

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ। संविधान की शुरुआत ही 'हम भारत के लोग' इन शब्दों से हुई है। जिससे एकता, समता और मानवता से जोड़ने की बात से हुई है। न्याय, स्वातंत्र्य, समानता, बंधुता तथा धर्मनिरपेक्षता संविधान के प्राणतत्व हैं। भारतीय संविधान और कानून सभी के लिए समान हैं, न कोई छोटा है न कोई बड़ा, कोई भी व्यक्ति शोषित या शोषक ना हो, सभी समान हो। ऐसा होने के बावजूद आजादी के चौहत्तर साल बाद भी जातिवाद और धार्मिक ढकोसलापन बढ़ता ही नजर आता है। वैश्वीकरण के युग में भी भारतवर्ष में मनुष्य के पवित्र, अपवित्र की बात चल रही है। आज भी दलितों के मंदिर प्रवेश से ईश्वर अपवित्र हो जाता है। यह घटना है विकास के झुल में झूलनेवाले गुजरात की जहाँ से हमारे देश के प्रधानमंत्री आते हैं। जो बार-बार संवैधानिक मूल्यों की बात करते हैं, एकता, समता और न्याय की बात करते हैं, 'वसुधैव कुटुंबकम्' की बात करते हैं। उन्हीं के प्रदेश में कच्छ जिले के भचाऊ तहसील के नेर नामक गाँव की अक्टूबर 2021 की घटना है। नेर गाँव में राम मंदिर प्राण प्रतिष्ठापणा में वाघेला नामक दलित परिवार भी दर्शन लेने जाता है लेकिन सवर्ण गाँववालों को यह बात हज़म नहीं हुई। उन्होंने उस दलित परिवार को धारदार हथ्यारों से वार कर लहलुहान कर दिया उनके खेतों में जानवर छोड़ दिए। उस दलित परिवार का इतना ही गुनाह था कि वे गाँव के राम मंदिर प्राण प्रतिष्ठापणा में दर्शन लेने गए थे और सवर्णों का मानना था कि तुम दलितों ने हमारे राम को अपवित्र कर दिया है। आज 21वीं सदी में भी मनुष्य के पवित्र, अपवित्र की बात चल

रही है। आपकी समता मूलक बातें बकवास हैं और आपके धर्म में ढकोसलापन नज़र आता है। इस घटना से मन में यह सवाल खड़ा होता है कि व्यवस्था के लिए मनुष्य है या मनुष्य के लिए व्यवस्था है? कौन कहता है कि आज दलित, आदिवासी, पिछड़े नारी आदि के साथ भेदभाव नहीं होता? इस संदर्भ में डॉ. सुरेश तायडे का मन्तव्य निम्न प्रकार से हैं- "शताब्दियों से भारत परंपराओं, नीतियों तथा रूढ़ियों का दास रहा है। तभी से हमारे समाज में वहीं रूढ़ियाँ, वहीं परंपराएँ, वहीं अंधविश्वास घर किए हुए हैं।"¹

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सपना' कहानी में हिंदू धर्म के ठेकेदारों की पाखण्डता को बखूबी से चित्रित किया है। साथ ही दलितों को धार्मिक अनुष्ठान में बैठने पर इनको उठाना, इनका धार्मिक शोषण तथा भेदभाव है।

प्रस्तुत कहानी में घना जंगल काटकर कारखाना तथा सभी सुविधाओं से युक्त कालोनी बनाई जाती है जिसके बीच में लम्बा-चौड़ा विस्तीर्ण मैदान खाली पड़ा हुआ था। इस मैदान को देखकर वरिष्ठ अधिकारी गजानन शिरोडकर निरंतर सपना देखते हैं कि उसमें एक बड़ा-सा कॉलेज या कोई अनुसंधान संस्थान बनना चाहिए। एक दिन वे अपनी पत्नी से पूछते हैं कि क्या बनवाया जाए। जवाब में वह कहती है कालोनी में मंदिर का अभाव है। परिणामस्वरूप शिरोडकर खुशी से उछल पड़े कि वे मैदान को आदर्श जगह कहलाने हेतु वहाँ मंदिर, मस्जिद, चर्च तथा गुरुद्वारा एक ही समय बनाने की सोचते हैं। दूसरे ही दिन वे मंदिर परिसर समिति का गठन करते हैं जिसमें सभी समुदाय के लोगों को शामिल किया गया था। उन सदस्यों ने अपने-अपने समुदाय के लोगों की एक उपसमिति बनाकर मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा के निर्माण की योजना साकार करना शुरू किया था।

हिंदू मंदिर बनवाने के लिए नटराजन के नेतृत्व में एक उपसमिति बनाई गई जिसकी बैठक अनौपचारिक ढंग से आरंभ हुई। मंदिर किस भगवान का बनाया जाए इसे लेकर ही काफी विवाद हुआ क्योंकि हिंदूओं में ढेर सारे भगवान जो हैं। बालाजी, शिवालय, राम, कृष्ण, बजरंगबली, विष्णु, गणेश, आयप्पा, संतोषी माँ आदि के नाम सामने आएँ। तब तक शिरोडकर जी का तबादला हुआ और उनकी जगह पर रामास्वामी आ गए थे। नटराजन ने मंदिर की यह बात रामास्वामी से बताई तथा समिति में से कुछ लोग ऐसे थे जो कुछ नहीं करने दे रहे थे। उन्हें निकालकर इस समिति में स्व-पक्ष के लोगों को शामिल कर लिया था।

मंदिर समिति ने बालाजी मंदिर के निर्माण पर मोहर लगा दी थी। नटराजन ने मंदिर समिति में ऋषिराज को लिया था। इसमें एक सोची समझी-चाल थी क्योंकि वह कारखाने का वर्कर था, काफी जुझारू किस्म का नौजवान था। हर गतिविधियों में वह पूरी लगन तथा ईमानदारी से जुटा रहता था। वह दिन-रात सामाजिक कार्यों में तथा मंदिर निर्माण हेतु चन्दा इकट्ठा करने में जुट गया था। उसने ठेकेदारों, उद्योगपतियों, व्यापारियों से सहयोग लिया था। मंदिर निर्माण-कार्य तीव्र गति से शुरू हो गया था जिसमें उसने अनिलकुमार गौतम की हर पल मदद ली थी। जैसे-जैसे मंदिर निर्माण पूर्णता की ओर बढ़ रहा था, वैसे-वैसे नटराजन की धार्मिक गतिविधियाँ बढ़ने लगी थीं। बालाजी का विशाल मंदिर निर्माण हुआ। प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा का दिन भी तय होते ही प्रतिष्ठापणा हेतु तिरुपति के वेद-शास्त्रों के ज्ञाता स्वामी आदित्याचार्य को बुलाया गया। मंदिर के प्रांगण में बड़ा-सा शामियाना तथा पूजा मंडप सजाया गया था। पूजा की सारी तैयारी हो गई थी। कालोनी तथा आस-पास के लोग आ रहे थे। अनिलकुमार गौतम ने अपने और ऋषिराज के परिवार को

लेते हुए जल्द ही आकर पंडाल में अपने परिवारवालों को सबसे आगे बिठा दिया ताकि भीड़ बढ़ जाएगी तो पीछे से कुछ दिखाई भी नहीं देगा तथा वहाँ से स्वामी जी का चेहरा एवं भगवान बालाजी की प्रतिमा स्पष्ट नजर आएगी।

गौतम को पंडाल में आगे बैठा हुआ पाकर नटराजन चौंकते हुए बोला- “वहाँ गेट के पास चले जाओ। जो भी भीतर आए उनसे जूते उतारने के लिए कहो। जूते पहनकर कोई पंडाल में न आए। और जूतों पर नजर रखना, ऐसे में जूता चुराने वाले मँडराते रहते हैं।”²

गौतम पत्नी तथा बच्चों को उसी जगह पर बैठने को कहता है तथा बाहर का काम देखने जा रहा था कि नटराजन गौतम से कहता है- “गौतम, अपने बच्चे और पत्नी को भी पीछे ही ले जाओ...वहीं बैठा लो... जाईए भाभी जी...”³ प्रतिरोध करते हुए तथा वहीं पर ही बैठने को कहते हुए समाज के नियम एवं कायदे के बारे में गौतम द्वारा पूछे जाने पर नटराजन व्यंग्य भरे शब्दों में कहता है- “जिसका जो काम है इसे वही तो दिया जाएगा।”⁴ क्योंकि नटराजन ने पहले ही अपने विश्वसनीय लोगों को बता दिया था पंडाल में हिसाब से देखकर आनेवालों को आगे बिठाने तथा आलतू-फालतू लोगों को न बिठवाने को कहा था। फलतः गौतम बिगड़ गया था। लेकिन बाद में पता चला कि गौतम तथा उसके परिवार को आगे से इसीलिए उठाया ताकि वे एस.सी. हैं। नटराजन ऋषिराज से समझाते हुए कहता है- “फर्क पड़ता है... पूजा अनुष्ठानों में उन्हें आगे नहीं बिठाया जा सकता? यह रीत है। शास्त्रों की मान्यता है।”⁵ ऋषिराज उन्हें समझाता है कि उसी दिन ही आपको मालूम हुआ है कि गौतम एस.सी. है। लेकिन जब वह मंदिर के निर्माण में दिन-रात अपना खून पसीना बहा रहा था, तब आप नहीं जानते थे कि वह एस.सी. है। तब अपने क्यों नहीं रोका मंदिर के काम में हाथ न बँटाए। मंदिर की ये सारी चीजें किसी एस.सी. ने ही बनाई हैं तो इससे मंदिर कैसे बना? इस अनुष्ठान में केवल गौतम ही नहीं और बहुत सारे लोग बैठे हैं, किस-किस को उठाओगे। तब रामलोचन उपाध्याय कहता है- “अरे, यह मंदिर उसका कैसे हो गया। ज्यादा ही पूजापाठ का शौक है तो अपना मंदिर बना ले अलग से। किसने रोका है। यह हमारा है। हम पूजा-पाठ अनुष्ठान अपने ढंग से करेंगे। उसमें किसी शूद्र या मलेच्छ का प्रवेश निषेध है।”⁶

प्रस्तुत ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की ‘सपना’ कहानी में मंदिर निर्माण के काम में दिन-रात पसीना बहानेवाले अनिलकुमार गौतम को प्राण-प्रतिष्ठा के समय एस.सी. कहकर आगे से उठाया जाता है जो यह धार्मिक क्षेत्र में दलितों का शोषण ही नहीं भेदभाव भी है।

संदर्भ सूची:

1. तायडे, डॉ. सुरेश, 2009, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में शोषण के विभिन्न रूप, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, पृ. 202
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 2016, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, चौथा संस्करण (पेपरबैक्स), पृ. 27
3. वहीं, पृ. 27
4. वहीं, पृ. 28
5. वहीं, पृ. 29
6. वहीं, पृ. 30

बाइसवी सदी उपन्यास में संवैधानिक मूल्य

डॉ.मा.ना.गायकवाड

कै.व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय बाभळगाव

हिंदी साहित्य जगत में बोधिसत्व महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम अग्रणी है। समग्र हिंदी साहित्य में विज्ञान दर्शन — ०३, धर्म संस्कृति पर ०६, इतिहास पुरातत्व तथा नेतृत्व पर १२, आत्मकथा जीवनियाँ १४, राजनीति साम्यवाद पर ०९ ग्रंथ, हिमालय दर्शन : यात्रा वर्णन पर १५ ग्रंथ, साहित्य चिंतन पर ०९, कथा साहित्य : उपन्यास ०८, कहानी साहित्य ०४ संग्रह, कथा साहित्य अनुवाद पर ०९, भोजपुरी नाटक ०८, कोश साहित्य ०३, संकलन अनुवाद संपादन (संस्कृत,पालि,प्राकृत) १६ महाग्रंथ, अप्रकाशित ०९ ग्रंथ, अंग्रेजी ग्रंथ ०१, पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की संख्या ७० से भी अधिक है। अर्थात् १२५ से भी अधिक ग्रंथ लिखनेवाले एकमात्र विद्वान राहुल सांकृत्यायन ही है। हिंदी जगत साहित्य में अन्य लेखकों की तुलना में मनुवादी आलोचकोने जानबुझकर नजरअंदाज किया, क्यों कि, वे संवैधानिक मूल्य के बीज समाज में बोना चाहते थे।

राहुल सांकृत्यायन के कुछ उपन्यास भले ही ऐतिहासिक हो लेकिन उसमें भी समता, स्वातंत्र्य, बंधुता और न्याय का संदेश देकर जाते हैं। उनका बाइसवी सदी उपन्यास तो मात्र संवैधानिक मूल्य के लिए ही लिखा गया है ऐसा लगता है। जहां जहां संवैधानिक मूल्य दिखाई देता है, वहां समाज में सुख, शांति, आनंद होता है। और दुःख, पीडा, वेदना आदि समाज से लुप्त होती है।

बाइसवी सदी यह उपन्यास सन १९२३ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को हिंदी का पहला युटोपिया उपन्यास माना जाता है। यह सामाजिक उपन्यास है। साम्यवाद का प्रतिबिंब करनेवाला यह उपन्यास भारत में बाइसवी सदी में साम्यवाद की अपेक्षा रखता है। आगामी भारत की सभ्यता और संस्कृति की सजीव कल्पना इस उपन्यास में की गई है। अर्थात् आज से ९८ साल पहले उपन्यासकार ने सोचा था कि, बाइसवी सदी में भारत का चित्र कैसा होना चाहिए इसका चित्र प्रस्तुत उपन्यास में बड़ी ही सजगता के साथ किया है।

उपन्यास का नायक विश्वबंधु के माध्यम से उपन्यासकारने संवैधानिक मूल्य का रोपन किया है। मुख्य पात्र विश्वबंधु फरवरी १९२४ को नेपाल के समीप पर्वतीय गुफा में किन्ही अज्ञात कारणों से मुर्च्छित हो जाता है। उसकी निद्रा ठीक २०० वर्ष पश्चात भंग होती है। इन २०० वर्षों में सम्पूर्ण विश्व प्रत्येक दृष्टिसे परिवर्तित हो चुका है। यह सुखद परिवर्तन है। मानवीय समता, स्वातंत्र्य, बंधुता और न्याय का अद्भुत निवास सुवास बिखेर रहा है। “ भूमंडल में सभी जगह अब समता का राज है। धर्म के नाम पर, धन और प्रभुता के नाम पर, गोरे और काले के नाम पर जो अत्याचार होते थे। कितनी की मानव — सन्तान दूसरे के नीचे आजन्म कुचली जाती थी, उन सबका अब नाम नहीं। अब मनुष्य—मनुष्य बराबर है, स्त्री—पुरुष बराबर है सभी जगह श्रम आप भोग का समत्व मूल मंत्र रखा गया है।..... सारे भूमंडल के निवासियों का कुटुंब एक है। पृथ्वी की स्थावर जंगम संपत्ति उसी कुटुंब की संपत्ति है।” ०१ इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, राहुलजी ने समता, स्वातंत्र्य, बंधुता को कितना महत्व दिया है। अतः संपूर्ण उपन्यास ही संवैधानिक मूल्यों पर आधारित है। राहुलजी स्वयं बुद्ध तत्वों से प्रभावित थे। बुद्ध का तत्त्वज्ञान ही संवैधानिक मूल्य ही है। बुद्ध ने अपना संपूर्ण जीवन समजा, स्वातंत्र्य, बंधुता न्याय का ही प्रसार कर मए ऐसी व्यवस्था लाजा चाहते थे कि, इस धातल पर सभी ओर समानता हो। समानता तभी संभव होती है। जब स्वतंत्रता हो और स्वतंत्रता से ही बंधुत्व का जन्म होता है। यही संदेश राहुलजी इस उपन्यास के माध्यम से दिया है। उपन्यास को सोलह शीर्षकों में विभक्त किया गया है। वह सभी शीर्षक भी संवैधानिक मूल्य ही दर्शाते हैं। लेखक दिखाना चाहते हैं कि, समता स्वातंत्र्य, बंधुता कैसी होती है। जिस देश में समता, स्वातंत्र्य और बंधुता होती है वह राष्ट्र सम्पन्नता और विकास की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। सामाजिक देशवासि रामराज्य की कल्पना तभी कर सकता है यदि उस राष्ट्र में समता, स्वातंत्र्य, बंधुता हो तो। उपन्यास के सारे शीर्षक व्यवहारिक नियोजन दर्शाते हैं। उत्पाद के अनुसार गाँव के नाम रखे गए हैं। गाँव का कारोबार किस प्रकार होना चाहिए और शासन प्रणाली किस प्रकार होना चाहिए, इसका उत्तम उदाहरण है ‘बाइसवी सदी’ उपन्यास।

विश्वमित्र जब देवमित्र के साथ बाहर का नजारा देखने लगते हैं तो सभी ओर समानता का दर्शन होता है। वह कहते हैं, “मैंने जब समाज की ओर देखा वहाँ न कोई कृश था न मलिन। स्त्री पुरुष सब गद्दीदार बेंचों के उपर बैठे थे।” ०२ उपन्यासकारने यहाँ स्त्री-पुरुष समानता को दिखाया है। नारी को सम्मान जनक दृष्टि से देखा जाना आवश्यक है। जो आजकल नहीं होता। इसलिए नारी अत्याचार हो रहे हैं। यदि नारी को वस्तु के रूप में न देखते हुए समानता का दर्जा देकर सम्मान किया जाए तो नारियों पर के अत्याचार निश्चित रूप से कम हो सकते हैं। नारी को सभी क्षेत्रों में देना चाहिए अन्यथा उसका विकास नहीं हो सकता है। प्राचीन काल से नारी धार्मिक नियमों में जकड़ी हुई है। संविधान ने उसकी सलाखें तोड़ दी। फिर भी समाज मानने के लिए तयार नहीं है। स्वातंत्रता ७५ वर्षों के बाद भी नारी धार्मिक बंधनों में जकड़ी हुई है। इस धार्मिक बंधनों को तोड़ने का इसारा उपन्यासकार ने दिया है। “बडगाँव नाम का एक छोटा सा ग्राम वहाँ था, जहाँ अब भी सूर्य मंदिर है। कार्तिक की सूर्य षष्ठी का मेला अलबत्ता एक दिन का होता था, जिसमें महिलाएँ ही अधिक सम्मिलित हुआ करती थी। आप को ज्ञात है, उस समय स्वार्थन्धता का साम्राज्य था। पुरुष स्त्रियों के शिक्षा को धर्म की हानी समझते थे। हमारे मुसलमान भाईयों ने धर्म के साथ से स्त्रियों को जकड़बंद किया, जिसकी देखा-देखी समस्त उत्तरी भारत स्त्री-जाति का एकान्त कारागार हो गया था।” ०३ किसी भी प्रगति के लिए शिक्षा ही मूलजडे है। जो धर्म नारी शिक्षा को धार्मिक हानी मानता है वह धर्म नहीं। आखिर धर्म एक आचरण पद्धति है। धर्म का और मानवीय प्रगति का कोई सम्बंध नहीं है। लेकिन आज धर्म को आगे कर महिलाओं के शिक्षा पर सवाल खड़ा किया जाता है। यह बड़ी दुःख की बात है। संवैधानिक मूल्य के अनुसार सभी को अपना हक्क मिलना चाहिए तभी समता, स्वातंत्र्य, बंधुता के प्रति जागृति होगी।

‘बाइसवी सदी’ के विश्वबंधु वर्गहीन समाज के व्यक्तियों को बीसवी सदी के जाति, वर्ग धर्म, लिंग-भेद आदि की जानकारी देते हैं, तो इस्माइल तथ्यों से इसकी पुष्टि करते हैं। इस्माइल स्त्रियों की गिरी दशा को पढ़कर आश्चर्यचकित होता है और धर्म-संम्प्रदाय के नाम पर मारकाट को देख दाँतो तले उँगली दबाता है। यह इस्माइल का विश्लेषण ज्यादा विश्वसनीय है। प्रियंवदा से उसका प्रेम राहुल के अभीष्ट आदर्श की सम्भावित पूर्ति नहीं है ? बाइसवी सदी में स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता अधिकार प्राप्त होंगे, प्रगतिविरोधी धर्म का अस्तित्व नहीं रहेगा, धनिकों का वर्चस्व समाप्त होगा तथा वस्तुओं का मूल्य राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुकूल आँ जाएगा। न जाति या रंग-भेद होगा आदि।

उपन्यास में शासन-व्यवस्था पूर्णतः चिन्तन लोकतांत्रिक है, गाँव की संरचना आधार की तरह है जिससे एक आत्मनिर्भर व्यवस्था का जन्म होगा जा तहसील, प्रान्त देश से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय सभा तक व्याप्त होगी। राहुलजी के अनुसार दक्षिण अमेरिका के ब्राजील देश की नारंग नदी के किनारे ऐसा स्थान होगा। मनुष्य के सर्वांगीन विकास की ठोस रूपरेखा ‘बाइसवी सदी’ में है। भाषा से जीवन की परिभाषा तक लेखक के तार्किक विचार विस्तारित हैं। शिशु शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक सम्यक् करते हैं। जीवन में जाति वर्ण वर्ग धर्म-स्त्री-पुरुष का भेद न हो, यही आदर्श है। प्रगतिशील समाज में ग्राम-व्यवस्था से विश्व-व्यवस्था तक समाज व्यवहार अपेक्षित है, इसका चित्रण इस कृति में है। रेल-यात्रा प्रसंग में अतीत काल के शोषितों का वर्णन राहुलजी ने विस्तार से किया है। “एक वह भी समय था, जब संसार में सबसे कड़ी मेहनत करने वाले को ही सबसे अधिक दुःख था। यह बैठने, सोने का आराम, यह पढ़ने-लिखने का सुभीता, यह खाने-पीने की बेफिक्री पहले कहाँ नसीब थी।” ०४ राहुलजी ने अपराध, चोरी, संग्रह आदि के मूल में स्थित सामाजिक विषमताओं को समाप्त करने की आवश्यकता स्पष्ट की है।

‘बाइसवी सदी’ राहुलजी के संवैधानिक मूल्य का महाभाष्य है। जिस प्रकार बुद्ध ने संघ को महत्व दिया था उसी प्रकार राहुलजी ने इस उपन्यास में सांघिकता को भी महत्व दिया है। राहुलजी जिस वातावरण को देख रहे थे उससे उब चुके थे। समाज में एक ओर पूँजीपतियों का राज तो दूसरी ओर पूँजीपतियों द्वारा गरीब, दुःखी जनों का शोषण। एक ओर भूख है तो दूसरी ओर घी की पूरियाँ तलने की खुशबू है। यही विषम-दृष्ट्य राहुलजी को लिखने के लिए प्रेरित करता है। परिवर्तन अनिवार्य बन चुक था। परिवर्तन की जो मान्यताएँ भगवान बुद्ध ने प्रस्तुत की हैं उन सभी मान्यताओं को केंद्र में रखकर ही राहुलजी ने अपनी वैचारिक यात्रा शुरू की। जहाँ समानता का अधिकार हो, जातिभेद नष्ट हो, स्वातंत्र्य तथा बन्धुता हो, चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो। इस प्रकार इस उपन्यास में बुद्ध के समता, स्वातंत्र्य, बन्धुता से लेकर कर्मवाद तक सभी प्रकार के दर्शन का उल्लेख किया गया है।

व्यक्ति तथा उन्नति के लिए समानता अनिवार्य अंग है। सामाजिक समता प्रगतिशील राष्ट्र का द्योतक है। समानता मनुष्य को मनुष्यत्व प्राप्त करा देती है। साथ ही बुद्ध ने सभी धर्मों को समान महत्व दिया है। सभी धर्म समान तथा सभी मावन एक जैसे होने का उपदेश दिया है। बिना किसी भेदभाव के संघ के दरवाजे मानव मात्र के लिए खुले रखे हैं। धार्मिक ईर्ष्या, व्यक्तिवेष आदि से आम आदमी को कोसों दूर रखने का प्रयास किया है। भूमंडल एक परिवार के समान है। 'शासन प्रणाली' सभी को एक ही तराजू में तोलते हैं। जो श्रम करता है केवल वही भोग्य का अधिकारी है। बाइसवी सदी उपन्यास में लेखक वर्तमान जगत से असंतुष्ट होकर एक नई आदर्शवादी समाज की कल्पना करते हैं। समाज को आदर्शवादी बनने के लिए संवैधानिक मूल्य की अनिवार्यता है। लेखक समकालीन व्यवस्था का अन्त करना चाहते हैं। विषम आर्थिक व्यवस्था ही कुछ लोगों को दुःखी बनाती है। अगर अर्थ का विभाजन समान हो तो कोई अमीर नहीं और कोई गरीब नहीं। कोई सुखी नहीं और कोई दुःखी नहीं। कोई भी व्यक्ति सूख में चोरी के मार्ग का अवलंब नहीं करता। चोरी के लिए उसकी परिस्थिति मजबूर करती है। चोरों पर पर्याय ढूँढ़ने के बजाय उस परिस्थिति का निर्मुलन किया जाय तो चोरी इस संसार से प्रायः लुप्त होगी। सम्पूर्ण उपन्यास में व्यभिचार का कहीं पर भी उल्लेख नहीं है। जहाँ व्यभिचार सम्बन्ध में शंकाएँ उठ सकती हैं। वहाँ लेखक ने नैतिकता की जोड़ देकर सामाजिक मान्यता के तहत विवाह में रूपांतरित किया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास आरम्भ से अन्त तक संवैधानिक मूल्य से संलग्न है। मानवता के लिए संवैधानिक मूल्य ही अधिक उपयुक्त हैं। वर्तमान दुरावस्था से छुटकारा पाना है और परिवर्तन लाना है। उपन्यास भले ही कल्पना के धरातल को समतल को है लेकिन समकालिन दुःख निवारण का एक मात्र साधन यह लेखक की धारणा रही है।

संदर्भ :

- | | | |
|-----------------------|------------|---------------|
| ०१) राहुल सांकृत्यायन | बाइसवी सदी | पृष्ठ क्र. ७७ |
| ०२) राहुल सांकृत्यायन | बाइसवी सदी | पृष्ठ क्र. २३ |
| ०३) राहुल सांकृत्यायन | बाइसवी सदी | पृष्ठ क्र. २५ |
| ०४) राहुल सांकृत्यायन | बाइसवी सदी | पृष्ठ क्र. ४८ |

संदर्भ ग्रंथ :

- | | |
|-----------------------|--|
| ०१) उर्मिलेश | राहुल सांकृत्यायन सर्जन और संघर्ष |
| ०२) डॉ. रवेलचंद आनंद | म. राहुल सा. का सर्जनात्मक साहित्य |
| ०३) कश्मीरी लाल | राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य |
| ०४) डॉ. सुदेश धाम | राहुल सांकृत्यायन का सृजनात्मक साहित्य |
| ०५) डॉ. परमानंद भारती | राहुल सांकृत्यायन को पढ़ते हुए |
| ०६) डॉ. मदन राय | राहुल सांकृत्यायन के साहित्य का सामाजिक संदर्भ |

वामनदादा कर्डक के काव्य में सामाजिक समता

-प्रो.डॉ.एम.डी.इंगोले,

हिंदी विभागाध्यक्ष, कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
गंगाखेड जि.परभणी-431514(महाराष्ट्र)

सदियों से हमारे सम्मुख यह यक्ष प्रश्न उपस्थित होता है कि, भारतीय समाज में विषमता क्यों है? मनुष्य के मन में एक दूसरे के प्रति विद्वेष की भावना क्यों है? मनुष्य का मनुष्य के प्रति अमानवीयता का व्यवहार क्यों होता है? समाज में ऊँच-नीचता की भावना क्यों है? समाज में जाति-भेद क्यों है? स्त्रियों के प्रति प्रतिबंध क्यों है? समाज में शोषण क्यों है? अर्थात् इन सभी प्रश्नों के उत्तर हमारे भारतीय समाज परंपरागत सोच और जनमानस के गठन में परिलक्षित होते हैं। आज के घोर शिक्षित वैज्ञानिक युग में भी हमारे समाज में अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास, अवैज्ञानिक सोच को उपर्युक्त सभी बातें दृष्टिगोचर होती हैं। इन सब बातों को समाज से मिटाने के लिए प्रयास नहीं हुए हैं ऐसी बात नहीं है। इसके लिए कई महापुरुषों ने अपना भरकस योगदान दिया है। परंतु समाज एक ऐसा वर्ग भी कार्यरत है, जो इन बातों को समाज से समाप्त होने देना नहीं चाहता। और वह प्रबल हैं। समाज में समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, न्याय, एकता, मानवीयता, शोषण मुक्त भारत की पेशकश हमारे कई महापुरुषों ने की हैं। यही नहीं डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरजी ने भी संविधान के माध्यम से इन मानवीय मूल्यों को प्रस्थापित करने की कोशिश की है। वामनदादा के पूर्व या समकालीन कवि-गायक, जलसाकारों कलाकारों में गोविंद आबाजी अहिरे, शा.घेगडे, शा.किसन फागूजी बनसोड, शा.भीमराव कर्डक, दलितानंद, प्रभाकर पोखरीकर, विजयानंद जाधव, गोपाल बाबा वलंकर, राजानंद गडपायले, लक्ष्मण राजगुरु आदि दिखाई देते हैं। हमें यहाँ केवल महाकवि वामनदादा कर्डक के काव्यालोकन द्वारा भारतीय समाज में उपरोक्त मूल्यों-तत्वों की प्रतिष्ठापना किस प्रकार हुई? इसे प्रस्तुत करना आलेख मूल उद्देश्य है।

वामनदादा कर्डक ने समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, न्याय, धम्म, लोकतंत्र, महिला अधिकार, सत्य, अहिंसा, मानवता, अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास, बुवाबाजी, ढोंग, पाखंड, विज्ञानवाद और संविधान तथा प्रस्थापितों द्वारा अन्याय-अत्याचार, पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मजदूर, किसान, गरीब जनता का शोषण आदि बातों का प्रकट रूप में चित्रण अपने काव्य साहित्य में किया है। यही नहीं इसका प्रचार-प्रसार अपनी शाहिरी, गायनकला के माध्यम से महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश भारत के आदि प्रदेशों में ताउम्र किया है।

समाज में समता स्थापित करने हेतु 'जाग उठो' कविता में वामनदादा मजदूर, किसान, गरीब, पिछड़े वर्ग को जागृत करने के लिए कहते हैं,

“जाग उठो, जाग उठो, जाग उठो;
आग बनके इस वतन के नाग उठो।
मेहनत का फल जो तुम्हें पाना है;
फल न मिले तो जलाने बाग उठो।”¹

इस तरह की तीव्र प्रतिक्रिया पूँजीवादी शोषण व्यवस्था के खिलाफ व्यक्त करते हैं। बल्कि इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। मूलतः प्राकृतिक संसाधनों पर प्रबल वर्ग या उद्योगपतियों वर्ग सदियों से कुंडली मार बैठा है। उनके प्रति विद्रोही स्वर 'धरती हमारी है' कविता में मुखर होता है-

“धरती हमारी है, दौलत हमारी है;

धरती के माटी में मेहनत हमारी हैं।”²

अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों जल , जंगल, जमीन पर अपना अधिकार वामनदादा जताते हैं। और शोषण के विरुद्ध अवाज उठाते हैं।

मानवीय अधिकारों का बोध व्यक्ति को तभी होता है जब वह शिक्षित होता है। इसलिए सबको शिक्षित होना अत्यावश्यक है। डॉ.आंबेडकरजी ने कहा है कि, ‘शिक्षा यह बाघिन का दूध है’ और जो इसे प्राशन करेगा वो अपने अधिकारों के प्रति निश्चित ही जागरूक होगा। इसलिए वामनदादा ‘शिक्षा’ कविता में लिखते हैं,

“शिक्षा दो शिक्षा दो, देश के सारे बच्चों को शिक्षा दो। जात न मानो, धरम न जानो,
भेद न मानो, सबको सारी शिक्षा दो।”³

ताकि उनके जीवन का तम दूर हो सके। अपना अच्छा जीवन बीता सके। साथ ही इसमें समता का भी संदेश मिलता है। समता प्रस्थापित करने हेतु वामनदादा ‘तोड़ दो तोड़ दो’ कविता में कहते हैं,

“तोड़ दो तोड़ दो तोड़ दो,
झूठे धरम के बंधन को अब तोड़ दो।
ये ऊँच-नीचता को अब तोड़ दो,
इंसा के नये नाते अब जोड़ दो,
ये दूर दूर रहना अब छोड़ दो।”⁴

अर्थात् सामाजिक समता की बात यहां कवि करते हैं। तो दूसरी ओर बंधुता, भाईचारे की बात करते हैं। समाज से भेदभाव मिटाने की बात करते हैं। वामनदादा ने लोगों में स्वाभिमानी चेतना भरने का काम भी किया है। ‘समता की शॉल नीली’, ‘समता की तरफ’ आदि में इस बात को पूरजोर तरीके से उन्होंने उठाया है। जुल्म-सितम, अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई है। जाति-पाँति के भेदभाव को मिटाने की हूँकार भरी है। और मानसिक गुलामी को दूर करने की कोशिश की है। वे ‘इतने दिन गुलाम रहे, अब ना रहेंगे’ द्वारा उक्त भाव को प्रकट करते हैं।

देश आजाद होकर सत्तर से भी अधिक साल हुए हैं पर यहां आम जनता की सच्ची आजादी अभी भी बाकी है। “हमारी आजादी की बात, यहाँ बाकी है” में वे पूरा ब्यौरा वर्णन करते हैं।

“डॉ.आंबेडकर कानून मंत्री थे तब 1948, अक्टूबर में हिंदू कोड बिल लोकसभा में प्रस्तुत किया।”⁵ और भारतीय महिलाओं को उनके मानवीय और पारिवारिक अधिकार दिलाने की पेशकश की। ठीक इसी बात को वामनदादा ने अपने काव्य का विषय बनाया। ‘स्त्री मुक्ति’ कविता के माध्यम से महिलाओं में जागृति लाने का प्रयास किया। “ना तोफों की जरूरत” में कवि बुद्ध के सत्य अहिंसा, मानवता की बात भी कवि करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। व लिखते हैं,

“ना तोफों की जरूरत हैं न बम की जरूरत,
संसार को ना जुल्म सितम की जरूरत।।
ना खून की रंगेली उस कलम की जरूरत,
जिसमें जले जहाँ न उस एटम की जरूरत।।

सच बोले तो धरती को है, गौतम की जरूरत।।”⁶

अर्थात् विश्व को युद्ध नहीं बल्कि बुद्ध की आवश्यकता है। युद्ध विनाश है तो बुद्ध स्वीकार से मानव कल्याण है।

वामनदादा कर्डक के काव्य साहित्य का और भी विविध दृष्टिकोण से अध्ययन किया जा सकता है। उनके काव्य में उनकी व्यक्ति रेखाएं, बाबासाहब का चरित्र, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, काव्य शास्त्रीय, भाषा, उनके काव्य में प्रतिमा और प्रतीक और विशेषतः “आंबेडकरवाद” आदि तत्वों को उनके काव्य में देखा-परखा जा सकता है। उपरोक्त तत्वों को वामनदादा की, ‘दिल्ली दूर नहीं’, ‘भारत का कानून’, ‘बुद्ध कहे’, ‘खुशी की बात’, ‘संसद में’, ‘वतन के लिए’, ‘गौतम के गांव में’, ‘जमाना बदलेगा’, ‘भला होगा’, ‘बढ़ते जाएगा’, ‘नये सारे’, ‘नया बल’, ‘शाम का उजाला’ आदि कविताओं में भी देखा-परखा जा सकता है।

काव्य, गीत-संगीत यह समाज प्रबोधन का प्रभावकारी माध्यम है। यह परंपरा अनेक वर्षों से निरंतर जारी है। उसमें विविध कलाओं का भी अपना मौलिक योगदान है। वामनदादा कर्डक ने भी अपनी गीत-गायन, शाहिरी कला के माध्यम से समाज प्रबोधन किसी भी प्रकार की अभिलाषा, अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना ताउम किया। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि, प्रोढ-शिक्षा अभियान, क्षयरोग, एड्स जैसी बीमारी आदि के निर्मूलन संबंधी जनजागृति करते हुए वामनदादा दिखाई देते हैं। यह परंपरा आज भी बरकरार है। शासकीय विविध जनकल्याणकारी योजनाओं का प्रचार-प्रसार अपनी गीत-गायन कला के माध्यम से किया जाता है। जिसका बहुत ही कम मात्रा में क्यों न हो शासन द्वारा मानदेय अदा किया जाता है।

संक्षेप में कहा ये जा सकता है कि, महाकवि वामनदादा कर्डक का काव्य शोषण मुक्त भारत का सपना देखता है। समता मूलक, जाति विरहित, सुख-शांति, अमन-चैन, खुशहाल जीवन व्यतीत करनेवाले, एकता और बंधुभाव से रहने वाले, स्त्री-पुरुष समानता युक्त समाज निर्माण हो। यह उसकी अभिलाषा निश्चित ही एक न एक दिन पूरी होगी ऐसी हम आशा व्यक्त करते हैं।

संदर्भ:

1. जाग उठो-संपा. डॉ.अशोक जोंधले(पृ.78)
2. दिल्ली दूर नहीं-संपा. अजय जोंधले(पृ.22)
3. जाग उठो-संपा. डॉ.अशोक जोंधले(पृ.74)
4. बोल उठी हलचल-संपा. रविचंद्र हडसनकर(पृ.47)
5. भारतीय संस्कृति कोश-खंड-1, संपा. महादेव शास्त्री जोशी(पृ.384)
6. बोल उठी हलचल-रविचंद्र हडसनकर(पृ.70)

‘निर्माणों के पावन युग में’, इस कविता में संवैधानिक मूल्य

कैप्टन डॉ.प्रो.अनिता मधुकरराव शिंदे

प्र-प्रधानाचार्या, महात्मा गांधी महाविद्यालय अहमदपुर
शोधनिर्देशिका तथा सदस्य, हिन्दी अध्ययन मंडल,
स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विश्वविद्यालय, नांदेड

कविता एक ऐसी विधा है जिसमें कम शब्दों में हम ज्यादा बात कह सकते हैं। हर कविता में कोई ना कोई मूल्य मिलता ही है। कविता में कवि शायद नहीं होते हैं पर सिर्फ समाज को एक निजता की संकीर्णता दे जाते हैं जो जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है। वर्तमान युग की नयी शिक्षा नीति में वे मूलभूत, नैतिक, मानवीय और संवैधानिक मूल्य जो, शिक्षा व्यवस्था को निर्देशित करेंगे वे छात्र छात्राओं में ऐसे गुणों को विकसित करना की उनमें सहनुभूती हो, दूसरो का सम्मान करे, देशभक्ती हो, साफ सफाई का महत्व समझे, उनमें विनम्रता हो, लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रेम हो और सेवाभाव हो। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयीजी की एक कविता है, “निर्माणों के पावन युग में” इस कविता में मानवीय मूल्यों को सामने रखते हुए नवयुवकों को नव राष्ट्र के निर्माण के प्रति प्रेरित किया है। उसमें से कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं-

निर्माणों के पावन युग में हम चरित्र निर्माण न भूलें !
स्वार्थ साधना की आँधी में वसुधा का कल्याण न भूलें !!

माना अगम अगाध सिंधु है संघर्षों का पार नहीं है,
किंतु डूबना मँझधारों में साहस को स्वीकार नहीं है,
जटिल समस्या सुलझाने को नूतन अनुसंधान न भूलें !!

शील, विनय, आदर्श, श्रेष्ठता तार बिना झंकार नहीं है,
शिक्षा क्या स्वर साध सकेगी यदि नैतिक आधार नहीं है,
कीर्ति कौमुदी की गरिमा में संस्कृति में संस्कृति का सम्मान न भूलें !!

अविष्कारों की कृतियों में यदि मानव का प्यार नहीं है,
सृजनहीन विज्ञान व्यर्थ है प्राणी का उपकार नहीं है,
भौतिकता के उत्थानों में जीवन का उत्थान न भूलें !!

प्रस्तुत कविता में अटलबिहारी वाजपेयीजी ने नूतन अनुसंधान, संस्कृति के सम्मान, जगत का कल्याण करने के साथ ही चरित्र निर्माण करने को विशेष महत्व प्रदान किया है। इस कविता के माध्यम से अटल बिहारी वाजपेयीजी ने वर्तमान मानवी जीवन में भारतीय परिस्थितियों को उजागर करते हुए नई- नई तकनीकी साधनों के साथ राष्ट्र को विकास की ओर ले जाना है और इक्कीसवीं सदी में अपने देश को विकसित देशों के पक्तियों में ले जाना है यह सोच कवि करते हैं। अपने देश में अनेक धर्म के, मजहब के लोग रहते हुए, उनमें विविधता में एकता दिखाई देती है यही भारत की पहचान है। प्रगतिवाद के साथ साथ हमें देश की गरिमा भूलनी नहीं चाहिए तथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता को भी राष्ट्र निर्माण के साथ जोड़ने की अपेक्षा कवि करते हैं। पुरातन युग से भारतीय संस्कृति का बोलबाला पूरे विश्व में अलग अंदाज से दिखाई देता है इसी संस्कृति को पाने के लिए अपने मन में इच्छा साहस रखते हुए अनेक विदेशी लोग भारत में आए, भारतीय संस्कृति का अध्ययन करके, भारतीय संस्कृति की विचारधारा अपने देश में ले गए।

कवि अटल बिहारी वाजपेयीजी भारतवासीयों को उपदेश देते हैं की, राष्ट्र को आधुनिक बनाने का समय आया है। वैश्वीकरण के दौर में भारत की अलग पहचान बनवाने के लिए भारत वासीयों को अपना चरित्र आदर्श बनाने के लिए कहते हैं,

यही इस कविता का जीवन संदेश है। वर्तमान युग को कवि ने निर्मिति का पवित्र युग कहा है। इस निर्माण के पवित्र युग में हमें प्रगतिवाद के साथ साथ चरित्र निर्माण को भी भूलना नहीं चाहिए क्योंकि चरित्र निर्माण के बिना मानव का कल्याण हो ही नहीं सकता, मानव कल्याण करना है तो सभी भारतीयों को अपने मन को पवित्र करना होगा, मन के विकार को दूर करना होगा, मन के विकार हमेशा के लिए खत्म हो जाते हैं, तो उनके अंदर परिवारहित, समाजहित और देशहित की भावनाएँ जाग जायेगी, इसीसे ही पुरे विश्व का कल्याण हो सकता है यही भाव कविने इस कविता में उजागर किया है।

चरित्र निर्माण के बिना मानव का कल्याण हो नहीं सकता हमें आधुनिकतावाद में लिप्त न होते हुए संस्कृति का निर्माण एवं चरित्र संवर्धन को भूलना नहीं चाहिए। कई बार स्वार्थ की लहरे भी उठती हैं, किंतु हमें उसे परावर्तीत कर मानवी कल्याण में लगाना चाहिए। जीवन का पथ संघर्ष भरा विशाल समुद्र है वह अपार एवं अथाह है। हमें इस संकटभरे सागर में कई मुश्किलों का डटकर सामना करना चाहिए ऐसे संकट में हमें लड़ते लड़ते हमारा साहस दुनियावालों को दिखाना होगा। सारी समस्याओं का समाधान ढुंढ लेना हमारा परमकर्तव्य है यही उपदेश कवि समाज को बताते हैं।

जीवन का संगीत शील, विनय, आदर्श, श्रेष्ठता इन गुणरूपी तारों से बनता है जब तक यह एकरूप होकर बजती नहीं तबतक हमारा विकास और प्रगति नहीं हो सकती। शिक्षा व्यवस्था में नीतियुक्त आचरण हो तो वह समाज सचेत होकर विकसीत हो जाएगा। वर्तमान आधुनिक युग में नवनिर्मिती की होड़ सी लगी हुई है, अगर इस होड़ में इन्सानियत नहीं होगी जिसमें प्रेम की भावनाएँ नहीं होंगी तो वह हर निर्माण अधूरा है, वह हर निर्मिती अधूरी है, वह सारा ज्ञान विज्ञान अधूरा है क्योंकि संस्कारिक विकास में जीवन के बुनियादी उद्देश्यों को यदि हम भूल जाते हैं तो यह सारी मेहनत नाकाम हो जायेगी इसीलिए हमें मानवी कल्याण के बारे में प्रथम सोचना है, उसी में ही मानवी कल्याण का बिंदू छुपा हुआ है। इस कविता के अध्ययन से निम्न लिखित मुद्दों को उजागर करना होगा।

१. राष्ट्रसम्मान और कर्तव्य का पालन करना होगा।
२. भारतीय संविधान एवं नियमों का पालन करना होगा।
३. सभी राज्यों में स्वच्छता रखनी होगी।
४. एक दूसरों को सहयोगी बनकर राष्ट्रनिर्मिती में हाथ बढाना होगा।
५. पुरे देश में भाईचारा प्रस्थापित करना होगा।
६. विज्ञान और तंत्रज्ञान में नई नई तकनीकों, प्रावधानों का निर्माण करना होगा।
७. राष्ट्र के प्रति प्रमाणिक रहकर भ्रष्टाचार को समूल नष्ट करना होगा।
८. सैनिकों एवं सुरक्षा बलों का हमेशा सम्मान करना होगा।
९. व्यक्तिगत हित से बढ़कर राष्ट्रहित को बढ़ावा देना होगा।

संदर्भ ग्रंथ :

१. मेरी इक्यावन कविताएँ (कविता संग्रह) : भुतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में नव सामाजिक मूल्य

प्रो. डॉ. बबनराव रंभाजीराव बोडके

हिंदी विभागाध्यक्ष,

महात्मा फुले महाविद्यालय, किनगाव,

ता.अहमदपुर, जि. लातूर (महाराष्ट्र)

साहित्य में उभरती हुई नयी प्रवृत्ति को किसी काल खण्ड से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य में निरंतर नयी प्रवृत्तियाँ आती रहती हैं पर वह स्पष्ट रूप से जब वह प्रौढ़ हो जाती है तभी नजर आती है। हिन्दी उपन्यास विधा में स्वातंत्र्यता के पूर्व से ही बदलाव आना शुरू हो चुका था जिसकी प्रतीति प्रेमचंद के अंतिम उपन्यास 'गोदान' में होती है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन ने समाज में एकता का मूल्य निर्माण करके सभी के मन में राष्ट्रहित जताया था। स्वतंत्रता से जहाँ तरह-तरह के संवैधानिक परिवर्तन हुए वही समाज और साहित्य में लक्ष्यहीनता के वातावरण का निर्माण हुआ। स्वतंत्रता के बाद लोगों के मन में तरह-तरह की आशाएँ पल्लवीत हुई थी किन्तु कुछ अंतराल के बाद स्पष्ट दिखायी दिया कि केवल स्वतंत्रता से कुछ नहीं होने वाला है। समाज जहाँ था वही है केवल तालुकेदार और जमींदार की जगह नये पूंजीपति और सरकारी अफसर ने ले ली। सामान्य जनता आज भी पहले की भाँति भूखी नंगी है। इसका प्रभाव हिन्दी साहित्य के उपन्यासों पर यह पड़ा कि सहयोग के स्थान पर संघर्ष का रास्ता चुना गया।

प्रेमचंद कालीन युग सुधारवादी युग माना जाता है। जिसमें दलितोद्धार, नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह आदि को लागू किया जा रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध का व्यापक प्रभाव दुनिया पर पड़ा। इसके कारण अनेक मान्यताओं तथा नैतिकताओं का उन्मूलन हुआ। साहित्य की विविध विधाओं में इनकी अभिव्यक्ति दिखाई देती है। "राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों ने जन-मानस को झकझोर दिया और परम्परागत आदर्शों, मान्यताओं, जीवन-मूल्यों व आस्थाओं का विघटन हुआ।" नवीन सामाजिक मूल्यों के उदय का कारण वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ संवैधानिक अधिकार भी हैं जिसने मानव समाज को परिवर्तन का रास्ता दिखाया।

स्वतंत्रा पूर्व के उपन्यासों में व्यक्ति समाज की इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया था अपितु बाद में समाज को माध्यम बनाकर व्यक्ति का चित्रण प्रस्तुत किया जाने लगा। इसका नतिजा यह हुआ कि जहाँ व्यक्ति का महत्व बढ़ा वही दुसरी ओर समाज का महत्व कम होता दिखाई दिया। स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी उपन्यासों में जादा तो हाशिए पर का समाज को रेखांकित करने का प्रयास किया है। जिसमें दलित, नारी, आदिवासी, कृषक, किन्नर आदि की प्रमुखता दिखाई देती है।

व्यक्तित्व विकास के लिए जो समाज मान्यता बाधक थी उन तमाम मान्यताओं को व्यक्ति ने बदल डालने का एक तो प्रयास किया और दुसरा उसे पूरी तरह से बदल डाला। व्यक्ति ने हिन्दू समाज में प्रचलित नियतिवाद को नकार दिया। जिसके कारण समाज में जो भी हिन्दू समाज की मूल्य मान्यताएँ थी उसका सफाया होता गया और नविन संवैधानिक मूल्यों की प्रस्थापना होती गई। ऐसी परिस्थितियों को हिंदी उपन्यास साहित्य में स्थान मिला।

हिन्दू समाज में वैधव्य को उसका भाग्य बताकर उसके जीवन को नियति के ऊपर छोड़ दिया जाता था। समाज सुधारकों के प्रभाव से प्रेमचंद के युग में उन पर दया कर के किसी साहसिक नवयुवक द्वारा उनसे पुनर्विवाह तो हुआ किन्तु नारी भी अपने पारंपरिक बन्धनों को तोड़कर अपने को सिद्ध करती नजर आती है। 'जग

की रीति' उपन्यास की आधुनिक विचारों की नायिका पार्वती वैधव्य जीवन के परम्परागत बन्धनों को तोड़कर स्वतः इस मान्यता को समाप्त करती है- "यदि भाग्य इतना कठोर है तो मैं उस भाग्य को ही खत्म कर दूँगी।"²

समाज में नारी युगों से पुरुषों की आश्रित थी अपितु नये विचार एवं मूल्यों ने उसे स्वातंत्र्य ही नहीं दिया बल्कि उसे पुरुषों के विरोध में खड़ा कर दिया है। भारतीय समाज में पुरुष की अर्धांगिनी के रूप में नारी का चित्रण हुआ है किन्तु कहीं भी उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थान नहीं मिला है। पति देवता होने के कारण नारी को उसकी हर एक बात माननी पड़ती थी किन्तु आधुनिक विचारों एवं संवैधानिक मूल्यों ने स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। पति के जीवन से हटकर उसे अपने एक निजी जीवन के बारे में सोचने का नवीन पाश्चात्य जीवन दर्शन दिया। बाद के उपन्यासों में पुरुषों की भांति ही नारियों को दोहरे जीवन की छुट मिली। अब पत्नी पति का अन्धानुकरण करने के लिए तैयार नहीं है। 'ग्यारह सपनों का देश' की कुन्तल अपने पति से कहती है- "मैं तुम्हारे कहे नहीं करूँगी जब मन में उपजेगा तब करूँगी। मैं स्वतंत्र नारी हूँ।"³ यह स्वतंत्र नारी का विकास आज होता दिखाई दे रहा है जिसमें पर्दा-प्रथा, नारी शिक्षा, तथा नारी शरीर की पवित्रता जो सामाजिक मूल्यों का रूप धारण कर चुकी थी आज समाप्त होती जा रही है और उसकी जगह नयी सामाजिक मान्यताएँ बन रही हैं।

हिन्दू समाज में विवाह एक पवित्र बंधन माना जाता था जिसके माध्यम से स्त्री-पुरुष एक दूसरे के साथ रहने और प्रेम करने की सामाजिक मान्यता प्राप्त करते थे। पाश्चात्य विचारकों ने विवाह को एक समझौते के रूप में माना है। रामभजन सीताराम लिखते हैं- "भारतीय समाज में जहाँ विवाह को एक पवित्र संस्कार के रूप में माना जाता था वही पाश्चात्य में उसे जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए समझौता। यही कारण है कि एक समझौता टूटकर दूसरा हो सकता था किन्तु संस्कार तो नियतिवाद से जुड़ा होने के कारण उसके टूटने का कोई सवाल ही नहीं उठता था।"⁴ स्वतंत्रता के बाद 'हिन्दू कोड बिल' के माध्यम से पहली बार 'तलाक' की व्यवस्था दी गयी। इस कानून के बन जाने से अनमेल विवाह से उत्पन्न तनाव से मुक्ति पाने के लिए दोनों पक्षों में से कोई भी तलाक के लिए कानून की शरण ले सकता है। इससे पूर्व स्त्री को किसी भी प्रकार का सम्पत्ति का अधिकारी नहीं माना जाता था। संविधान ने आज उसे उत्तराधिकार दिया है। भारतीय संविधान में इस प्रकार के संशोधनों से नारी चेतना को बड़ा बल मिला है। जब नारी को अर्थोपार्जन करने में बराबरी का दर्जा प्राप्त हुआ तब से उसकी समाज में मुखापेक्षी स्थिति पूरी तरह से बदल गई है।

हिंदी उपन्यास में विवाह न कर प्रेम करने जैसी स्थिति "गोदान" में मेहता और मालती के माध्यम से प्रेमचन्द ने चित्रित किया है। इससे पूर्व प्रेम करने के लिए पहले विवाह आवश्यक था। इस बदलते दृष्टिकोण का परिचय 'गोदान' से ही मिलना प्रारंभ होता है। बाद के उपन्यास 'मैला आंचल' में विवाह पूर्व ही सन्तानोत्पत्ति का वर्णन आया है। इसके बाद लेखक उन दोनों का विवाह कराता है। 'दिल एक सादा कागज है' उपन्यास में मासूम रजा मुस्लिम समाज की बुराइयों और कुरीतियों का पर्दाफाश करते हैं और उसमें नये विचारों तथा नयी मान्यताओं को अंकुरित करते हैं।

हिन्दू समाज में विवाह जाति के बाहर करने का अधिकार नहीं था। ऐसा करने वाले को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। भारत के संविधान में अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता मिलने से इस प्रकार के विवाह संभव हुए। जिसका वर्णन अधिकांश उपन्यासों में देखने को मिलता है।

पाश्चात्य देशों में 'यौन मुक्ति' का नारा बड़ा लोकप्रिय हो रहा है। इसका प्रभाव हिंदी उपन्यासों पर भी पड़ता दिखाई दे रहा है। भगवतीचरण वर्मा अपने उपन्यासों में शारीरिक पवित्रता के स्थान पर मानसिक पवित्रता को अधिक महत्व देते नजर आते हैं। इनके 'रेखा' की नायिका रेखा उपन्यास में अपने पति के अलावा अन्य छः पुरुषों

से शारीरिक संबन्ध बनाती है पर अपने बड़े पति प्रभाशंकर के प्रति अपनी ओर से ईमानदार बनी रहती है। रेखा इस प्रकार का व्यवहार केवल इसलिए करती नजर आती है कि इसका बूढ़ा पति उसकी कामेच्छा को तृप्त नहीं करत पाता।

समाज में सबसे उँचा स्थान धर्म का था किन्तु वैज्ञानिक प्रगति ने इस पर प्रहार किया। प्राचीन भारतीय मान्यता 'धारयेति इति धर्मः' का स्वरूप आज बदल गया है। हिन्दी उपन्यासों में इसका स्वरूप सामने आता है। "सारा आकाश" का शिरीष कहता है- "हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा बनाये गए धर्म नियमों को जहाँ तक संग्रहालय म्यूजियम में रखने का सवाल है मैं मानता हूँ कि उनके लिए खूबसूरत काँच की आलमारियाँ होनी चाहिए, लेकिन उन्हें आज के समाज में कानून रूप में बदलना चाहेंगे तो मैं कहूँगा कि उन्हें चूल्हे में रखकर चाय बनाइये और...खुश होईए की अपने कंधो पर लदे और गर्दन में दांत गड़ाये भालू उतार फेंका है।"⁵ आज का उपन्यासकार यह मानता है कि वे धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ जो आज अपनी अर्थवत्ता खो चुकी हैं, हम उन्हें क्यों स्वीकारें। उन्हें समाज पर से उतार फेंकना ही शुभ माना गया। डॉ. ओंकारनाथ श्रीवास्तव लिखते हैं-"विज्ञान ने जिन आस्थाओं और मूल्यों को खण्डित किया है उनसे कहीं अधिक सबल आस्थाओं और मूल्यों को जन्म दिया है"⁶

आधुनिक युग ने मानव को एक वैज्ञानिक दृष्टि दी है। जिससे देखकर और परखकर ही व्यक्ति किसी चीज को स्वीकार करता है। मान्यता और धार्मिक निर्देश का युग समाप्त हो चुका है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वच्छन्दता का वातावरण है जो सामाजिक प्राचीन मूल्यों को छोड़कर आया है। हिन्दी के उपन्यासकारों ने इस नवीन चेतना को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। पुराने मूल्यों के प्रति आज विद्रोह का स्वर तीव्र होता जा रहा है। पर प्रत्येक उपन्यासकार ने मूल्यों को अपने-अपने हिसाब से व्याख्यायित किया है जिसके कारण कुछ हद तक मतभिन्नता पाई जाती है किन्तु आने वाले समय में नये सामाजिक मूल्य जब समाज में अपना स्थान ग्रहण करेंगे और पुरानी मान्यताएँ नष्ट हो जाएगी तभी साहित्य में भी नये मूल्यों के प्रति एकरूपता आएगी। हमें पूरा विश्वास है कि उपन्यास साहित्य के इन नए संवैधानिक मूल्यों को नया मुहारा देगा। समय के उपयुक्त समाज को दिशा देने का महत् कार्य साहित्यकार का होता है। हम विश्वास एवं आशा करते हैं कि हिन्दी का उपन्यासकार भावी भारत के समाज को संवैधानिक मूल्यानुरूप दिशा प्रदान करेगा।

संदर्भ साहित्य -

1. कमलापति त्रिपाठी - 'आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ' पृ.98
2. रामभजन सीताराम 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदु उपन्यासों में लघु मनव की परिकल्पना'-पृ.39
3. सं. लक्ष्मीचन्द्र जैन -- "ग्यारह सपनों का देश" पृ.74
4. रामभजन सीताराम 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदु उपन्यासों में लघु मनव की परिकल्पना'-पृ.111
5. राजेन्द्र यादव 'सारा आकाश' पृ.151
6. डॉ. ओंकारनाथ श्रीवास्तव- 'हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष' पृ.12

आशीर्वाद कहानी और संवैधानिक मूल्य

प्रा.डॉ.पवन नागनाथराव एमेकर
कै.बापुसाहेब पाटील एकंबेकर ग्रामीण
महाविद्यालय हणेगाव ता.देगलूर जि.नांदेड (महाराष्ट्र)

मनुष्य के स्वभाव के बारे में अगर विचार किया जाये तो हमें स्पष्ट रूप से यह दिखाई देगा कि, हम केवल हमारे स्वार्थ के बारे में ही अधिक सोचते हैं। आज के इस आधुनिक जीवन में हर इन्सान अपने-अपने काम में लगा हुआ मिलेगा। आज किसी भी व्यक्ति के पास अन्य दुसरे व्यक्ति के लिये देने के लिए समय नहीं है। हमारे वर्तमान जीवन की छवि हमें आज के आधुनिक साहित्य के माध्यम से भी देखने को मिल रही है। साहित्य ने मनुष्य जीवन में सुधार लाने की दृष्टि से बहुत कुछ आदर्श आज हमारे सामने निर्माण किये हैं। साहित्य के साथ-साथ हमारे देश के संविधान में भी हमारे लिए कुछ ऐसे नियमों का निर्माण किया गया है, जिसके कारण आज हम आझादी का अनुभव करते हैं। लेकिन आज कि कुछ घटनाओं के कारण हमारे इस महान संविधान के मूल्यों की ओर देखने का नजरिया बदल गया है।

हिंदी साहित्य के माध्यम से आज के साहित्यकारों द्वारा संविधान के मूल्यों के हर एक पहलुओं का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है। ऐसा ही चित्रण डॉ.सुषमा सिंह की कहानी 'आशीर्वाद' के माध्यम से किया गया है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने संवैधानिक मूल्यों के होते हुए भी आज हो रहे अन्याय-अत्याचार का चित्रण किया है। संवैधानिक मूल्यों में समता, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, बंधुत्व इन सारे बातों को भूलकर कुछ लोग पीड़ितों का शोषण करते हुए दिखाई दे रहे हैं। 'आशीर्वाद' कहानी का नायक भुवनेश एक शादीशुदा इन्सान है, फिर भी वह अन्य स्त्रियों से अनैतिक संबंध रखता है।

भुवनेश एक अय्याशी किस्म का इन्सान है। एक बार भुवनेश ने अपने दोस्त की शादी में दुल्हन की सहेली भावना से प्रेम पूर्वक संबंध स्थापित किये। जब वह माँ बनने वाली थी, तब भुवनेश उससे पिछा छुड़ाना चाहता है। लेखिका इस घटना का वर्णन करते हुए लिखती है, "भुवन के मित्र ने उसे खरी-खोटी सुनाई, किन्तु भुवन यह कहकर हाथ झाड़कर खड़ा हो गया कि, सब भावना की मर्जी से हुआ, उसमें मैं अकेला क्यों दोषी हूँ?" किसी के विश्वास के साथ खेलना, किसी को धोका देना यह सब कहीं का न्याय है? आज भुवन जैसे कितने लोग हैं जो भोली-भाली लड़कियों को मिठी-मिठी बातों में फँसाकर उनका शारीरिक शोषण करते हैं। भुवन अपने ऑफिस की सेक्रेटरी से भी अनैतिक संबंध रखता है और जब जी भर जाए तब नई सेक्रेटरी ढूँढता है।

जब कुसुम अपने पति के इन गलत व्यवहारों के बारे में कुछ सवाल अपने पति से करती है, तब उसे डौंटते हुए भुवन कहता है, "तुम अपने काम से काम रखो, समझी। बेकार की बातें मुझे पसंद नहीं। कौन कहता है कि मैं लड़कियों को परेशान करता हूँ। अरे, मेरे ऑफिस में मटरगश्ती नहीं चलती, कस कर काम लेता हूँ। नहीं टिक पाती लड़कियाँ तो मैं क्या करूँ? किसी के घर तो बुलाने जाता नहीं हूँ।... लोगों के तो जो जी में आता है, कह देते हैं, किसी की जबान पकड़ी जा सकती है क्या?" भुवन की इन झूठ से भरी बातों को सुनकर भी कुसुम अपने भविष्य के प्रति सोंच चुप रहती हैं। यहां पर लेखिका ने एक भारतीय नारी के रूप में कुसुम का चित्रण किया नजर आता है।

जब कुसुम अपने पति भुवन से श्रीमती मेहरा के साथ के अंतरंग संबंध के बारे में चर्चा करती है, तब भी भुवन उसे कुछ बहाना बनाकर धुमाफिराकर उसका जवाब देता है। एक बार तो कुसुम ने अपने हाथ में की हुबहू अंगूठी श्रीमती आनन्द के हाथ में देखकर चकित हो गई। इस पर भी भुवन ने धुमाफिरा कर कुसुम के सवाल का जवाब दिया था। भुवन कहता है, "अरे, तुम बड़ी भोली हो, झट से कोई शंका पाल लेती हो मन में। समझ रही होगी, मैं आशिक हूँ उनका। अरे भाई, आनन्द साहब ने एक बड़ा टेंडर पास करवाया था मेरा, तो मैंने सोचा-चलो इस बहाने उन्हें भी खुश कर दिया जाये।"³

जब कभी कुसुम अपने पति भुवन के गलत व्यवहारों के बारे में सवाल पुश्चती है तब भुवन उसे डांटकर पुरुषी अहंकार को प्रकट करता है। जैसे, "तुम रंग में भंग मत किया करो, समझी।... कुछ करना चाहूँगा, तो रोक लोगी तुम मुझे? अच्छा-खासा बंगला है, कपड़ों से अलमारियाँ भरी पड़ी हैं, गहनों से लोकर भरे हैं, खर्च पर कोई पाबंदी नहीं, आने-जाने पर रोक टोक नहीं, मैं तुम्हें मारता-पीटता नहीं।... अरे तुम मेरी बीबी हो कि मैं तुम्हारा जरखरीद गुलाम? निकाल बाहर करूँगा घर से, समझी। या यह घर ही छोड़कर चला जाऊँगा, लौटकर नहीं आऊँगा, सौ बार नाक रगड़ोगी, तब भी नहीं आऊँगा।"⁴

लेखिकाने प्रस्तुत कहानी के माध्यम से भुवन जैसे अय्याशी व्यक्ति के जीवन का चित्रण किया है। अपने पत्नी के होते हुए भी अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक संबंध स्थापित करने वाले पुरुष अपने सात फेरवाले पवित्र रिश्ते को कैसे भुल जाते हैं। हमारे

संवैधानिक मूल्यों द्वारा हमारे सामने आदर्श की स्थापना की गई है। जिनके माध्यम से हमें स्वाभिमान से भरा जीवन जीने को मिल रहा है। लेकिन जब एक पत्नी के साथ अपने पति के द्वारा जब इस प्रकार से अन्याय किया जाता हो, तथा एक व्यभिचारी पुरुष के द्वारा अनेक लड़कियों का शोषण किया जाता हो तब हम हमारे इन संवैधानिक मूल्यों को किस प्रकार से देखते हैं? क्या यही समता का भाव है जो अपने पत्नी की इच्छाओं को पुरुषी अहंकार के पैरों तले रौंदा जाए? क्या यहीं स्वातंत्र्य है जो किसी भी लड़िक को बहलाएं या किसी की भी मजबूरी का फायदा उठाकर उसका शाररिक शोषण करें ?

हमें तो लगता है की मेरे घर की बहु,बेटी पर किसी की बुरी नजर ना पड़े,लेकिन यही भाव हम किसी अन्य के बहु-बेटी के प्रति क्यों नहीं रख पाते है? अगर हम हमें प्राप्त संवैधानिक मूल्यों का अच्छा और उचित प्रयोग न करें तो फिर क्या फायदा है इन अमूल्य संवैधानिक मूल्यों का। डॉ.बाबा साहेब जी ने हमें मनुष्य की तरह अच्छी जिंदगी जीने का अवसर प्राप्त हो,इस हेतू से इन मूल्यों की स्थापना कि है। एक बार कुसुम की मुलाकात उसके मुंह बोले भाई अलोक से होती है। अलोक उस दिन से कुसुम से मिलता रहता है। अलोक का कुसुम के घर आना-जाना शुरू रहा। यह बात अब भुवन को खटकने लगी थी। भुवन जो खुद एक अनैतिक संबंध रखने वाला इन्सान है। उसे अपने पवित्र पत्नि पे शक होने लगाता है।

अनामिका ने अपने उपन्यास 'तिनका तिनके के पास' में नारी जीवन की व्यथा का कटू सत्य लिखा है। उसकी कुछ पंक्तियाँ हमें कुसुम तथा कुसुम जैसी अन्य महिलाओं को लेकर लिखी हो ऐसी नजर आती है,“ आज अकेली स्त्री के लिए मित्र या प्रेमी बुलाना कोई बड़ी बात नहीं। ये तो थोक में मिल जाते हैं। कठिनाई यह है कि,सर्वतोमुखी प्रेम का दावा ठोंकनेवाले देहलोलुप प्रेमी 'तीन बुलावै तेरह आवै'की तरह थोक की राह चलते मिल जाते हैं मगर देहनिरपेक्ष कोई सच्चा दोस्त नहीं मिल सकता एक अकेली स्त्री को”^५ भुवन के दोहरे जीवन को लेखिकाने इस कहानी के द्वारा उजागर किया है।

अय्याशी भरा जीवन जीनेवाले भुवन को जब पता चलता है कि उसकी बेटी किसी के बच्चे की माँ बनने वाली है,तब वह इस बात का जिम्मेदार अपनी पत्नि कुसुम को मानता है। भुवन अपने भोग विलासी जीवन में अपने बाप होने का कर्तव्य भूल जाता है और कुसुम को ही कोसने लगता है। अब भुवन को दो बातें सताने लगती है। एक कुसुम से अलोक का मिलना और दुसरी बेटी शुभांगी को माँ बनाने वाला लड़का। भुवन ने इन दो बातों को इतना दिल से लगा लिया कि,वह अब बिमार सा रहने लगता है। भुवन की इस बिमारी में अलोक भुवन के घर आकर कुसुम से बात करते हुए कहता है,“मैं सोचता हूँ कुसुम बहन,किसी दूसरे डॉक्टर को भी दिखा लिया जाये।”^६ यह सुन भुवन हैरान हो जाता है और फिर स्वयं पर लज्जित भी।

एक दिन भुवन की बेटी शुभांगी का प्रियकर निमेष अचानकसा शुभांगी से मिलने उसके घर जाता है तब वह भुवन से मिलकर कहता है,“अंकल मैं आपका अपराधी हूँ। मुझे क्या मालूम था कि शुभांगी शकुन्तला साबित होगी। लेकिन मैं दुष्यंत नहीं हूँ मेरी गर्दन आपके सामने झुकी है, आप चाहे तो मेरी गर्दन उड़ा दे,और चाहे तो शुभांगी का हाथ मेरे हाथ में देकर जीवन-दान दे दें”^७ इस प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने एक ऐसे जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत किया है जो आज के वर्तमान जीवन में जितने भी भुवन है उनमें सुधार हो जाय। हमारे संवैधानिक मूल्यों की आदर्शता एवं उसके प्रति देखने का नजरिया इन बातों का वास्तविक चित्रण इस कथा के द्वारा हुआ नजर आता है। समता,स्वातंत्र्य,बंधुता,न्याय इन मूल्यों को आज हम हमारे स्वार्थ के हिसाब से किस प्रकार से उपयोग में ला रहे है इसका वास्तविकता का चित्राण लेखिका ने आलोच्य कथा के द्वारा किया है।

अन्य महिलाओं के साथ अनैतिक संबंध की इच्छा रखने वाला भुवन जब उसीके घर ,अपनी पत्नी पर शक करता है एवं अपनी कुँवारी बेटी के माँ बनने की खबर को सुनता,तब उसमें का अय्याशी पुरुष अपने आप ही गायब सा हो जाता है। हम हमारे लिये जिस प्रकार से अच्छेपन के भाव रखते है,उसी प्रकार के भाव अगर अन्य के प्रति रखें तो सचमुच हमारे संवैधानिक मूल्यों का आदर हम करते हुए नजर आयेंगे।

संदर्भ :-

- १.साहित्य सौरभ-डॉ.सुजितसिंह परिहार-पृ.सं.६६
- २.वही-पृ.सं.७०
३. वही-पृ.सं.७१
४. वही-पृ.सं.७१
५. तिनका तिनके के पास- अनामिका -पृ.सं.७०
६. वही-पृ.सं.७६
७. वही-पृ.सं.७७

हिंदी साहित्य में संवैधानिक मूल्य सूफीमत के परिप्रेक्ष्य में

प्रा.डॉ.विजय गणेशराव वाघ.

हिंदी विभाग, सहायक प्राध्यापक,
तोष्णीवाल कला, वाणिज्य और
विज्ञान महाविद्यालय, सेनगाव.
ता. सेनगाव. जि. हिंगोली. (महाराष्ट्र)

जिस प्रकार मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं में भक्ती-आंदोलन प्रारंभ हुआ, उसी प्रकार मुसलमानों में प्रेम-भक्ति के आधार सूफीवाद का उदय हुआ। सूफी शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई, इस विषय पर विद्वानों में विभिन्न मत हैं। एक विचार यह भी कि सूफी शब्द की उत्पत्ति सूफा से हुई, जिसका अर्थ है **ऊन**। मुहम्मद साहब के पश्चात् जो संत उनी कपड़े पहनकर अपने मत का प्रचार करते थे, वे सूफी कहलाये। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस शब्द की उत्पत्ति 'सफा' शब्द से हुई। सफा का अर्थ पवित्र है। मुसलमानों में जो संत पवित्रता और त्याग का जीवन बिताते थे, वे सूफी कहलाये। सूफी शब्द ग्रीक शब्द सोफिया का रूपांतर है जिसका अर्थ है ज्ञान। मोहम्मद साहिब के बाद जो संन्यासी आत्म ज्ञानी उनी वस्त्र पहनकर अपने मत का प्रचार करते थे वह सूफी कहलाये। प्रारंभ में उन लोगों को सूफी कहा गया, जो संसार से विरक्त, हर समय ईश्वर के ध्यान में मग्न रहा करते थे। वेनर के अनुसार "प्रारंभिक सूफी अपनी आध्यात्मिक उपस्थिति के मौन द्वारा हि ज्ञान- मुक्ता करते थे। सूफीमत के विषय में स्यात हि कभी उन्होंने अपनी ज़बान से कुछ कहा हो।" सूफी मत भी ऐसा ही मत है जो इस्लाम धर्म से उत्पन्न हुआ है। यद्यपि कुछ कट्टर पंथियों ने कुरान शरीफ में इस मत के सिद्धांत न होने के कारण इसे विसंगतियों का मत भी बताया है। अबू हामिद मुहम्मद अल गजाली नामक सूफी संत ने सुफिवाद को इस्लाम के अनुकूल करके उसके महत्व को बढ़ा दिया। बारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में उस ने बगदाद और खुरसान में इस धर्म का प्रचार किया।

समुचे सूफी काव्य में एक आदर्श समाज का प्रतिबिंब हमारे सामने दृष्टिगोचर होता है जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक सृजन में सहायक है। सूफी साधक एक ऐसे समाज कि कल्पना करते थे जिसमें सभी भाईचारे के साथ रहे, जहाँ धर्म को लेकर अथवा राम-रहीम को लेकर लोगों के मन में कोई आपसी वैर विरोध न हो। शांति कि खोज के लिये प्रत्येक धर्म के लोग लालायित रहते हैं तथा प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों को शांति के पथ पर हमेशा अग्रसर करता है। इस शांति को पाने के लिये ज्ञान कि अवश्यकता रहती है। सूफीवाद में इस ज्ञान को पाने के लिये किताबों कि जगह मारिफत (अध्यात्म) को महत्ता दि गई है।

संस्कृति शब्द बड़ा व्यापक है। इसकी सीमाएँ एक ओर धर्म के क्षेत्र को स्पर्श करती हैं तथा दूसरी ओर साहित्य पर प्रभाव डालती हैं। संस्कृति भौतिक साधनों के साथ हि आध्यात्मिक कि गरिमा से मंडित होती है। इसके अंतर्गत वेशभूषा, परंपरा, पूजाविधान और सामाजिक रीति नीति की विवेचना भी हम करते हैं। भारतीय संतो ने जन मानस को आडम्बरो तथा रूढ़ियों से निकालने के लिए जो अग्नि प्रज्वलित कि थी सूफी साधकों ने अपने विचारों से उस अग्नि में घी डालने का काम किया है। सामान्य जडीभूत जनता के जीवन में आशा, प्रेरणा एवं आस्था कि चेतना का जागरण सूफी साधकों द्वारा बखुबी किया गया। धर्म के क्षेत्र में तो सुफियों ने बहुत अधिक प्रभाव डाला।

सूफी फकीरो के माध्यम से भारत में सूफी मत का प्रवेश सातवीं शताब्दी में हुआ। ये सिंध और पंजाब में फैल गये थे। मुलतान उनका सबसे बड़ा केंद्र था। भारत में सूफी संतों का सिलसिला वास्तविक रूप से अबुल हसन ज झुवरी से हुआ। उन्होंने 'कशफूल महजब' नामक पुस्तक के माध्यम से अपने मत का प्रतिपादन किया। इस काल के प्रसिद्ध सूफी संतों में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, ख्वाजा कुतुबुद्दीन, संत फरीद और निजामुद्दीन औलिया प्रमुख थे। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती मुहम्मद गोरी के साथ भारत आये और अजमेर को उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया। हिंदू और मुसलमान, दोनों पर इनके सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा। भारत में सूफी मत स्थायी प्रभाव डालने वाले व्यक्तियों में वे लोग थे जो इस मत के चार सम्प्रदायों चिश्तिया, सुहरावर्दिया, कादिरिया तथा बन्दिया से संबंध रखते थे। इसमें से एक संप्रदाय जिसका अजमेर से संबंध रहा है उसका उल्लेख करना उचित होगा -

चिश्ती संप्रदाय :-

इस संप्रदाय की स्थापना खुरसान निवासी ख्वाजा अब्दुला ने की थी किंतु भारत में सर्वप्रथम इसका प्रचार ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने किया। उनका जन्म मध्य एशिया में ११४३ ई. में हुआ। ११९० ई. में लाहोर आये और 'कशफूल महजब' ग्रंथ की रचना की। लाहोर से दिल्ली ओर इसके पश्चात् आप अजमेर आ गये और इसे ही अपनी कर्मभूमी बना लिया। उन्होंने अजमेर को चिश्ती संप्रदाय का केंद्र बनाया। ख्वाजा के सर्वव्यापी एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उनका सिद्धान्त था कि मानवता की सेवा करना ही ईश्वर की सर्वोच्च कोटी की भक्ति है। १२३४ ई. में उनकी मृत्यु हुई। अजमेर में ख्वाजा की दरगाह बनी हुई है जहां प्रतिवर्ष ६ दिनों तक उर्स (मेला) लगता है। बाबा फरीद और शेख निजामुद्दीन औलिया संप्रदाय के प्रसिद्ध संत हुए हैं। सोलहवीं शताब्दी में शेख सलीम चिश्ती इस संप्रदाय के प्रसिद्ध संत हुए।

सुहरावर्दी :- इस संप्रदाय की स्थापना शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने की थी। इन लोगों का शासक वर्ग से घनिष्ठ संबंध था।

कादिरि :- इस संप्रदाय की स्थापना शेख निजमतुल्लाह ने की थी। ये लोग इस्लाम की बुनियादी बातों का दृढ़ता से पालन करते थे।

नकशबन्दी :- इस संप्रदाय की स्थापना ख्वाजा पीर मोहम्मद ने की थी। रुढ़िवादी सिलसिला, मुजद्दीद ने शिया के दर्शन वहादत-उल-शहद का विरोध किया था। उन्होंने "लाल-ए-खाफिद" नामक पुस्तक लिखी थी। उन्हें जहाँगीर ने गिरफ्तार किया था।

सूफी दर्शन एवं सिद्धांत :- जिस समय सूफी धर्म का विकास हुआ उस समय भारत में वेदांत धर्म एवं दर्शन और युरोप में धार्मिक पुनर्जागरण की लहर फैल रही थी। अतः सूफी दर्शन एवं सिद्धांत पर समकालीन मान्यताओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

सूफी धर्म में प्रेम को बहुत महत्व दिया जाता है। ये लोग ईश्वर को प्रियतमा का रूप मानते हैं। साधक को चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'इश्क' रूपी माही का अनुसरण करना पड़ता है। इनका विश्वास है कि ईश्वर अमर सौंदर्य है तथा इस की प्राप्ति संगीत से की जा सकती है। वे एकेश्वरवाद और निर्गुण ब्रह्म में विश्वास करते हैं। आत्मिक प्रवृत्ति को शुद्ध करने से व्यक्ति उच्च व पवित्र बन जाता है। लेकिन यह कार्य गुरु के पथ प्रदर्शन से ही संभव हो पाता है। सूफी धर्म में गुरु की महत्ता पर अधिक बल दिया गया है। पीर

द्वारा प्रदान किये प्रकाश के बिना मनुष्य अज्ञान रूपी अंधकार में डूबा रहता है। सुफियों का मानना है कि पीर कि उपासना में ही अल्लाह कि उपासना है। जायसी ने 'पद्मावत' में लिखा है कि गुरु के प्रति शिष्य का विनम्र होना आवश्यक माना गया है।

सूफी मत में ईश्वर प्राप्ति के लिये हृदय की पवित्रता पर बल दिया गया है। इन सिद्धांतों के अतिरिक्त सूफी मत वाले ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं मानते। वे अति भान्ति के भेदभाव में विश्वास नहीं रखते और ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं मानते और बाह्य आडम्बरो के विरोधी हैं। वे संतो कि संगती, मानव के प्रति प्रेम, शुद्ध आचरण में विश्वास, भक्ति भावना पर बल और अंधकार का त्याग करने पर जोर देते हैं।

सूफी मत के प्रभाव :- यह धर्म ओर मुस्लिम विचारों का समिश्रण है। वेदांत और सूफी मत में एक बड़ी सीमा तक समानता थी। इस कारण कि हिन्दुओं को सूफी मत को समझने में कठिनाई नहीं हुई। इससे हिंदू और मुस्लिम दोनों ही वर्गों को लाभ पहुंचा। सूफी संतो ने सदैव यह प्रयास किया कि मानव मात्र के हृदय में प्रेम कि भावना उत्पन्न करके उसे ईश्वर कि ओर उन्मुख किया जाये। सुफियों के हिन्दुओं के प्रति सहनशील व्यवहार के कारण हिन्दुओं मुसलमानों का आपसी सामाजिक और सांस्कृतिक मेल जोल बढ़ने लगा। सूफी संतो ने संप्रदायों के आधार पर बिखरी हुई मानवता को संपादित करने का प्रयास किया और एक बड़ी सीमा तक वे इस कार्य में सफल भी हुए। सुफियों ने उर्दू भाषा में कविताएँ, कव्वालीया लिखी। मकबरो इत्यादी के निर्माण से भारतीय भवन निर्माण कला का अदभूत विकास हुआ।

सूफी मत इस्लाम की तुलना में बहुत उदार था। भारतीय संस्कृति को समान बनाने में इसने प्रशंसनीय योगदान दिया। यही कारण है कि आज भी जब सूफी संतो कि मजार पर उर्स लगता है तब अनेक हिंदू भी मजार पर बड़ी श्रद्धा से चादर चढ़ाते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि,

- इस मत के लोगों के विचार और प्रथाएं हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म और पारसी धर्म का मिलाजुला रूप था।
- इस मत का उद्देश्य आध्यात्मिक आत्म विकास के माध्यम से मानवता की सेवा करना था।
- ये लोग हिंदू-मुस्लिम एकता और सांस्कृतिक मेलजोल के इच्छुक थे।
- इन्होंने ईश्वर के प्रति विश्वास और समर्पण के लिए कट्टरपंथियों के प्रचार का विरोध किया।
- इस मत के लोगों ने भौतिकवादी जीवन का विरोध किया लेकिन वे पूर्ण त्याग के पक्ष में नहीं थे।
- यह मत कई सिलसिलों में विभक्त था। सूफियों के सिलसिले दो भागों में विभाजित थे: "बा-शरा" जो इस्लामी सिद्धांतों के समर्थक थे और "बे-शरा" जो इस्लामी सिद्धांतों से बंधे नहीं थे।

संदर्भ सूची :-

- 1) हिंदी सुफिवाद और काव्य - सरला शुक्ल
- 2) हिंदी सूफी काव्य कि भूमिका - रामपूजन तिवारी
- 3) संत काव्य के विविध आयाम - डॉ. अशोक सभवाल
- 4) संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
- 5) भारत में सूफीमत तथा उसका प्रभाव - संपादक. हरिश्चंद्र वर्मा

समकालीन हिंदी कविता में मानव जीवन और बदलते संवैधानिक मूल्य

प्रा. डॉ. वसंत गाडे

हिंदी विभागाध्यक्ष,

नागनाथ महाविद्यालय,

औंढा नागनाथ, जिला.हिंगोली.

शोध सार-

मनुष्य जीवन का विकास ही साहित्य का मूल उत्स है । आज अहिंसा, करुणा, दया, धैर्य, सहिष्णुता, परोपकार, उदारता आदि मानवीय मूल्यों के स्थान पर हिंसा, निष्ठुरता, आक्रमता, लुट-खसोट, झुठ-फरेब आदि जैसे अमानवीय मूल्यों की वृद्धि हो रही है । आज सुचना तकनीकी, बाजारवाद, भूमंडलीकरण और आतंकवाद के दौर में मानवीय संवेदनाओं पर कई -कई अजनबी संस्कृतियों का हमला हो रहा है ।

मुख्य शब्द- अहिंसा, करुणा, दया, धैर्य, सहिष्णुता, परोपकार, उदारता आदि मानवीय मूल्य

मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत वे मानक होते हैं जो समाज का अंग होने के नाते इकाइयों, व्यक्तियों एवं परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हैं । ये मूल्य समाज की रीढ़ होते हैं । ये विश्वास होते हैं जिन्हें व्यक्ति किसी दी हुई परिस्थिति में क्रिया करने हेतु चुनता है कोई आदर्शात्मक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धांत जो किसी दी हुई परिस्थिति में हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं और जिन पर हमारा व्यवहार आधारित होता है, मूल्य कहलाते हैं, मूल्य समाज दर समाज एवं समय दर समय बदलते रहते हैं । हमारा जीवन इन मूल्यों के इर्द - गिर्द घूमता रहता है । ये मूल्य सही और गलत के हमारे निर्णय द्वारा ही निर्धारित होते हैं । मूल्य वो अन्तहीन विश्वास होते हैं, जो व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से स्वीकृत एक निश्चित व्यवहार को निर्धारित करते हैं । मानव के दिन - प्रतिदिन के जीवन में उनके व्यवहार एवं क्रियाओं को नियंत्रित एवं मार्गदर्शित करने का कार्य मूल्य ही करते हैं । प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं, वस्त्र जो पहनते हैं, जिस प्रकार से हम एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हैं, हमारे प्रत्यक्षीकरण आदि में मूल्य प्रदर्शित होते हैं मूल्य रुचि, विकल्प, आवश्यकता, इच्छा एवं वरीयता के आधार पर निर्मित होते हैं । मूल्य में भावनाओं एवं क्रियाओं के चिंतन, जानने अथवा समझने की प्रक्रिया निहित रहती है । लोगों का व्यवहार हमें उनके मूल्यों को जानने में मदद करता है । किसी व्यक्ति पर किसी प्रकार का दबाव अथवा डर दिखाए बिना किसी निश्चित समय में उसके द्वारा किये जाने वाले व्यवहार अथवा क्रिया के माध्यम से उसके मूल्यों का आकलन किया जा सकता है । सामान्यतः मूल्य व्यक्ति के स्वयं के चयन द्वारा निर्धारित होते हैं ।

मनुष्य जीवन का विकास ही साहित्य का मूल उत्स है । आज अहिंसा, करुणा, दया, धैर्य, सहिष्णुता, परोपकार, उदारता आदि मानवीय मूल्यों के स्थान पर हिंसा, निष्ठुरता, आक्रमता, लुट-खसोट, झुठ-फरेब आदि जैसे अमानवीय मूल्यों की वृद्धि हो रही है । आज सुचना तकनीकी, बाजारवाद, भूमंडलीकरण और आतंकवाद के दौर में मानवीय संवेदनाओं पर कई -कई अजनबी संस्कृतियों का हमला हो रहा है ।

आधुनिक वास्तविकता आज समाज में सब जगह निराशा, अस्थिरता तथा उदासीनता दिखाई देती है । किसी को भी सुख चैन नहीं है । प्रत्येक मनुष्य अपनी ही आज का मानवीय जीवन महंगा, धक्का - मुक्की तथा

चिन्ता में लगा है। इतना गतिशील हो गया है कि उस गति को किस प्रकार मिल जुलकर प्राप्त किया जाये ? महंगाई, बीमारी, बेरोजगारी, दंगा - फँसाद चाहे पारिवारिक हो चाहे सामाजिक, अनेक समस्याओं का मानव को सामना करना पड़ रहा है। कहीं बिना कारण के तो कहीं कारणवश समस्याओं का निर्माण हो रहा है। सभी प्रकार की सामाजिक समस्याओं का कम अथवा अधिक मात्रा में सभी को सामना करना पड़ रहा है। शारीरिक कष्ट के कारण, अव्यवस्थित जीवन के कारण अथवा मानसिक तनाव के कारण मनुष्य को अनेक शारीरिक तथा मानसिक बीमारियाँ घेर रही हैं। विश्व के कुछ राष्ट्रों को छोड़कर इस बीमारी का प्रभाव सभी राष्ट्रों को महसूस होता है। राष्ट्रों में एक दूसरे के बीच भ्रष्टाचार, ढोंगबाजी, लूट, अनैतिक व्यवहार, गुण्डागिरी आदि सभी दिखाई देते हैं। एक दूसरे को लड़वाकर उससे प्राप्त विकृत आनन्द को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की विश्व में कमी नहीं है। सारांश यह है कि आर्थिक हो या वैचारिक शोषण सतत जारी है। विश्व में मानव महान चमत्कारी प्राणी साबित हो रहा है। उस में ज्ञान प्रकट हो गया है। आवश्यकता के लिए तथा प्रतिशोध लेने के लिए उसने विज्ञान का अच्छा प्रयोग करना सीख लिया है। मानव स्वयं का जीवन सुखी करने की अपेक्षा दूसरे का जीवन कष्टमय कैसे होगा, इसमें वह अपना ज्यादा समय व्यतीत कर रहा है।

21वीं सदी में सुचना प्रौद्योगिकी, मीडिया, आतंकवाद, धर्म, अर्थ और बल पर केंद्रित राजनीति, पूँजी, बाजारवाद, भूमंडलीकरण आदि के प्रभावों में काफी इजाफा हुआ है। इसके परिणाम स्वरूप भारत ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई दे रहा है। मुक्त बाजार की आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के कारण सर्वग्रासी मुल्यहीनता अधिक विकराल हुई। स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व के सवाल वही खड़े हैं। इसके कारण हमारी संवेदना की साड़ी विरासत को धक्का लगा है। सामाजिक जीवन में तो संवेदना कुछ बची-खुची है, लेकिन इसकी छोटी इकाई परिवार में अंतिम साँसें गिन रही है।

आधुनिक युग में पूँजीपति जो सामाजिक उत्पादन और साधनों के मालिक होते हैं वे मजदूरों को श्रम कार्य पर नियुक्त करते हैं। मजदूर वर्तमान समय में मजदूर और उनके समूह जो स्वयं उत्पादन साधनों के मालिक नहीं होते हैं उन्हें अपनी श्रम शक्ति बेचनी पड़ती है। ऐसे लोगों के वर्ग को मजदूर कहते हैं। नागरिक, गुलाम, किसान मजदूर और तकनीक संघ के कारीगरों पर जुल्म और अत्याचार किया जाता है। उनका एक दूसरे से हमेशा संघर्ष होता है। कभी छिपकर तथा कभी खुलकर लड़ाई जारी रहती है। प्रत्येक समय लड़ाई में एकत्रित समाज की रचना में क्रांतिकारी परिवर्तन होता है अथवा लड़ाई में दोनों वर्गों का विनाश होता दिखाई देता है। अलग - अलग समय में हमें ऐतिहासिक युग में दिखाई देता है। तकनीकी कारीगरी समाप्त होकर उनकी जगह पर हस्त कारखानों की पद्धति अस्तित्व आयी। एक कारखाने में पृथक - पृथक कार्यों के लिए पृथक - पृथक मजदूरों के श्रम की पद्धति आयी। औद्योगिक क्रांति के बाद हस्त कारखानों की प्रथा समाप्त होकर उनके स्थान पर बड़े - बड़े कारखानों की स्थापना हुई। उनके उत्पादन के लिए बाजारों की आवश्यकता हुई। उनका विस्तार हुआ। उद्योग, व्यापार, नौकायन और रेलवे आदि के विस्तार के साथ - साथ पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ। इस उत्पादन की सामुदायिक पद्धति के अनुसरण के साथ - साथ मालिकों का अधिकार पुरानी पद्धति के अनुसार ही चालू रहता है। उत्पादन साधनों का मालिक उत्पादित माल पर अधिकार करके माल विनिमय को क्रय - विक्रय का स्वरूप देते हैं। उत्पादन सामुदायिक परन्तु मालिक माल का व्यक्तिगत अधिकार बनता है। मजदूरों पर जन्म भर श्रम करना ही अंग बन जाता है। पूँजीपतियों और मजदूरों में संघर्ष शुरू हो जाता है। पर जीवादी स्पर्धा और उसी से निर्मित होने वाला संघर्ष तब हो जाता है। इसके कारण उत्पादन कार्य सहजता से नहीं होता है।

पूँजीवादी युग में व्यापार स्वतंत्रता से उन्होंने अलग - अलग राजनीतिक बहाने से शोषण करने की पद्धति अपनायी है। बढ़ी हुई माँग की पूर्ति के लिए उत्पादन और साधनों में लगातार परिवर्तन करना पड़ रहा है। इसके अलावा उत्पादन तथा समाज में सम्बन्ध प्रतिस्थापित करने और क्रांति कारी परिवर्तन के अतिरिक्त माल का मूल्य नहीं टिक सकता है। प्रत्येक जगह स्थान बनाना तथा बस्तियाँ बनाना और सम्बन्ध स्थापित करके आगे बढ़ना पड़ेगा तब ही माल का मूल्य दिखाई देगा। व्यापार की मात्रा बढ़ाने के लिए संसार में बाहर के प्रदेशों से कच्चा माल लाना और कच्चे माल से पक्का माल तैयार करना पड़ता है। राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति समाप्त कर दूसरे देशों की आवश्यकताएँ पूरा करने के लिए यह विचार किया जाता है। उद्योग स्वतन्त्रता के अधिकार में विश्व में व्यापार करने का अधिकार सभी को प्राप्त है। क्रय और विक्रय के व्यवहार के कारण ये देश आपस में एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं।

विश्व में पूँजी को महत्व दिया जा रहा है। इसके परिणाम में विश्व में पूँजी का वर्चस्व बढ़ रहा है। पूँजी के कारण दिन-प्रतिदिन मानवीय संवेदना आहत हो रही है। पूँजीवादी वर्ग सर्वहारा वर्ग का शोषण कर रहा है। शोषक और शोषितों में खाई बढ़ रही है। 'कुकुरमुत्ता' कविता में निरालाजी ने पूँजीवादी सभ्यता पर कठोर प्रहार किया है -

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब
खुन चुसा खाद का तुने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपटलीस्ट।

निरालाजी इस कविता के माध्यम से अपने आक्रोश की भावना व्यक्त करते हैं। पूँजीवाद, बाजारवाद और भूमंडलीकरण के कारण पूँजीपति वर्ग समाज में सत्ता हथिया रहा है। वैश्विक अर्थव्यवस्था का जगमग संसार को लुभा रहा है। समाज और राजनीति में क्रूरता, छल और कपट की संस्कृति पनप रही है। विदेशी कंपनियाँ पैसों के बलपर गरीब जनता की जमीन हथियाना चाहते हैं। इस के विरोध में नागार्जुन कविता के माध्यम से आवाज उठाते हैं। उसमें मानवतावादी विचार धारा का स्वर उभरा है। वे कहते हैं -

खेत हमारे, भूमि हमारी सारा देश हमारा है,
इसिलीये तो हमको इसका चप्पा चप्पा प्यारा है।

मुक्त बाजार की आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के कारण सर्वग्रासी मूल्यहीनता अधिक विकराल हुई। कवि ने पूँजीवादी सभ्यता के भीतर के खोखलेपन को उजागर किया है। कवि जानता है कि सामान्य जनता के प्रति उन्हें कोई सहानुभूति नहीं है। जनता की आवाज, शुद्ध चीखे उनके कानोंपर कीड़ों की तरह रेंगती है। संसार की विषमता के चित्र को रामेश्वर करुण 'दुनिया की द्वंद कहानी' में व्यक्त करते हैं -

क्यों एक न कुछ भी करके नित बैठे -बैठे खात ?
क्यों एक सदा श्रम करके भरपेट न भोजन पाता ?
उस ओर किसी के कुत्ते क्यों दूध जीलेबी खाते
इस ओर किसी के बच्चे रोटी को रिरियाते ?
अरबों मन अन्न यहाँ है फिर क्यों कुछ दुनिया भुखी
मिलती न यहाँ क्यों सबको रोटी भी रुखी सुखी ?...

आधुनिक युग के कवियों का मूल स्वर पूंजीवादी सभ्यता का विरोध विक्रत संस्कृति के प्रति घृणा है। तथा मानव जीवन के अन्तर्बाह्य संघर्ष के कारण उत्पन्न असफलता, असंतोष के कारण जन्में एकाकी के भाव से भी सम्पृक्त है। 'मैं कहता हूँ' (जिजीविषा) कविता में महेन्द्र भटनागर के ये शब्द उल्लेखनीय हैं -

मैं शोषित दुनिया के।

आज करोड़ो इन्सान से कहता हूँ।

मैं भुखो नंगो पददलितो।

बेबस और निरीहो की आहोंसे कहता हूँ।

अब और अंधेरे में। मत खोजो पथ अपना।

अब और न देखो। अंतर की आँखों में सपना।

पूँजीवादी सभ्यता सत्य से कोसो दूर जाकर हमारी सभ्यता और संस्कृति को समाप्त कर रही है। आधुनिक कविता में मजदूर वर्ग शोषित वर्ग के बीच की खाई का यथार्थ निरूपण किया है। तारा प्रकाश जोशी कहती हैं -

नग्न बदन सुरज। फटे वसन अबा।

पड गया अकाल फिरे माँगने मजुरी।

बिन पगार बाबू हम कैसे घर जाएंगे।

संध्या क्या राँधेगी। तारे क्या खायेंगे।

मध्यमवर्ग लालायित हैं उच्च वर्ग के करीब जाने के लिए क्योंकि वह अपना पोषाख समझता है। लेकिन सर्वहारा वर्ग के लिए उच्चवर्ग जहरीले नाग की तरह है। वर्तमान मानव समाज स्वार्थ तथा अन्याय पर टिका है। ऐसे समाज में सामाजिकता के मानदण्ड परिवर्तित हो चले हैं। अब समाज में धनसंचयी व्यक्तियों का ही वर्चस्व है। सामाजिक व्यवस्था में मानवता नष्ट हो गयी है और स्वार्थ पनप रहा है। हरि ठाकुर की कविता 'वस्तुस्थिति' में इसी मार्मिक जीवन की विडम्बना को चित्रित किया है -

यह गलत है कि

पैसा हाथ का मैल हो गया है

सच यह है की आदमी पैसे का रखैल हो गया है

गधा चरने लगा है कुर्सियाँ और सींग लगाकर बैल हो गया है।

नपुंसक व्यक्तित्व आज के आम कामकाजी बुद्धिजीवी की दयनीय स्थिति को सामने रखता है जो अपनी आँखों के सामने होनेवाले हर अन्याय, हर ज्यादाती को चुपचाप देख - सुन लेता है। 'पैरो की थूँक चाटते हुए' कविता में हरि ठाकुर ने एक क्रूर सत्य को उजागर किया है -

मेरे पास नहीं हैं पैसे

पैसे हराम खोरो के पास है

मैं हराम खोरों की घास हूँ

वे मेरा जीवन चर रहे हैं

मैं सोलह घंटे खटता हूँ

और चौबीस घंटे रटता हूँ जैसा

किन्तु वह उंचाई पर चढता है

चढकर थुंका है

हम उसे चाटते हैं ।

आज के युग में इमानदारी नहीं दिखाई देती । हर तरफ कामकाजी वर्ग पूंजीपतियों के तलवे चॉटता दिखाई दे रहा है ।

समाज में सामाजिकता के मानदण्ड परिवर्ती हो चले हैं । वर्तमान मानव समाज स्वार्थ तथा अन्याय पर टिका है । सामाजिक व्यवस्था में मानवता नष्ट हो रही है । फिर भी आधुनिक युग के कवि एक वर्गरहित और शोषणरहित समाज की स्थापना के लिए लालायित हैं । वे जानते हैं कि मानवीय समाज संस्कृति और जीवन दृष्टि को स्वस्थ जीवन मूल्यों से जोड़ना अनिवार्य है ।

21 वीं सदी में सामाजिक मनोभाव में काफी बदलाव आया है । यह बदलाव मनुष्य की बाहरी दुनिया के साथ आंतरिक दुनिया से भी संबंधित है । बाहर - भीतर के इस तीव्र बदलाव में कुछ मान्यताएँ हट रही हैं कुछ नई मान्यताएँ आकर ग्रहण कर रही हैं । बदलाव की इस प्रक्रिया में समाज में नई नई चुनौतियाँ खड़ी हो रही हैं । व्यक्ति समूह या अन्य व्यक्ति के मध्य अपनी अस्मिता सुरक्षित रखना चाहता है । अपनी निजता खोना नहीं चाहता । वह अपनी अस्मिता के लिए पगपग संघर्ष करता दिखाई देता है । वह लगभग पहचान हीन की स्थिति में जी रहा है । 'हरिश्चंद्र आओ' में रमेश चंद्र साह इस दर्द को उठाते हैं -

मैं घास की तरह जन्मा

और बड़ा मुझे किसी ने नहीं बोया सभी ने रौंदा

और सभी ने चरा ।

घास की जैसे कोई विशिष्ट पहचान नहीं होती कोई मूल्य नहीं होता उसकी भी ऐसी ही स्थिति है । परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है । मानव जीवन और मूल्य दोनों ही इसके प्रभाव व्याप्ति के क्षेत्र हैं । क्या नगर क्या ग्राम दोनों में ही यह कही सिथिल गति से गतिशील रहता है । जिसके कारण मानव समाज का रूप निरंतर परिवर्ती होता रहता है । समकालीन कवियों ने इस बदलते मूल्यों को प्रासांगिक रूप में अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति दी गयी है । 'पटकथा' कविता में इसी मूल्यहीनता की ओर संकेत किया जाता है -

मैंने अहिंसा को / एक सत्तारूढ शब्द का गला काटते हुए देखा ।

मैंने इमानदारी को अपनी चोर जेब / भरते हुए देखा ।

मैंने विवेक को / चापलुसों के तलवे चाहते हुए देखा ।

मानव के हृदय में चालाकी बेईमानी घर करने लगी है । इमानदारी एवं सादगी से उसे कुछ भी हासिल नहीं हो रहा । आम आदमी भी इसकी चपेट में आ गया है । 'नाटक जारी है' लीलाधर जूगड़ी की कविता में इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है -

पिछले साल मैंने एक नारा लगाया था ।

तुरंत दुकानदार ने मुझे अन्दर बुलाया

और जास्ती राशन देकर एक सिगरेट पिलाया ।

सामाजिक जीवन के यथार्थ की विविधता व्यापकता और संश्लिष्टता को पकड़ना सचमूच आज हेड़ी खीर है । पहले व्यक्ति एवं समाज मन की परख आसानी से हो जाती थी लेकिन आज वह मुश्किल है । अरुन कमल 'नए इला के में' इस कविता में लिखते हैं -

इस तेज बहुत तेज चलती पृथ्वी के अन्धड में ।

जैसे मैं बहुत सारी आवाज नहीं सुन रहा हूँ ।

वैसे ही तो होंगे वे लोग भी जो सुन नहीं पाते ।

गोली चलने की आवाज ताबतोब ।

और पूछते हैं कहाँ है पृथ्वी पर चीख ।

समाज में सामाजिक के मापदण्ड परिवर्तीत हो रहे हैं । वर्तमान समाज स्वार्थ और अन्याय पर टिका है । सामाजिक व्यवस्था में मानवता नष्ट हो रही है । उसका प्रभाव हिंदी साहित्य में दिखाई दे रहा है ।

हिंदी कविता आज नई संवेदनाओं के साथ निरंतर बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रही है । राजनीति बाजार, मिडिया, सूचना, तकनीकी, भूमंडलीकरण आदि के प्रभाव के कारण हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन हो रहा है । ऐसी स्थिति में आर्थिक विसमता एवं शोषण के कारण आम आदमी त्रस्त है । विश्व में पूंजी को महत्व दिया जा रहा है आम जनता का शोषण करना , अपनी सत्ता संजोए रखना पूंजीवादी और राजनेताओं का प्रमुख धर्म बन गया है । हिंदी भाषा के समकालीन कवियों ने संवैधानिक मूल्य के आधार पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संकट के प्रति तटस्थ रूप से आवाज उठायी है ।

संदर्भ सूची :-

- | | | |
|------------------------------------|---|---------------|
| 1) नयी कविता नये कवि | - | विश्वंभर मानव |
| 2) समकालीन कवि और काव्य | - | कल्याण चंद |
| 3) समकालीन हिंदी कविता में आम आदमी | - | मृदुल जोशी |
| 4) समकालीन कविता के बारे में | - | नरेंद्र मोहन |
| 5) हिंदी के प्रगतिशील कवि | - | डॉ. रणजित |



संत साहित्य में संवैधानिक मूल्य

डॉ. पुष्पा गोविंद गायकवाड

वै. धुंडा महाराज देगलूरकर,
महाविद्यालय, देगलूर

संत से तात्पर्य है संत जो निरंतर सत्य का निरूपण सत्य का विवेचन और सत्य का प्रचार प्रसार करता है वह है संत

डॉ. पिताबरदत्त बड्ढवाल ने संत शब्द की उत्पत्ति शांत शब्द से बताई है।

जो स्वभाव से शांत अविचल है, वह संत है संत शब्द से सज्जनता परोपकार सत्य का अन्वेषक साधुत्व के लक्षण महान कार्य की पहचान धर्म साधक निर्लेप पवित्र आत्मा सदाचारी पुरुष आदी। संदर्भ लक्षित होते हैं। जो निःस्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त होता है जिसने मनुष्यमात्र के प्रति धर्मोत्तर दृष्टी है।

कबीरदास जब कहते हैं “कबीरा सोई पीर है। जो जाने पर पीर वो संत है। जो दुसरे की पीडा जानता है।

गुजराती के नरसी मेहता कहते हैं कि वैष्णव जन तो तैने कहिए पीर पराई जाने रे
वही वैष्णव है जो दुसरे के दुख जानता है।

तुलसीदास जब कहते हैं कि,

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई

पर पीरा सम नहि अधमाई"

दुसरे को दुख देने के समान कोई पाप नहीं है और दुसरे को सुख पहुँचाने के समान कोई पुण्य नहीं है।

संत की महीमा का गुणगान करते हुए क्रांतीकारी राष्ट्र संत तरुण सागर कहते हैं।

संत आध्यात्म के आकाश में इन्सानियत का इंद्रधनुष्य है। संत सौहार्द के सितार पर सदभाव का संगीत है। संत अपनत्व के आँगन में आत्मीयता की आराधना है। संत प्यार की पीढी पर परमात्मा की प्रार्थना है। संत विकृती के बाजारों में संस्कृती का शंखनाद है। संत कलह के काँटे नहीं उगाता। संत वासनाओं के बताशे नहीं बाटता। संत षडयंत्र के यंत्र नहीं बेचता।

संत समाधिकरण का बीज देता है, संत आचरण का अशिष देता है। संत जागरण की तावीज देता है। संत जो कभी नष्ट न हो वह चीज देता है।

गंगा सिर्फ पाप का, चंद्रमा सिर्फ ताप, का और कल्पवृक्ष सिर्फ अभिशाप, का नाश करता है। लेकिन संत का दर्शन पाप, ताप और अभिशाप तीनों का नाश करता है। मध्यकालीन संत कवि भी एक ऐसे मानव धर्म की एक नई व्याख्या कर रहे थे। एक ऐसे माणव मूल्य की प्रस्तावना लिख रहे थे। जिसका आधार यह परम विश्वास कि घट-घट में तेरा साई बसता। इसलिए संत कवि दुखी जनकी की पीडा को जानने और मानव धर्म को जोड़नेवाले एकता को सुत्र स्थापित कर रहे थे।

मूल्यों का प्रारंभ परिवार से होता है। परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुष्य व्यापक समाज में आता है। ग्राम, प्रांत, देश सब उस व्यापक समाज के घटक हैं। अतः साहित्य समाज का दर्पण है। यह उक्ति सार्थक प्रतीत होती है। उपनिषदों के सत्यम वद धर्म चार से लेकर, कबीर तथा तुलसीदास से लेकर, रहीम के नीति काव्य तक

व्याप्त नीति साहित्य में मूल्य शब्द का प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है।

भारतीय चिंतन धारा के अनुसार सत्य शिव सुन्दरम ही मानव मूल्य है। संत साहित्य में वैयक्तिक मानव मूल्य को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। क्योंकि इसका सम्बंध प्रत्येक मानव के चरित्र पर आधारित है। स्वार्थता, अहंकार, शत्रुता और विषय वासना आदि का परित्याग करनेवाला मनुष्य ही श्रेष्ठ माना जाता है। और वही उसके मानव मूल्यों का निदर्शन है। करनी और कथनी का सामाजिक भी व्यक्तिगत मूल्यों में प्रमुख है। जिसे संत कवियों ने अपने जीवन का आदर्श माना था।

सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध खड़े रहनेवाला मनुष्य ही मानव मूल्य का झंडा ऊँचा उठा सकता है। संत कवियों ने अपने चारों ओर देख पड़नेवाली सामाजिक एवं धार्मिक असंगतियों तथा विद्रुपताओं के विरुद्ध ऊँचे स्वर में अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। सामाजिक सम्बन्धों को गतिशील बनाए रखने में मूल्यों का योगदान सर्वमान्य है। और यह मानव कल्याण का आधार स्तम्भ भी है। राष्ट्रप्रेम, समाजप्रेम, मानवीयता, अहिंसा, दया, त्याग, समन्वय, भावना, कथनी और करनी का समन्वय चोरी, रिश्वत आदि से घृणा आदि सब सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत आते हैं। जिसे संत कवियों ने बड़ा महत्व दिया और उसका पालन भी किया था।

सन्तों ने नेक कमाई का स्वागत किया है। और स्वावलम्बन तथा परोपकार तत्परता को बड़ा महत्व दिया है। संत कबीर तथा दादूदयाल ने सब प्रकार के आडम्बरों का विरोध किया है। और मानवता की एकता को मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने समाज के उत्कर्ष के लिए मानव मूल्यों तथा नैतिक गुणों के विकास पर बल दिया है।

संत साहित्य में मानव मूल्य को प्रधानता देनेवाले क्षमा, दया, त्याग, समता, विश्वबन्धुता आदि को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है।

कबीर एक महान साधक थे। और उनकी साधन पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने राम और रहीम दोनों को एक ही माना है।

कबीर का मत है कि, जब सारा संसार एक ही पानी, एक ही पवन तथा एक ही ज्योती से बना है। और उन सबका सृष्टीकर्ता भी एक ही है, अन्य किसी प्रकार का भेदभाव मानना व्यर्थ और विरर्थक है।

जैसे :-

"एकै पवन एक ही पानी
करी रसोई न्यारी जानी"

संत दादूदयाल :-

संत कवियों में कबीरदास के बाद दादूदयाल का स्थान सबसे प्रमुख है। संत दादू हिंसा के सबसे बड़े विरोधी थे। और अहिंसा तत्व के प्रचारक भी थे। उनकी परोपकार तत्परता खुब प्रसिद्ध है।

संत दादू अन्य संत कवियों के समान किसी एक ही धर्म के पाबन्ध नहीं, वे वे धर्म के नाम पर किए जानेवाले बाह्य आचरणों तथा अन्धविश्वासों को निरर्थक मानते थे। और उनको खिलाफ लड़ते थे।

दादू को कहन है कि मन्दिर या मस्जिद में जाकर ईश्वर के भजन करने की जरूरत नहीं। क्योंकि वास्तविक मन्दिर और मस्जिद हमारे हृदय के भीतर ही है।

दादू तीर्थस्थानों की यात्रा को बाह्यआचार मात्र मानते थे उनका कहना है। कि ईश्वर की खोज में द्वरका, काशी, मथुरा आदि पुण्य स्थानों की यात्रा व्यर्थ है। क्योंकि वे पुण्य स्थान भी हमारे हृदय के भीतर विद्यमान हैं।

जैसे:-

“कोई दौड़े दारिका,
कोई काशी जाहि
कोई मथुरा को चले
साहब घट में नाहि”

वे आचरण की शुद्धता को बहुत मानते थे। उनके अनुसार अचरण की शुद्धता मनुष्य का सहज एवं स्वाभाविक स्वरूप है। और वही मानव धर्म है। वे सभी धर्मों को समानता की दृष्टि से देखते थे। कबीर के द्वारा जलाई गई धार्मिक एकता की मशाल को दादूने आपने हाथों बड़े उत्तरदायित्व के साथ पकड़ लिया। और उस दीप शीखा को और भी प्रज्वलित करने का प्रबल प्रयास किया।

दादू का विचार है कि देवता सब झूठे हैं। उनकी सेवा झूठी, मन्दिर फिजूल है। मूर्तियाँ अनावश्यक हैं, पुजारी और उनकी सेवाएँ भी झूठी हैं। वे कहते हैं

“ झूठी देवा झूठी सेवा
झूठी केर पसारा
झूठी पूजा, झूठी पाती
झूठी पूजनहारा”

ईश्वर हमारे भीतर रहते हैं मन्दिरों का निर्माण करके हम पुजारीयों की संख्या बढ़ा रहे हैं। जिससे हमारे देश में अंधश्रद्धा का दौर बढेगा जिससे देश का विकास नहीं होता। मन्दिर, मस्जिद, चर्च मूर्तियों से अच्छे शिक्षालय की बढोतरी होनी चाहिए जिसे युवा वर्ग पढ़ लिखकर देश को उन्नति की ओर ले जायेगा।

कोरोना वायरस को समाप्त कराने अभी तक देश में दवा नहीं बनी यदि हमारे देश में मन्दिर मस्जिद से ज्यादा विद्या के मन्दिर अधिक होते तो देश में सायनितिक निर्माण होते। कोविड पर नियंत्रण होता।

गुरुनानक:-

गुरुनानक एक प्रसिद्ध संत थे जिन्होंने हिंदू धर्म इस्लाम धर्म और सूफी सम्प्रदाय के सार तत्व को अपनाकर एकनवीन सिक्ख धर्म की स्थापना की थी। जिसमें निर्गुण पर ब्रह्म की भक्ति भावना को सर्वप्रथम स्थान था। उनके धर्म में सर्वधर्म समभाव सर्वश्रेष्ठ तत्व माना गया है। उनकी दृष्टि में वही मनुष्य ज्ञानी एवं श्रेष्ठ है। जो सर्वधर्मों को मनुष्य मात्र के लिए एक मानता है। और व्यर्थ वाद-विवाद तथा लड़ाई झगड़े से दूर रहता है। गुरु नानक ने जाति-पाति उच्चनीच भेदभाव एवं मूर्तिपूजा का कट्टर विरोध किया था।

डॉ. इंद्रकुमार गुजराल का मत है

मनुष्य मूल्यों की रक्षा के लिए युग युगों से सन्त और महापुरुष जन्म लेते रहे। गुरुनानक भी एक ऐसे महापुरुष थे। उनका संदेश है ईश्वर एक है। वह सर्वशक्तिमान है। और सर्वव्यापी है नानक ने अपनी वाणी के द्वारा लोगों को समझाया कि परमात्मा प्रदत्त यह शरीर ईश्वर का पवित्र मन्दिर है। ईंट और पत्थर से बने मन्दिर को कुछ भी महत्व नहीं है।

गुरु नानक की राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति अन्य सन्त कवियों के बीच में उन्हें एक पृथम विलक्षण व्यक्तित्व प्रदान करता है। उनका मानव प्रेम विश्वव्यापी था जिससे उनमें विश्व मंगल की कामना कूट कूट कर भरी हुई थी। वे कभी केवल आपने देश के प्रति ही चिन्तित नहीं बल्की समस्त संसार के लोगों के कल्याण की कामना से हमेशा पीडित थे। वे हमेशा विश्वमंगल की कामना से प्रेरित होकर सच्चे विश्व प्रेमी तथा विश्व नागरिक बन चुके थे।

संत नामदेव मानवतावादी थे। उनके पदों में ईश्वरोन्मुखता गुरू महिमा, सत्यंगति, गुण, कथन बोधात्मकता, आत्मनिवेदन तथा राष्ट्रीय भावनात्मक एकता की अभिव्यक्ति हुई है उन्होंने पाखण्ड भक्ति एवं बाह्यडम्बर का विरोध कर ईश्वर एक है घट-घट एवे चराचर में समान रूप से व्याप्त है। ऐसा अनुपम संदेश दिया आहिंसा एवं ईश्वर के विषय में वे कहते हैं।

“ पाहन आगै देव कशीला
बाको प्राणनही बाकी पूज रचीला
निरजीव आगे सजीव मारे
देषत जन्म आपनो हारै”

संत रैदास भारत में 15 वीं शताब्दी के एक महान दर्शनशास्त्री, कवि समाज सुधारक और ईश्वर के अनुयायी थे वो निर्गुण संप्रदाय अर्थात् संत परम्परा में एक चमकते नेतृत्वकर्ता और प्रसिद्ध व्यक्ति थे। संत रैदास एक निर्गुण संत कवि थे। रामानंद के शिष्यों में कबिर के बाद रैदास का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। रैदास चमार जाति के थे। उनके काल में देश की मुख समस्याएँ थी, अस्पृश्यता जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था रैदास ने इन सारी सामाजिक पाखंडों के विरुद्ध संघर्ष किया था और अपना विद्रोह का स्वर उँचा किया था। उनके जीवन का मुख्य ध्येय भक्ति भावना का प्रचार करना मात्र नहीं था बल्कि समाज में व्याप्त उच्च नीच की भावना को मिटाना भी था।

रैदासजी का सामाजिक दायित्व स्पष्ट करने के लिए, डॉ. विजय प्रतापसिंह का कथन उद्धृत करने लायक है। उन्हीं के शब्दों में “संत रैदास ने रूढ़िगत भारतीय जनता को धर्म के ठेकेदारों के प्रभाव तले दबे हुए समाज को सामांतों के कठोर हाथोंसे पिडीत हुई देशों की आधीकांश संख्याओं को विद्रोही विचारोंसे उतेजीत कर इनके पुरातन तथा जर्जर, जंजीरों को तोड़ कर सभी को समता भाव की मृदुल भूमि पर ला खड़ा किया”

रैदास ने अपने पदों के द्वारा हिन्दु मुस्लिम को मानवीयता का संदेश देकर सदभाव एवं सदाचार जैसे शाश्वत मूल्यों का प्रचार प्रसार किया। उन्होंने जाति पाति का खण्डन कर धार्मिक आडम्बर का विरोध किया। वे ऐसे राज्य की कल्पना करते थे जहाँ पर कोई छोटा-बड़ा न हो।

समतावादी और समाजवादी शासन व्यवस्था की कल्पना आज से छः सौ वर्ष पूर्व उन्होंने की थी।

“ ऐसा चाह मैं राज
जहाँ मिले सबन को अन्न
छोट-बड़ो सब सम बसै
रैदास रहे परसन्न ”

रैदास ने कहा है भारत वर्ष में ऐसा राज होना चाहिए, जहाँ पर भेदभाव न हो, विषमता की खाई नष्ट हो, सब समानता के हक्कदार हो, एक बड़ा और एक छोटा ऐसी प्रशासन व्यवस्था उन्हें स्वीकार नहीं थी।

हमारे देश में आज भी जन्म के आधार पर कोई उँच है। तो कोई नीच है पर संत रैदास जन्म के आधार पर वे किसी को उँच-नीच नहीं मानते थे।

जैसे:- “जन्म के कारणों होत न कोई नीच”

रैदासजी के समय भारत पर विदेशियों के आक्रमण और अत्याचार की आँधी चल रही थी तब उन्होंने भारतीयों को विदेशियों से मुकाबला करने की प्रेरणा देते हुए कहा है।

“ पराधीनता पाप है, जानि लेहु रे मीत”
रैदास पराधीन को कौन करै है प्रीत”

किसी की गुलामी करना रैदास को स्वीकार नहीं था। वे पराधीनता को पाप मानते थे। च्याहे वह विदेशीयों की हो या अन्य लोगों की उन्हें गुलामी स्वीकार नहीं थी।

आज हम सुबह से लेकर रात के सोने तक विदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं। हम अपने देश की वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं। हम अपने देश की वस्तुओं में कमियाँ ढूँढते हैं। विदेशी ब्रांड हमें आकर्षित करते हैं। हम उसी में घुलमिल गये हैं। सभ्यता के नाम पर हम आपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। विदेशी सभ्यता के नाम पर हम पराधीनता की ओर जा रहे हैं।

रैदास का काव्यपक्ष गम्भीर विस्तृत एवं वैचारिक है। जहाँ हिन्दु मुस्लिम एकता पर उन्होंने बल दिया। छूआछूत का विरोध वर्गहीन समाज की कल्पना मानतावाद, स्वतंत्रता चेतना। उन्होंने लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर रचनाएँ की हैं। निम्नजाति के होने के कारण, उस समय उनके सामने धर्म के वातायन बंद रखे हुए थे। ऐसे समय में रैदास ने निराकार निर्गुण सर्वव्यापी परमेश्वर की उपासना करना अपना कर्तव्य माना था। और सभी धर्मों के प्रति भक्ति भाव रखा था। वे धार्मिक एकता के प्रचारक रहे हैं।

रैदास ने ब्राह्मण और चाण्डाल के बीच में कोई भेदभाव नहीं माना वे कहते हैं कि सभी घट में एक ही भगवान है। और जन्म के आधार पर कोई भी ऊँचा या नीचा नहीं बन सकता। वे कहते हैं

“ ब्राह्मण और चाण्डल में रविदास
नहीं अन्तर जाना
सब मोहि एको ज्योती है
सब घट एक भगवान ”

“ सब घट एक भगवान यह रैदास की वाणी आज भी तर्क संगत है। मनुष्य में भेदभाव नहीं करना चाहिए। सभी घट में भगवान विराजमानते हैं। उनका मत था कि प्रत्येक भक्त को, निष्काम योगी बनना चाहिए निष्काम योगी वह होता है जिसे धन संपत्ति की अशा नह, होती वह निष्काम भाव से अपने अराध्य का जाप करता है। उनके मत के अनुसार,

“सो कह जाने पीर पराई
जा के अन्दर दरद न पाई”

दूसरो की वेदना को जाननेवाला ही सच्चा संत है। किसी ओर का दुख देखकर दुखी होना सच्चे संत की निशानी है।

संत रैदास ने मन्दिर और तीर्थ को फिजूल अथवा थोथा बताया है। निम्न जाति में जन्म लेने की वजह से वे मन्दिर में प्रवेश न कर सकते थे। और उनको तीर्थस्थानों की यात्रा भी मनाई थी। वे कहते हैं,

“ मसजिद सौ घिनन नही,
मन्दिर सौ नही प्यार ,
दोह मुँह अलह राम नहि,
कह रविदास विचार “

उन्होंने स्पष्ट रूप से यह बताया है, कि ईश्वर मन्दिर या मास्जिद में नहीं रहता वह तो मनुष्य में पाया जाता है।

रैदास ने भी कबीर के समान शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत को स्वीकार किया था उन्होंने कहा है। कि राम-रहीम केशव-करीम आदि नाम एक ही परमेश्वर के हैं। उनकी धारणा है कि जब तक कृष्ण और करीम कुरान और पुराण को एक ही रूप में हम स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक सारी साधना एवं पूजा निरर्थक तथा मिथ्या सिद्ध होगी।

हम आज भी जाति-पाति के भेदभाव में जी रहे हैं। हमारे देश में प्रांतवाद जातिवाद, भाषावाद इस वादों से हम बाहर नहीं निकले।

छः सौ वर्ष पूर्व उन्होंने कहा था

“ जाति-पात के फेर में
उरझि रहयौ सब लोग
मनुष्यता को खात है
रविदास जात को रोग ”

यह जाति-पाति का रोग मनुष्य को खोजता है वह हिनताबोध जगाता है। हमें आगे बढ़ने नहीं देता है। हमें अंदरही अंदर खोकला बना देता है।

इस सृष्टी का विधाता सभी को एक ही नजर से देखता है। वह कभी भेदभाव नहीं करता उसके पास उच्च-नीचता नहीं है।

जैसे:-

“ एक नजर सू सब को देख
सृष्टी का सिरजनहारा ”

वे कहते हैं श्रम करके खाईए किसी को कुटकर नहीं साधु सन्यासी भगवान के नाम पर लोगों को लुटते हैं। मेहनत की कमाई में बरकत होती है। वह बेकार नहीं जाति।

“ रविदास श्रम करि खाइहि
जो लो पार बसाई
नेक कमाई जउ करही
कबहु न निहफल जाइ ”

मेहनत की कमाई से रज कन कभी बन जाते हैं। मोती श्रम करके खाईए।

निष्कर्ष :

संत सदा ही सदाचारी शांत जीवन बितानेवाले लोग थे। उन्हें धन संपत्ती का कभी भी मोह नहीं रहा। वे अपने इष्टदेव की पूजा और उपसाना में मग्न थे। वे देश और जाति का कल्याण भगवद भजन में ही देखते थे। उन्हें राज दरबारों के ऐश्वर्य में तनिक भी आकर्षण न था। वे लोग तो बादशाह का निमंत्रण आने पर कह देते थे।

“ संतन कहा सीकरी सौ काम ...

संत को राजा के सीकरी से क्या काम है। संतों को धन संपत्ती की आवश्यक नहीं होती है। इसीलिए तो कबीर ने कहा है...

“ साई इतना दीजिए
जामे कुटुंब समाई
में भी भूखा न रहूँ
साधु न भुखा जाई ”

संत साहित्य में उच्चनीचता का विरोध कर समता मूलक समाज की स्थापना दिखाई देती है।

सभी संतो ने असमानता का बिहिष्कार किया है उन्हें तो समाज में समानता समता, बंधुता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय अदि बातों पर संतो ने अपनी वाणी से प्रकाश डाला है।

संत साहित्य की रचनाएँ आज समाज जीवन के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से देखा जाये तो, संत साहित्य का महत्व जितना मध्यकाल में था उतना आज भी है।

विश्व में शांति सदभावना प्रेम और परस्पर मानव में दया, समता का बीजारोपण संत साहित्य ने किया है।

संदर्भ ग्रंथ

- | | |
|---|--------------------|
| 1 भविष्यकाल के कालजयी रचनाकार | डॉ. विष्णुदास |
| 2 मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता | डॉ. वी.एन. फिलीप |
| 3 संत परम्परा | डॉ. प्रतीमा भुसारे |
| 4 प्राचीन हिन्दी काव्य | नागनाथ कुंठे |
| 5 हिन्दी साहित्य का इतिहास | डॉ. शिवकुमार शर्मा |



हिन्दी दलित उपन्यासों में संवैधानिक मूल्य

प्रा. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड

हिंदी विभागाध्यक्षा एवं शोध निर्देशिका,

वसुंधरा कला महाविद्यालय,

जुले सोलापुर, महाराष्ट्र।

प्रस्तावना :-

भारत का संविधान भारत के लोगों द्वारा भारत के लोगों के लिए न्यायपूर्ण तरीके से शासन करते हुए देश के विकास से जोड़ने के लिए बनाया गया है। भारतीय संविधान वास्तव में एक नीति नियमों का समूह है। संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी ने अत्यंत विस्तृत और गहन अध्ययन कर विश्व के सर्वश्रेष्ठ संविधान की निर्मिति की है। डॉ. बाबासाहेब जी ने 2 वर्ष, 11 महीने, 17 दिन में अथक प्रयास कर भारत के संविधान का रूप साकार किया है। उन्होंने 26 नवंबर, 1949 को भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी को सौंप दिया। भारत का संविधान 26 जनवरी, 1956 से लागू हुआ। हमारा संविधान विश्व का सर्वाधिक लंबा विस्तृत और लिखित है। इसमें 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियां थीं। परंतु आज इसमें 446 अनुच्छेद, 25 भाग और 12 अनुसूचियां, 5 अनुलग्नक तथा 100 संशोधन हुए हैं।

भारतीय संविधान का मूल उद्देश्य जाति, वर्ण, वर्ग तथा शोषण विहीन समाज की स्थापना करना है। हमारा संविधान समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुता, शोषण आदि मूल्यों को महत्व देता है। संविधान ने प्रत्येक भारतीय नागरिक को समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के खिलाफ लड़ने का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, शैक्षिक अधिकार और सांस्कृतिक अधिकार प्रदान किए हैं। डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी की विचारधारा से प्रेरित हिंदी दलित उपन्यासों में भारतीय संवैधानिक मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इनमें डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी के 'छप्पर', मोहनदास नैमिशराय जी के 'मुक्तिपर्व', सत्य प्रकाश जी के 'जस तस भई सवेर' और रघुवीर सिंह के 'आक्रोश' आदि दलित उपन्यास प्रमुख हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 समानता के अधिकार से संबंधित हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान ने जाति, धर्म, लिंग तथा जन्म स्थान के अनुसार नागरिकों में होनेवाले भेदभाव और विषमता को पूरी तरह से नकार दिया है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी द्वारा लिखित हिंदी का प्रथम दलित उपन्यास 'छप्पर' यह भारतीय संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति करने वाला सशक्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास के नायक चन्दन, नायिका रजनी, चन्दन के माता पिता रमिया और सुकखा, कमला आदि पात्रों पर भारतीय संवैधानिक मूल्यों का अत्यधिक प्रभाव है। 'छप्पर' उपन्यास का नायक चन्दन एक सचेत भारतीय नागरिक की भूमिका में समतावादी विचारों का प्रसार करता है। जाति, धर्म, संप्रदाय के कारण दलित समाज के साथ होनेवाले अन्याय, अत्याचार और शोषण का विरोध करता है। चन्दन सम्पूर्ण राष्ट्र में सामाजिक समानता की स्थापना करना चाहता है। वह सामाजिक समता का नारा देते हुए प्रस्तुत कथन कहता है, "यदि समाज हमें समानता का दर्जा नहीं देता है, वह हमें हमारे मनुष्यत्व के साथ स्वीकार नहीं करता, तो यह समाज का दोष है। समाज धर्म

द्वारा प्रेरित और संचालित है, हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है।¹ चन्दन समाज में व्याप्त विषमता, भेदभाव, अशिक्षा, अन्याय, अत्याचार और अंधश्रद्धा दूर कर व्यक्तियों के लिए समानता, स्वतंत्रता, न्याय और भाईचारे की भावना बढ़ाने की दृष्टि से प्रयास करता है। उसके इस कार्य की प्रशंसा करते हुए रजनी कहती है, “चन्दन ! समानता और सामाजिक न्याय की जो ज्योति तुमने जलाई है और जहाँ - जहाँ तक भी उसका आलोक पहुंचा है, सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानता और अन्याय के अंधकार का नाश कर समानता और न्याय का प्रकाश फैलाया है उसने।”² मोहनदास नैमिशराय जी के ‘मुक्तिपर्व’ इस दलित उपन्यास में नवाब अली वर्दी खां बंसी के बेटे सुनीत का जन्म होने के बाद उसके घर जाकर सुनीत को अपनी हवेली में नौकर के रूप में भेजने के लिए कहते हैं। तब बंसी नवाब साहब की बात स्पष्ट रूप से नकारते हुए कहता है, “मुझे गुलाम बने रहने की आदत नहीं नवाब साहब। वैसे भी देश अब आजाद हो गया है। अब न कोई किसी का गुलाम है और न कोई किसी का मालिक। सब बरबबर हैं।”³ सत्यप्रकाश जी के ‘जस तस भई सवेर’ दलित उपन्यास का नायक शिवदास समतावादी विचारों का प्रसार करता है। मनुवादी विचारधारा के चौधरी देवीपाल और उसके साथियों को संविधान में अभिव्यक्त समानता के अधिकार की याद दिलाते हुए शिवदास प्रस्तुत कथन कहता है, “संविधान की दृष्टि में सब समान है। वर्ण, जाति, लिंग के आधार पर बड़े छोटे या स्पृश्य-अस्पृश्य का कोई भेद नहीं है, किंतु व्यावहारिक रूप से समाज में यह विभेद आज भी है।”⁴

भारतीय संविधान ने सभी भारतीय नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया है। सरकार की ओर आर्थिक अनुदान प्राप्त शैक्षिक संस्थाओं में देश के सभी नागरिक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। जाति, धर्म, संप्रदाय लिंग आदि के कारण किसी भी भारतीय नागरिक को शिक्षा लेने से रोका नहीं जा सकता है। संविधान में पिछड़े एवं कमजोर वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा के समान अधिकार का प्रबंध किया गया है। बिना किसी भेदभाव के शिक्षा का सार्वभौमीकरण किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता के अनुसार शिक्षा के सामान अवसर उपलब्ध हैं। ‘छप्पर’ उपन्यास का नायक चन्दन दिल्ली जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक काबिल इंसान बनना चाहता है। वह दिल्ली में पी-एच.डी. की उपाधि के लिए प्रवेश लेता है। परंतु वह चमार इस दलित जाति का होने के कारण गांव के जमींदार ठाकुर हरनाम सिंह और उच्च जाति के कुछ लोगों द्वारा चन्दन की शिक्षा रोकने की कोशिश करते हैं। चन्दन के माता-पिता रमिया और सुक्खा पर दबाव डालकर, उन्हें अनेक यातनाएं देकर चन्दन को वापस गांव बुलाने के लिए कहते हैं। ठाकुर चन्दन को मजदूरी के काम में जोत देना चाहते हैं। लेकिन चन्दन और उसके माता-पिता ठाकुर हरनाम सिंह और उनके साथियों के सामने हार नहीं मानते हैं। ठाकुर हरनाम सिंह की उच्च शिक्षित बेटी भारतीय संवैधानिक मूल्यों का सम्मान करती है। वह अपने पिता ठाकुर हरनाम सिंह को संवैधानिक मूल्यों के प्रति सचेत करते हुए कहती है, “यदि चन्दन पढ़-लिखकर कुछ काबिल बनना चाहता है तो यह उसका संवैधानिक हक है, इस पर किसी को एतराज क्यों होना चाहिए। सुक्खा यदि अपना पेट काटकर अपने बेटे को पढ़ाना चाहता है तो उसको ऐसा करने से क्यों रोका जाए ? मैं तो कहती हूं कि इसके लिए तो सुक्खा की मदद की जानी चाहिए और दूसरे लोगों को भी सुक्खा से प्रेरणा लेकर अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा कर काबिल बनाना चाहिए।”⁵

मनुवादी समाज व्यवस्था में शूद्रों की स्वतंत्रता का हनन किया गया था। स्वतंत्रता के अभाव में शूद्र जातियाँ अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश थीं। स्वतंत्र भारत के संविधान में भारत के हर नागरिक को

स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हुआ है, जिसके माध्यम से भारत की किसी भी जाति का व्यक्ति अपनी मर्जी से कोई भी व्यवसाय या कारोबार कर सकता है। देश के किसी भी भाग में भ्रमण तथा निवास करना विचारों की अभिव्यक्ति तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अनुसार हर व्यक्ति को अपना जीवन जीने की छूट है। हिंदी के प्रथम दलित उपन्यास 'छप्पर' में सामंतवादी विचारधारा के जमींदार ठाकुर हरनाम सिंह चन्दन की शिक्षा रोककर उससे अपनी खेती में मजदूरी करवाना चाहते हैं। ठाकुर साहब की बेटी रजनी अपने पिता को यह समझाती है कि संविधान से प्राप्त अधिकार के माध्यम से चन्दन उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपनी मर्जी से कोई भी व्यवसाय या रोजगार कर सकता है चन्दन या उसके परिवार के साथ किसी भी तरह की जबरदस्ती करना उचित नहीं है। रजनी का कथन दृष्टव्य है, "संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को सम्मान और स्वाभिमान पूर्वक जीवन जीने का हक है। हर व्यक्ति को अपनी जीविका का साधन चुनने और जीवन जीने की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है।"⁶ रजनी पिता को यह समझाती है कि भारतीय संविधान में हर नागरिक को इस बात की स्वतंत्रता दी है कि वे अपनी मर्जी से कोई भी नौकरी या रोजगार कर सकता है।

वर्णवादी सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों का प्रमुख कर्तव्य उच्च वर्ण की सेवा करना था। शूद्रों को उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती गुलाम बनाकर खेती तथा अन्य श्रम के काम करवाए जाते थे। सवर्ण जातियों द्वारा शूद्रों का आर्थिक, शारीरिक शोषण होता रहा है। गुलामी की प्रथा के कारण शूद्र समाज अत्यंत अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश था। इसीलिए स्वतंत्र भारत के संविधान में भारतीय नागरिक शोषण का विरोध कर सकता है। अनुच्छेद 23 - 24 के तहत कोई भी भारतीय व्यक्ति अपने होने वाले शोषण का विरोध कर आत्म सम्मान से भरा जीवन जी सकता है। मोहनदास नैमिशराय जी के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में चित्रित नवाब अली वर्दी खां स्वतंत्रता से पहले चमार जाति के बंसी को नौकर के रूप में अपनी हवेली में काम करवाते हैं। आजादी के पहले नवाब के घर में नौकर के रूप में काम करनेवाले बंसी का शोषण करते हैं। परंतु देश स्वतंत्र होते ही बंसी सचेत होता है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागृत होता है। स्वतंत्र भारत में नवाब साहब जब बंसी को गुलाम कहते हैं तब बंसी उनकी बातों का कड़ा विरोध करते हुए प्रस्तुत उत्तर देता है, "जनाबे अली, हम न गुलाम थे, न गुलाम हैं और न गुलाम रहेंगे।"⁷ बंसी द्वारा शोषण का तीव्र विरोध होने पर नवाब अत्यंत क्रोधित होकर हुक्के में रखी हुई चिलम उठाकर बंसी के मुंह पर फेंक देते हैं। बंसी के माथे से खून बहने लगता है। किंतु बंसी को इस बात की चिंता नहीं है। वह स्वतंत्र भारत में किसी का गुलाम बनकर जीना नहीं चाहता है। बंसी नवाब साहब से प्रस्तुत कथन कहते हुए हवेली का काम छोड़ देता है, "हां हां जा रिया हूँ, मैं तो थूककुंगा भी नई हियां पर।"⁸ बंसी शोषण का विरोध कर अत्यंत स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने लगता है। कई आर्थिक संकटों के बावजूद वापिस नवाब अली वर्दी खां की हवेली में नौकर के रूप में काम करने नहीं जाता है। बंसी के बेटे सुनीत का जन्म होने के बाद नवाब अली वर्दी खां खुद बंसी के घर जाकर उसके बेटे सुनीत को अपनी हवेली में नौकर के रूप में काम पर भेजने के लिए कहते हैं। बंसी नवाब साहब की बातों को स्पष्ट रूप से नकारते हुए कहता है, "नवाब साहब, अब न मैं किसी की गुलामी करूंगा और न मेरा बच्चा।"⁹

भारतीय संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की है। संविधान सभी धर्मों के नागरिकों को समान धार्मिक अधिकार देता है। रघुबीर सिंह जी के 'आक्रोश' दलित उपन्यास में सभी जाति,

धर्म के व्यक्तियों को धार्मिक, सांप्रदायिक भिन्नता भूलकर राष्ट्र की उन्नति के लिए समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुता आदि तत्वों का पालन करना आवश्यक माना है। “सभी दलितों को धर्म या जाति के पचड़े में न पड़कर ऐसी विचारधारा ऐसे दर्शन को अंगीकार करना होगा, जिससे समाज में समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे का आविर्भाव जाति, लिंग नस्ल, धर्म, संप्रदाय भेद को भुलाकर हो सके।”¹⁰

सदियों से संपन्न वर्ग द्वारा साधनहीन दलित, पिछड़े समाज का शोषण एवं उत्पीड़न होता रहा है। स्वतंत्र भारत के संविधान में सभी भारतीय नागरिकों के लिए समान न्याय की व्यवस्था की गई है। इस संदर्भ में रघुवीर सिंह के ‘आक्रोश’ उपन्यास की पंक्तियां प्रस्तुत हैं, “संवैधानिक अन्याय के प्रति भारत वचनबद्ध है। यदि गाँव में मनुस्मृति आधारित विषमता मूलक, मत्स्य न्याय जैसी अवधारणा और मनोवृत्ति सवर्ण समाज में दलित अछूतों के प्रति है तो उसका प्रतिकार वे संवैधानिक न्याय के मूल दर्शन, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय संसद और सरकार के दरवाजे खटखटा कर सकते हैं।”¹¹

निष्कर्ष :-

भारतीय संविधान प्रत्येक भारतीय नागरिक के जीवन जीने की दिशा निर्धारित करता है। हमारे संविधान में सामाजिक संरचना के अनुसार सभी जाति, धर्म, स्थल के नागरिकों को विकास के समान अवसर मिलने की व्यवस्था है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टि से राष्ट्र में समानता लाने का प्रयास हुआ है। भारतीय संविधान समता, स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय, मानवता आदि मूल्यों की सीख देता है। डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी की विचारधारा से प्रभावित डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी के ‘छप्पर’, मोहनदास नैमिशराय जी के ‘मुक्तिपर्व’, सत्य प्रकाश जी के ‘जस तस भई सवेर’, रघुवीर सिंह के ‘आक्रोश’ आदि हिंदी दलित उपन्यासों में समानता, स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय, मानवता आदि जैसे संवैधानिक मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। संवैधानिक मूल्यों के कारण भारतीय नागरिक सुरक्षित जीवन जीते हुए स्वयं के विकास के साथ-साथ अपने समाज एवं राष्ट्र का विकास कर सकते हैं। इसलिए हर भारतीय नागरिक को संविधान के अनुसार प्राप्त हुए मूल अधिकारों का उपभोग लेते हुए कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है।

सन्दर्भ संकेत :-

1. छप्पर - डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 40
2. वही, पृ. 118
3. मुक्तिपर्व - मोहनदास नैमिशराय, पृ. 38
4. जस तस भई सवेर - सत्यप्रकाश पृ. 103
5. छप्पर - डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 64 - 65
6. वही, पृ. 65
7. मुक्तिपर्व - मोहनदास नैमिशराय, पृ. 28
8. वही।
9. वही, पृ. 38
10. आक्रोश - रघुवीर सिंह, पृ. 265
11. वही, पृ. 264

गिरिराज किशोर के उपन्यास में लोकतंत्रिक मूल्य की समीक्षा।

प्रा.बाळासाहेब संभाजी कावळे

राजर्षी शाहू कला वाणिज्य व विज्ञान
महाविद्यालय पारध.ता.भोकरदन.

इसमें कोई संशय नहीं की स्वाधिनता आन्दोलन की उपज है संविधानिक मूल्य जिसको हिन्दी भाषा अपने आप में समायी हुई है। जिस समय अंग्रेजी शासन से मुक्ति की भावना देशवासीयों के मन में जगी उसे जलाने और जोड़ने का काम हिन्दी भाषा ने ही किया इसी कारण संविधान सभा में लंबी चली बहस के बाद हिन्दी को 14 सितम्बर 1949 को भारत की राजभाषा घोषित कर दिया। हम सरलता से कह सकते हैं हिन्दी भाषा में लिखी गया रचना को हिन्दी साहित्य कहते हैं। जिसमें शुरू से ही संविधानिक मूल्यों को देखा जा सकता है, भक्तिकालीन साहित्य जिसका प्रमाण है।

हिन्दी भाषा में संवैधानिक मूल्य को समझना है तो मूल्य शब्द को जानना होगा। मूल्य शब्द वास्तविकता में सभी भाषा एवं सामाजिक शास्त्र में प्रचलित होकर इसका प्रारंभिक उपयोग नितिशास्त्र में मिलता है, जो शाश्वत शिव तत्व को परिभाषित करता है। जिसका अधिकाधिक उपयोग अर्थशास्त्र में होकर बाजार दर के रूप में प्रचलित है, आदर्श, प्रेरणा, अनुशासन, प्रतिमान, नियम आदि अर्थ के रूप में उपयोग किया जाता है। वूड्स के अनुसार-“मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत हैं। मूल्य केवल मानव व्यवहार की ही दिशा निर्धारित नहीं करते बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं। मूल्यों में केवल यही नहीं देखा जाता है कि जो कुछ है वह सही है या गलत।”¹ डॉ. मुखर्जी के अनुसार-“किसी भी समाज में सभी मूल्य स्वीकार नहीं किए जाते। मान्यताएं व परिस्थितियां जिस प्रकार की होंगी, उसी प्रकार मूल्य की स्वीकृति भी होगी।”²

जहाँ हम साहित्य में संवैधानिक मूल्य की खोज कर रहे हैं वही साहित्य के जानकार भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकरजी ने सन 1932 में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुये साहित्यकारों की समाज पुनःनिर्माण में उनकी आवश्यकता को अधोरेखित करते कहा है-“मुझे देश के लिये इंजिनियर चाहिए, डॉक्टर चाहिए, वकील चाहिए परन्तु सबसे अधिक आवश्यकता मुझे साहित्यकारों की है क्योंकि समाज अगर सृजनशील बनाना है समाज की पुनःरचना करके उसे शोषण मुक्त करना है, उसकी धारणा समाज के नींव पर खड़ी करनी हो तो साहित्यकारों की जरूरत होती है।”³ देश को अंग्रेजों से लड़कर जो स्वतंत्रता मिली वो राजनैतिक थी, सामाजिक स्वतंत्रता एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है और जिसे संवैधानिक मूल्यों से ही सबके लिये सुनिश्चित किया जा सकता है। भारत में प्रचलित मनुवादी वर्णव्यवस्था व्यक्ति कि आर्थिक स्वतंत्रता को बाधित करती थी जिससे व्यक्ति काबिल होने के बावजूद भी अन्य काम नहीं कर पता था, जिससे श्रम का अवमूल्यन होकर सामाजिक विषमता को बढ़ावा मिला।

यहाँ हम हिन्दी के जानेमाने हस्ताक्षर गिरिराज किशोर के उपन्यासों में संवैधानिक मूल्यों का अध्ययन करेंगे। वैसे तो कहानी गद्य नाटक इन सभी विधाओं में इन्होंने अपनी लेखनी चलाई लेकिन हम उनके

उपन्यासों का ही चिकित्सक परिक्षण करेंगे जो संवैधानिक मूल्य को दर्शाता है। गिरिराज किशोरजी का वक्तव्य उनके भारतीय संविधान के मूल्य अभिव्यक्ति स्वतंत्रता को अपने आपमें गहराई से समाई हुई है। “सख्त से सख्त बात शिष्टाचार के आज घरे में रहकर भी कही जा सकती है। हम लेखक हैं। शब्द ही हमारा जीवन है और हमारी शक्ति भी उसको बढ़ा सके तो बढ़ाये, कम न करें। भाषा बड़ी से बड़ी गलाजत ढंक लेती है।”

गिरिराज किशोरजी की जीवन परतों कि उधेड़बुन जब हम करेंगे तो पता चलता है कि संवैधानिक मूल्य व्यक्ति की प्रतिष्ठा के संदर्भ में उन्हें स्वयं कितना संघर्ष झेला है जो उनके साहित्य में हर जगह प्रस्फुटित होता दिखाई देता है जिसका जिक्र वो एक इंटरव्यू में करते दिखाई देते हैं। “देखिये जब मैं आई.आई.टी. गया था तो दो बातें थी। एक तो मैं हिंदी का आदमी था दूसरे मैं नन टेक्निकल। तो वहाँ के लोगों ने शुरू में मुझे बिल्कुल ‘वेलकम’ नहीं किया। बल्कि विरोध किया और उसके कारण मुझे तमाम कष्ट उठाने पड़े। एक और बात थी कि मेरा लगाव वहाँ के छात्रों तथा दूसरी तीसरी श्रेणी के कर्मचारियों (मिडिल लेवल मैनेजमेंट) से ज्यादा था। जिसे वहाँ के ‘टाप लीडर्स’ या फैकल्टी नापसंद करती थी। मेरे सामने एक बड़ा सवाल था (जैसा फिजिक्स के प्रोफेसर डायरेक्टर वेंकटेश्वर लु कहते भी थे) कि ये प्रोफेसर जो विदेशों में रहते हुये अपना सारा काम खुद करते हैं वे यहां चपरासियों को लेकर लड़ाई करते थे। इसी सब को लेकर वहाँ फैकल्टी से कभी कभी कहाँ सुनी, तनाव हो जाता था। सस्पेंड भी हुआ मैं। मुकदमा लड़ना पड़ा। हाईकोर्ट से बाद में जीता मैं बहाल हुआ। डायरेक्टर को तथा चेयरमैन थापर को इस्तीफा देना पड़ा। तमाम कष्ट के बावजूद मैंने प्रयास किया कि इंस्टीट्यूट को नुकसान न होने पाये।”⁴

गिरिराज किशोर भले ही जमीनदार परिवार से हो लेकिन उनका साहित्यिक मन अपने परिवेश के सामाजिक कुप्रथा, उत्तरप्रदेश के सामाजिक जीवन में पिछड़ों के प्रति किया जानेवाला अमानविय व्यवहार को अपने आप साहित्य की लेखनी से सामाजिक मानसपटल पर उकेरने को आमादा है। ढाई घर इस उपन्यास में सामाजिक परिवेश विशद करते हुए वो लिखते हैं “बड़े राय फारसी, अंग्रेजी और उर्दू अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने एन्ट्रेस तक पढ़ा था। अंग्रेजों में बैठते थे। सुट पहनते थे। लेकिन न शराब पीते थे और न खाना खाते थे। गांधीजी से उनकी नाराजगी का एक यह कारण भी था। कभी जब क्लब में या रईसों के यहाँ डिनर होता था तो हलवाई का बना देशी खाना एक पण्डित उनके लिए अलग से लगा देता था। पीने का पानी भी कलई के बर्तनों में तैलिए से ढककर अलग मेंज पर रख दिया जाता था। इन सब बातों को वह पूरे विश्वास के साथ स्वीकार करके चलते थे कि ऐसा ही हो रहा है। क्लब में मुसलमान भी नौकर थे, ईसाई भी थे और दूसरी जातों के भी थे। पर उनके लिए ब्राह्मण का लडका रखा गया था। उस जमाने में यह कोई नयी बात नहीं थी। हिन्दुओं की खास बात थी। इसका नतीजा था कि दूसरे धर्मा और जातियों के ऐसे लोग जिनका आपस में खान पान था आगे पीछे हँसकर कहते थे कि हम क्या करें, हरी राय साहब को हमने तो अच्छत बनाया नहीं, उन्होंने अपने आप ही अपने को अच्छत बना लिया। बड़े राय जैसे अनेक लोग ऐसे थे जिनकी जिंदगी में छुआछूत एक खास जगह रखती थी। मैं भी तब उसमें विश्वास करता था।”⁵ दलित होने का दशं उन्होंने भले ही सहा ना हो लेकिन अपने परिवेश में जो दलित जीवन की जो दशा उन्होंने देखी उसे काफी सशक्त तरीके से साहित्य में उतारने का काम किशोरजी ने किया जो संवैधानिक मूल्य की को दर्शाता है।

भारतीय संविधान में मार्गदर्शक तत्व का प्रावधान है और इसके बारे में कहा जाता है कि ये पूरी तरह गांधी दर्शन से प्रेरित होकर समाज देश कि विकास रूपरेखा को इसमें अंतरनिहित किया गया है। जिसका प्रभाव उपन्यासकार गिरिराज किशोरजी के साहित्य में भी दिखाई देता है। इस बारे में वो साक्षात्कार में पूछे गये सवाल पहला गिरमिटिया लिखने के पहले और गांधी के बारे में आठ साल शोध करके इसे लिखने के बाद आपने में कितना अन्तर महसूस किया? इस बारे में बताते हैं, “देखिये मैं आपको एक बात सच बताऊं कि अगर मैं आई.आई.टी न गया होता तो शायद पहला गिरमिटिया न लिख पाता वहाँ मैंने जिस हयूमिलियेशन व कठिनाइयों का सामना किया तो कहीं न कहीं मुझे गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में जो अनुभव किये होंगे (हालांकि न मेरी गांधी से कोई बराबरी है न मैं वैसी स्थिति में हूँ) उनके बारे में सोचने की मानसिकता बनी। मुझे लगा कि हमें इस बात को समझना चाहिये कि ऐसी कौन सी शक्ति थी जिसने इस आदमी को महात्मा गांधी बनाया।

गिरिराज किशोर स्वयं मानते हैं-“स्थितियों से असन्तुष्ट न होना या लेखन की मानसिकता और स्थितियों में तालमेल न बैठना ही तो सृजनात्मक लेखन के लिए सर्वाधिक उर्वर भूमि है। कोई भी लेखक तभी लेखक है जब वह अपने चारों ओर की स्थितियों से तालमेल नहीं बिठाता। जैसे ही वह सन्तुष्ट हो गया उसका लेखन भी समाप्त हो गया। दर असल असन्तोष, संघर्ष और परिस्थिति को बदलने की ललक ही उसे लेखक बनाती है।” 6 सदीयों से तिरस्कार और अपमान सहता दबा कुचला समाज अब संवैधानिक मूल्यों को साहित्य में मुखर कर रहा है। उसी तिरस्कार और अपमान से एक सामान्य आदमी कितनी उर्जा प्राप्त कर सकता है इस का उदाहरण गिरिराज किशोर उनकी रचना पहला गिरमिटिया रचना के संदर्भ में देते हैं “एक आम डरपोक किस्म का आदमी जो बहुत अच्छा बोलने वाला भी नहीं था। वकालत में भी असफल। इतना फैशनेबल आदमी। वह इतना त्यागी और तिरस्कार से उर्जा ग्रहण की जिसके कारण वह अपने को इतना काबिल बना पाया। इससे मुझे भी अपने को प्रेरित करने की जरूरत महसूस हुई।” 7

पूरे देश ने देखा और सराहा भी कि गांधीजी के त्याग सेवा से वो महात्मा या राष्ट्रपिता के पद पर पहुँचे हैं लेकिन उनसे भी ज्यादा किसी ने त्याग और भोगा है तो वो कस्तूरबा है जो अपने बालविवाह से लेकर अपने अंतिम क्षणों तक बहुत कुछ खोकर भी अपना स्वाभिमान आत्मसम्मान बचाये हैं। आश्रम के नियम तोड़ने पर मणिलाल को बापू सख्त सजा सुनाते हैं कि वो मद्रास जाकर अपनी पहचान छीपाकर एक साल रहे जिसे सुनकर कस्तूरबा गांधीजी से भिड़ जाती हैं और कहती हैं-“मानसिकता बदलनी जरूरी है, पश्चाताप से बदले या दंड से...”

आपने एक बेटे और उसके परिवार को कलकत्ता में भूखा मरने के लिए छोड़ दिया, दूसरे को मद्रास में... बिना पैसे धूले के भूखा मरने को भेज दिया। मुझे आपके पास रहना है। मेरा इतना ही कहना कि नियमों को बेडियाँ न बनाओ, जिसे सजा मानकर सहन करने या तोड़ने के लिए मजबूर हो जाए।” 8 राष्ट्रपिता को बच्चे जैसे धमकाकर मत परिवर्तन करने का काम एक सशक्त व्यक्तित्व की महिला ही कर सकती है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि गिरिराज किशोर के साहित्य में संवैधानिक मूल्य को प्रतिष्ठा मिली है जो मानविय संवेदना का परिचायक है। जिसके संबंध में उनके विचार काफी साफ हैं-“साहित्य मानव को सही अर्थों में जीना सीखाता है और जीवन की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त और सर्वोत्तम माध्यम साहित्य है। दूसरे

शब्दों में समाज की अभिव्यक्ति है। समय समय पर इन मूल्यों का प्रतिफलन साहित्य में व्यापक धरातल पर हुआ है।”9 जो वास्तविकता से काफी मेल खाती है।

संदर्भसूची-

- 1.(वही पृ.16)
- 2.(वही पृ.14)
- 3.(डॉ.अम्बेडकर,संपूर्ण वाङ्मय, खंड 5पृ.178)
- 4.(विकिपीडिया गिरिराज किशोरजी से बातचीत कानपुरनामा)
- 5.(ढाई घर गिरिराज किशोर पृ.16)
- 6.(गिरिराज किशोर,लिखने का तर्क,पृ.91)
- 7.(विकिपीडिया गिरिराज किशोरजी से बातचीत कानपुरनामा)
- 8.(बा उपन्यास, गिरिराज किशोर पृ.202)
- 9.(वही पृ.151)



अधिकार एवं समता की प्रखर दहाड - 'गूंगा नहीं था मैं'

प्रो. अशोक मर्डे

यशवंतराव चव्हाण कॉलेज

तुलजापूर

मराठी के साथ साथ हिंदी में भी प्रचुर मात्रा में दलित साहित्य लिखा गया है। दलितों पर हुए अन्याय अत्याचार, छुआछूत, उन्हें उनके अधिकारों से दूर रखना आदि का प्रस्फुटन दलित साहित्य में देखा जा सकता है। भारतीय आजादी के बाद भी कुछ वर्षों तक स्वतंत्रता समता और बंधुत्व को इस विचारधारा से दलितों वंचित रहना पड़ा। इसी का अंकन दलित साहित्यकारों ने अपने साहित्य में किया है।

दलित साहित्य संबंधी विचारों को लेकर जयप्रकाश कर्दम सजग प्रहरी के समान लिखते आये हैं। वे लिखते हैं, यह सही है कि दलित साहित्य नकार का साहित्य नहीं है किंतु उसका नकार उन्हीं व्यवस्थाओं विश्वासों और मान्यताओं के प्रति है जो समाज और राष्ट्र के हित में और अनोचितपूर्ण और अनुपयोगी हैं। चूंकि वह अनुपयोगी और अशुभ है इसलिए उनका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य केवल वही है जो शुभ है। समता, स्वतंत्रता और भातृत्व किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए सर्वोच्च शुभ हो सकते हैं इसलिए सर्वोच्च मूल्य है। दलित साहित्य इन मूल्यों को स्वीकार करता है।¹ दलित साहित्य में मानवीय मूल्यों को लेकर काफी चर्चा हुई। अधिकारों का हनन एवं संवैधानिक मूल्यों के प्रति भी दलित साहित्य सजग प्रहरी के समान उभर आया है। दलित साहित्य के बारे में जयप्रकाश कर्दम जी आगे लिखते हैं, 'दलित साहित्य गोरी चमड़ी और आकर्षक नैन नक्श वाली कुंठित गर्वित या फूहड़ स्त्री नहीं है। वह सामान्य रूप रंग कि वह सुघड़ सुशील औरत है जो सबकी सेवा सम्मान करती है, सबको प्यार देती है। उन्हीं आंतरिक गुणों के कारण उसका व्यक्तित्व पुष्प की भांति खिला रहता है। यही उसका सौंदर्य है और यह सौंदर्य ही स्थाई है क्योंकि उपयोगी है।'²

दलित साहित्य की अनेक विधाओं के साथ साथ दलित कविता भी काफी महत्वपूर्ण रही है। दलित कविता के अनेक हस्ताक्षरों में जयप्रकाश कर्दम भी प्रमुख कवि के रूप में उभरे हैं। जो विषयवस्तु दलित साहित्य की अन्य विधाओं में रही है वहीं विषयवस्तु दलित कविता की भी रही है। समता के पथ पर चलने और उसका समर्थन करने का काम दलित साहित्य करता है। दलित कविता भी इसी उद्देश्य को लेकर लिखी गई है। दलित कविता के उद्देश्य के बारे में जयप्रकाश कर्दम जी लिखते हैं, 'दलित कविता इलीट क्लास या यूनिवर्सिटीज में बैठे अकादमिक लोगों के लिए नहीं है बल्कि उस अंतिम व्यक्ति के लिए है जो शहरों में और शहरों से कोसों दूर गांव में स्वयं को इस देश की भट्टी में झोकर भी अमानवीय यातनाओं का शिकार है। जो प्रायः अशिक्षित या अर्थ शिक्षित है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए उसे तैयार करना और उसमें आत्म सम्मान और आत्म गौरव की भावना विकसित करना ही इन कविताओं का उद्देश्य है।'³

जयप्रकाश कर्दम जी का काव्य संग्रह 'गूंगा नहीं था मैं' है। इस कविता संग्रह में किले, आरक्षण, तुमने कहा, वर्णवाद का पहाड़, दासता, बेमानी है आजादी, मेरी चाह, अस्वीकृति, शुक्र है तू नहीं है, दमन की दहलीज पर, गूंगा नहीं था मैं, तुम कौन, मेरे अधिकार कहां हैं, लाठी, कलिया की मौत, अंबेडकर की संतान, आज का रैदास, लालटेन, ओ नए साल, धर्म ग्रंथों को आग लगानी होगी, प्रदूषण, दरख्त, सूरज, क्षणिकाएं आदि

कविताएं संकलित हैं। इस संकलन की कविताओं में दलितों का आपने अधिकारों के लिये आक्रोश प्रस्फुटित हुआ है।

‘किले’ कविता में जयप्रकाश कर्दम उन किलों की बात कहते हैं जो सेठ ठाकुर आदि ने बनाये हैं। श्रमिक, दीन, दलित के खून से यह किले बने हैं इन किलों के निर्माण के पीछे एक भयावह दास्तान है। कवि क्रुद्ध होकर कहते हैं -

‘जी करता है
ध्वस्त कर दूँ इन किलों को
चिंदी चिंदी कर दो इनका वजूद
की शांत हो जाए
मेरे अंतर में धधकती हुई
अपमान की आग और
मिल जाए
मेरे मन को शकून’⁴

कवि की छटपटाहट वेदना अत्याचार को रोकना चाहती है। लेकिन अहिंसा की विचारधारा के कारण उनके हाथ बंधे हैं। कवि आगे यह भी इशारा देते हैं कि अगर इसी तरह दमन जारी रहेगा आज नहीं तो कल उनके हाथ हरकत में आ सकते हैं।

आरक्षण कविता में कवि कहते हैं कि सवर्णों को दलितों का आरक्षण खटकता है। दलितों की उपलब्धि पर उन्हें बुरा लगता है। गैर सरकारी संस्थानों में सवर्णों का एकाधिकार है। ऐसे में आरक्षण का विरोध क्यों? इस तरह का सवाल भी कवि करते हैं। क्या कैपिटेशन फीस देकर एडमिशन लेना उचित है? आरक्षण का विरोध करने वालों से कवि क्रुद्ध होकर लिखते हैं-

‘नहीं, तुम को सारा मक्खन
और मुझको छाछ भी नहीं
यह सब नहीं चलेगा
अब हर क्षेत्र में होगी
समान रूप से हिस्सेदारी
शासन प्रशासन से लेकर
मैला ढोने, जूती गांठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बाटनी होगी समानता’⁵

‘तुमने कहा’ यह कविता सवर्णों द्वारा दलितों को परम पद दिलाने और उसके बदले अपना स्वार्थ साधने वाले स्वार्थभाव को दर्शाती है। जीवन की उपलब्धि परम पद है कहकर या दीन दलित को ईश्वर की सच्ची संतान कहकर अथवा दरिद्र नारायण या हरिजन कहकर उन्हें बहलाया फुलाया गया। उसी प्रकार कर्म जितना छोटा करता है वह उतना ही बड़ा होता है। जो दूसरों की सेवा करता है, वह धर्म का काम करता है।

पुण्य काम का काम करता है स्वर्ग में जाता है | उसी प्रकार नर सेवा नारायण सेवा कही जाती है। इस प्रलोभन से सवर्णों की सेवा हजारों साल से दीन दलित करते आ रहे हैं | कवि जयप्रकाश कर्दम जी दलितों को इस कविता में संदेश दिलाना चाहते हैं कि मुफ्त की खाना छोड़ो, मेहनत से कमाओ |

‘वर्णवाद का पहाड़’ इस कविता में दलितों को पढ़ाने वाले उस अध्यापक की पोल खोलने की कोशिश की गई है जो अनेक पीढ़ियों को पढ़ाने का काम करता आ रहा है | दलितों की कई पीढ़ियां उनसे पढ़ाई कर चुकी है फिर भी ऐसे अध्यापक हैं जो दलितों से सेवा लेते हैं, उनसे बाकी काम करा लेते हैं लेकिन जब पानी पीने के लिए पीतल के लौटे को वे कभी दलितों का हाथ लगने नहीं देते हैं | ऐसे मास्टर जिन्होंने दलितों की तीन तीन पीढ़ियों को पढ़ाया है, प्रगति का रास्ता दिखाया है | लेकिन वह खुद समता के मार्ग पर नहीं चल सके हैं | ऐसे अध्यापक कभी वर्ण और जाति से ऊपर नहीं उठ पाए हैं | ‘बेमानी है आजादी’ इस कविता में कवि जयप्रकाश कर्दम जी स्वराज्य को बेईमानी कहते हैं | आज भी दलितों को सवर्णों के सामने जमीन पर बिठाया जाता है | छोटे-छोटे बच्चों तक को बाप कहकर गुहार लगाकर बोलना होता है | छोटे से कर्ज के बदले कई पीढ़ियों की जिंदगी साहूकार के नाम लिखकर देनी होती है | ऐसे स्वराज में दीन दलित गुलामों सी जिंदगी जी रहा है | दलितों को बस रोटी और सम्मान चाहिए |

जयप्रकाश कर्दम ‘मेरी चाह’ कविता के माध्यम से समता के राजपथ की कामना करते हैं | उन्हें भाग्य और कर्म पर भरोसा नहीं है, क्योंकि अज्ञान भोलेपन के कारण दीन दलित पीड़ा भुगत रहे हैं | वह निस्तेज जिंदगी जी रहे हैं | इसलिए कवि एक नए उदय की कामना करते हैं वे लिखते हैं -

‘मैं भोर के सूरज सा
उदय होना चाहता हूं
अज्ञान के अंधेरे से
निकलना चाहता हूं
बहुत भटका हूं
असमानता और अज्ञान की
गलियों में
मैं समता के राजपथ पर
चलना चाहता हूं।’⁶

‘अस्वीकृति’ कविता में एक दलित महिला जो किसी सवर्ण के साथ रहना चाहती है | उसके साथ ब्याहना चाहती है, लेकिन उसे मालूम नहीं है कि उसके साथ धोखा होगा | उसका यह भ्रम है कि वह उसे प्रेम करता है | वह उसे कदापि दुल्हन बनाकर अपने घर नहीं ले जाएगा | वह उसके शरीर से खेलेगा, प्यार का स्वांग रचेगा | लेकिन दुल्हन बनाकर कभी अपने घर नहीं ले जाएगा | वह उसे रखेल बनाकर रख सकता है | वह उसकी भावनाओं से खेलेगा लेकिन वही स्त्री जब अपने अधिकारों की बात करेगी तब उसके समर्पण और त्याग के इनाम में उसका गला रेत कर किरासन से जलाकर तंदूर में दून कर दिया जाएगा | सभी को इस बात का विश्वास है कि दलित स्त्रियों को सवर्ण कदापि स्वीकृत नहीं करेंगे | वह किसी दलित स्त्री को हमेशा के

लिए दलित मानकर ही उसके साथ व्यवहार करेंगे। अस्वीकृति कविता में इसी समझ की ओर कवि ध्यान दिलाते हैं।

‘दमन की दहलीज’ कविता में दलितों पर होते अन्याय अत्याचार को विशद रूप में प्रस्तुत किया है। कवि बारीकी से उन अत्याचारों को इस कविता में चित्रित करते हैं। कविता के अंत में दलित अपनी मुक्ति अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के लिए पुनः अत्याचारियों को ललकारता है। जिन्होंने उस पर वर्षों से अत्याचार किए हैं। ‘गूंगा नहीं था मैं’ इस कविता में स्कूल के दलित लड़कों पर सवर्णों द्वारा होते अत्याचारों को दर्शाया है। अगर दलित छात्र सवर्ण छात्रों के खिलाफ कुछ बोलेगा तो उसके परिणाम बहुत बुरे हो सकते थे। इसलिए गूंगा न होकर भी दलित छात्रों को गूंगा रहना पड़ा। अगर वह कुछ बोल दे तो सारे सवर्ण एक होकर दलित छात्रों पर हमला बोल देते। इससे दलित छात्रों के ही हाथ पैर टूटते और झगड़ा करने के जुर्म में उन्हें ही स्कूल से निकाल दिया जाता। इसलिए अपने आप पर होने वाले अन्याय अत्याचार को सहते हुए स्कूल की शिक्षा पाने वाले बहुत सारे युवक हैं।

‘अक्करमासी’ कविता उस दलित स्त्री के शीलवान होने की बात करती है। जो किसी पाटिल के द्वारा गर्भवती होने के बाद भी अपनी व्यथा को ढोते हुए अपने बेटे को जन्म देती है। अगर वह व्यभिचारिणी होती तो अपने बेटे को कदापि जन्म न देती। ‘मेरे अधिकार कहां हैं?’ इस कविता में दलित और सवर्ण के बीच के फर्क को दर्शाया गया है। एक और सुखी संपन्न जीवन जी रहा है तो दूसरी ओर अभावग्रस्त जीवन किसी के नसीब में है। कोई कोठी बंगले में रहता है, एसी कूलर में सोता है। शासन उसके कब्जे में है, थाना तहसील उसके है। तो दूसरी ओर श्रम की तपती भट्टी में जलता रोटी के लिए मोहताज व्यक्ति को धर्म का झांसा देकर उसे बहलाया फुसलाया जा रहा है। जयप्रकाश जी इस कविता में अपने मौलिक अधिकारों को पूछते हैं -

‘उत्पीड़न की जंजीरों में
यूं कसा फंसा सदियों से मैं
मुर्दा हूं न ही जी सकता
मेरे मौलिक अधिकार कहां हैं।’⁷

‘कलिया’ की मौत कविता उस स्त्री की करुण कहानी है, जो युवावस्था में ही पति की मौत के पश्चात अपने दो वर्ष के छोटे बच्चे को पाल पोस कर बड़ा कर देती है। उन्हें पढ़ाई के लिए शहर भेजती है। बच्चा अच्छी नौकरी भी करने लगता है लेकिन अपनी मां को साथ ले जाने में वाह कतराता है। ऊंची जाति के लोग वहां रहते हैं, इसलिए अपनी मां को वहां नहीं ले जाता है। इस तरीके से दलित युवकों की मानसिकता का अंकन इस कविता में हुआ है। ‘अंबेडकर की संतान’ कविता में हरिया, हरखू और मंगल जैसे दलित युवकों को जुल्म और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने पर उन्हें दबाने की बात कही है। ‘आज का रेदास’ कविता किसी चमार जो जूते गांठता है, उसका बच्चा पूसन पढ़ना चाहता है, ऊंची पोशाके पहनना चाहता है लेकिन पूसन के नसीब में यह सब नहीं है।

‘लालटेन’ कविता एक मां के समर्पण भाव की कविता है। अपने बच्चे पढ़े लिखे इसलिए वह लालटेन का इंतजाम कर देता है। बड़े होकर उसके बेटे अनेक पदों पर विराजमान होते हैं। अपने अपने परिवार में

व्यस्त हो जाते हैं | लेकिन जिस माता ने सब के जीवन को सवेरा दिया था उस मां की जिंदगी में आज भी अंधेरा है | 'ओ नए साल' कविता में दलितों की विडंबना प्रकट हुई है | प्रत्येक की कुछ ना कुछ समस्या है, शोषण की कहानी है | नए साल को पूर्वजों की राह पर चलने की अपील की गई है | कवि कहता है –

ओ नए साल !
यदि तू यह सब नहीं कर पाया
दलितों के दमन और शोषण को
नहीं रोक पाया
तो याद रख
अपने पूर्वजों की तरह
मानवता के हनन के कलंक से
तू भी नहीं बच पाएगा !⁸

इसप्रकार जयप्रकाश कर्दम दलित संवेदना के विविध स्वरों को वाणी देते हैं | चाहे कविता हो या अन्य विधा का दलित साहित्य उसका उद्देश्य प्रामाणिक ही रहा है | वे लिखते हैं, 'दलित साहित्य केवल वही बात करता है जो मानव के लिए हितकर है तथा समाज और राष्ट्र की एकता और मजबूती के लिए आवश्यक है | दलित साहित्य बौद्धिक विकास या मनोरंजन का साधन नहीं सामाजिक परिवर्तन की एक मुहिम है, दलितों को उनकी अस्मिता की पहचान कराने का एक माध्यम है | इसलिए इसमें सरस्वता का होना अनिवार्य नहीं है | दलित समाज एक भूखा नंगा समाज है | भूखा पेट शाब्दिक रस का आनंद नहीं ले सकता | उसे रोटी का उपाय चाहिए, अपमान और जिल्लत से उबरने की शक्ति चाहिए | रसों का आस्वादन उसे ही हो सकता है जिसका पेट भरा हो तथा मन मस्तिष्क सब प्रकार की चिंताओं से रहित हो, अपने अपमान से पीड़ित और पेट की क्षुधा से ग्रस्त व्यक्ति को नहीं | अंधेरी कोठरी में कैद व्यक्ति को स्वादिष्ट व्यंजन नहीं मुक्ति का मार्ग चाहिए |⁹ कर्दम सदैव दलित संवेदना के पक्षधर रहे हैं | दलित वेदना की अनुभूति प्रत्यक्ष उन्होंने भुगती है | श्रेष्ठ दलित साहित्य उसे ही कहा जाता है जो दलितों के बीच रहकर, दलित जीवन का एक भाग बनकर, उनसे एकाकार होकर या उन्हीं में से होकर लिखा जाता है | कर्दम की कविता दलित साहित्य की कसौटी पर खरी उतरती है |

संदर्भ -

1. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 8
2. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 6
3. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 8
4. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 14
5. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 18
6. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 30
7. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 47
8. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 73
9. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 7

हिंदी उपन्यास साहित्य में नव संवैधानिक मूल्य : शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलंबन

श्री. संतोष शिवराज पवार

शोधछात्र

महात्मा फुले महाविद्यालय, किनगाव,
ता.अहमदपुर, जि. लातूर (महाराष्ट्र)

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्थान के लिए वहाँ के सभी लोगों का शिक्षित होना महत्वपूर्ण होता है। अगर हमे समय के साथ चलना है या विश्व रंगमंच पर अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो सभी को शिक्षा का परिचय कराना होगा। भारतीय संविधान ने आज सभी वंचित वर्ग को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराए हैं।

पूर्व इतिहास देखा जाए तो नारी, शूद्र और पिछड़ा समुदाय शिक्षा से वंचित रखा गया था इसलिए उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ी हुई थी। शिक्षा पर केवल उच्च वर्ग का अधिकार था किन्तु भारतीय संविधान ने सभी वंचित समुदाय को शिक्षा का प्रावधान दिया। इसी कारण आज नारी, दलित, आदिवासी, किन्नर, कृषक आदि हाशिए पर का समाज शिक्षित हो कर आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है। नारी शिक्षित हो कर नौकरी या लघुउद्योग कर रही है। नतीजा वह पूरी तरह आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन रही है। उसका परावलंबत्व शोषण का मुख्य कारण था। दलित, आदिवासी, किन्नर आदि समुदाय के लोग भी शिक्षा प्राप्त कर के नौकरी या अन्य उद्योग कर रहे हैं परिणाम स्वरूप सभी वर्गों में आर्थिक सुधार आ रहा है। शिवरानी पुहाल लिखती हैं- "घायल है, पीड़ित है मानवता सदियों से उठाओ उनके हित में कलम हाथियार की तरह।"¹

भारत में स्वतंत्रता प्राप्त होने से अधिकार की भावना का विकास हुआ। अब समाज में किसी की कृपा पर जीने की स्थिति समाप्त हो गई। संवैधानिक दृष्टि से सबको आर्थिक रूप से विकास करने का समान अधिकार प्राप्त हुआ। यह निश्चित था कि खेती किसान करता था किन्तु खेत जमींदारों के थे। जमींदार उनसे मनमानी लगान वसूल करते थे। जमींदार की इच्छा पर किसानों को जीना पड़ता था, वे जब चाहते थे तब किसानों को बेदखल कर के उनकी जमीन निकाल लेते थे और किसान बेसहारा हो जाते थे। ऐसी स्थिति में किसानों को जमींदारों के तमाम अत्याचारों को सहते हुए उनकी कृपा का पात्र बनना पड़ता था। भारत को स्वतंत्रता मिलते ही भारत सरकार ने 'जमींदारी उन्मूलन कानून' की घोषणा कर दी। जिसमें यह व्यवस्था की गई कि जमीन उसके जोतने वाले की है और किसान सीधे जमीन का मालिक है। इस कानून के बन जाने से किसानों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ और उसमें एक स्थिरता आई जो इसके पूर्व नहीं थी। जमींदारों के अत्याचारों का युग समाप्त हो गया। जमींदारी काल में किसानों पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन प्रेमचन्द के उपन्यासों में है जो उस काल की सच्चाई है।

स्वतंत्रता के पूर्व गांधीजी ने भारत की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए जो योजना बनायी थी वह कृषि तथा कुटिर उद्योगों पर आधारित थी पर सरकार ने यूरोपीय औद्योगिक प्रगति की नकल और उसके आधार पर बड़े-बड़े कारखानों और मिलों को प्राथमिकता दी जिसके कारण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण हुआ अपितु मिल मालिकों द्वारा मजदूरों का अगणित शोषण होता गया जिसका नतीजा वर्ग संघर्ष निर्माण हुआ। स्वतंत्रता के बाद के उपन्यासों में उस स्थिति का वर्णन आया है। 'मनुष्य के रूप' उपन्यास में झाड़वर कुदंन सिंह अपना रोष व्यक्त करता नजर आता है। वह कहता है-"सौ आदमी इकट्ठे हो जाएं तो पहाड़ को धकेल दें कम्पनी साली तो हमारी कमाई खाती है।"² दुनिया में साम्यवादी दल की स्थापना इसी वर्गवादी चेतना के आधार पर हुई है। सत्ता प्राप्त करने के लिए जिसका मुख्य स्त्रोत भुखा मजदूर है उनका बराबर यह प्रयास

रहता है कि देश में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जिसमें लोग रोटी के लिए तरसे तभी ये क्रान्ति करेंगे। 'इन्सान' उपन्यास में कमला जो साम्यवादी विचारों का प्रतीक है जो कहता है-"मिलें बन्द होनी चाहिए। भूख का चारों ओर साम्राज्य होना चाहिए। बस यही उचित समय होगा क्रान्ति के लिए। उसी समय मजदूर मिलकर इन धनपतियों का अन्त करेंगे, यह लेनिन ने कहा है, अमर सत्य है। यह भारत में होकर रहेगा।"³ स्वतंत्रता के बाद संविधान में नया कानून बनाकर मजदूरों को मिल के लाभ में हिस्सेदार बना दिया है, जो स्वतंत्र भारत की नई उपलब्धि है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में असुर समुदाय में शिक्षा से आए बदलावों को रणेन्द्र ने चित्रित किया है। सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्र में शिक्षा को प्रावधान दिया जिसके कारण वहाँ के आदिवासी बच्चे पढ़-लिख रहे हैं। रूमझुम, ललिता, एतवारी आदि शिक्षा लेकर अच्छा जीवन जीने का प्रयास करते नजर आते हैं। इस उपन्यास में बुधनी एक ऐसा पात्र है जो अपने कमाई पर परिवार को पालती है। वह समाज बन्धनों को त्यागकर सखुआपाट में हॉटेल खुलवाती है। अपनी हुशयारी और शिक्षा के दम पर अपना व्यवसाय बढ़ाती है। मास्टर साहब बताते हैं-"बुधनी की मीठी बोली, साफ-सुथरेपन की जिद्द और चेहरे का नमक सब मिलाकर ग्राहकों की भीड़ खींचती।"⁴ नारी भी अच्छी शिक्षा लेकर अपने दम पर जी सकती है यह बुधनी को देखने के बाद हम समझ सकते हैं।

प्रदीप सौरभ लिखित 'तिसरी ताली' उपन्यास में शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलंबन से किस प्रकार किन्नर समुदाय के जीवन में बदलाव आया है यह दर्शाया है। विनीत गौतम साहब का बेटा है पर उसका लिंग स्पष्ट न होने के कारण वह जैसे-जैसे बड़ा होता है वैसे-वैसे उसके बर्ताव में लड़कियों वाले गुण प्रकट होते हैं। इसी कारण उसे परिवार एवं समाज के सदस्यों द्वारा तिरस्कृत होना पड़ता था। फिर भी गौतम साहब विनीत को ब्यूटी पार्लर की ट्रेनिंग देते हैं। विनीत को बार-बार तिरस्कृत होना पड़ रहा था तब वह घर छोड़कर भाग जाता है और विनीता बनकर जिने लगता है। विनीता अपने जीवन के प्रति हार न मानते हुए अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए ब्यूटी पार्लर खुलवाती है और कुछ ही दिनों में बुलंदियों पर पहुँच जाती है। शोहरत उसकी दासी बन जाती है। विनीता जन्मजात हिजड़ा थी पर वह हिजड़ों के बिच न रहकर अपना अलग रास्ता तलाशती है और वह सफल भी हो जाती है। प्रदीप सौरभ लिखते हैं-"इस प्रकार विनीता ब्यूटी की दुनिया की क्वीन बन गई। पैसा उसके कदमों में लोटने लगा।"⁵

'तिसरी ताली' उपन्यास में ऐसे कई किन्नर पात्र आए हैं जो अपनी कमजोरियों को न नापते हुए आकाश छुने का मकसद लेकर जीवन यापन करते नजर आते हैं। जिसमें गन्धर्व महाविद्यालय में काम करने वाली डान्स टिचर मणि कलिता अपने अदम्य सहास एवं लगन के कारण वह इस मुकाम तक पहुँचती है। राजू जन्मजात हिजड़ा है फिर भी उसे हिजड़ावृत्ति से नफरत है। उसका तीसरी योनि में जन्म होने के कारण स्कूल नशीब में नहीं था फिर भी वह लैम्प पोस्ट के नीचे बैठकर पढ़ाई करता रहा। लेखक लिखते हैं-"वह हर परीक्षा पास करता गया। ग्रेजुएट हो चुका है।" कमाथीपुरा में रहते हुए एड्स और बीडी से ग्रस्त वेश्याओं तथा हिजड़ों की सेवा में जुटा रहा।"⁶

नमिता सिंह लिखित 'अपनी सलीबें' उपन्यास में ईश्वरचंद्र के द्वारा लेखिका शिक्षा का महत्व प्रकट करती है। दलित परिवार में जन्मा यह बालक शिक्षा लेकर किस प्रकार कलेक्टर बनता है इसको सहचित्र एवं वास्तविकता के साथ लेखिका ने उभारा है। बचपन में ही माँ-बाप मर जाना, बाद में पंडितजी रामचंद्र के घर रहकर शिक्षा लेना, लगन के साथ मेहनत, पढ़ाई करना और आई.ए.एस. बनना। यह सब अन्य वर्गों के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकता है।

ईश्वरचंद्र के उदाहरण से एक बात समझ में आती है कि अगर दलित, नारी, आदिवासी, किन्नर आदि वर्ग का पिछड़ापन दूर करना है तो उनको शिक्षा के आबसर उपलब्ध कराने चाहिए। यह केवल उस जाति, वर्ग की उन्नति के लिए महत्वपूर्ण नहीं है तो समाज और देश की उन्नति के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

‘मछली मरी हुई’ उपन्यास में राजकमल चौधरी ने निर्मल पद्मावत के सहारे सर्वहारा वर्ग भी अपने शिक्षा के दम पर किस प्रकार उँचाईयों को छु लेता है इसकी महता बताई है। निर्मल पद्मावत ‘पद्मावत इंडस्ट्रीज’ का मालिक, उत्तर बिहार के छोटे से गाँव का अनाथ बच्चा अपने निंतरत प्रयासों से कलकत्ता शहर में उद्योग सम्राट बन जाता है। वह किसी राजनेता या सिद्ध पुरुष पर विश्वास नहीं रखता वह केवल रात-दिन मेहनत करना जानता है। वह कहता है-“मैं इस भीड़ का हिस्सा नहीं बनूँगा”⁷

आज की पीढ़ी भाग्य पर विश्वास नहीं करती है। कर्मलेखा, धर्म, नैतिकता पर नहीं। वह ईश्वर को भी मानने के लिए तैयार नहीं है। कर्मलेख अकर्मन्यता का पाठ पढ़ाती है। नैतिकताएँ गलत कैदखाने की जैसे प्रतीत होती है। धर्म इन्सान को अन्धा बनाता है। वह मानता है अगर भगवान पर भरोसा करे तो अपनी ताकद पर अनास्था हो जाती है। इसलिए वह खुद पर जादा विश्वास करना पसंद करता नजर आ रहा है।

शिक्षा एक ऐसा शस्त्र एवं साधन है जिसके माध्यम से सारी दुनिया को जीता जा सकता है। अपने ज्ञान के कारण युगों-युगों तक अमर रहने का वरदान यह शिक्षा देती है। किन्तु यह अमृत पीने का वरदान समाज के कुछ लोगों को था। अछूत, नारी, दलित, पिछड़ा, आदिवासी, कृषक, किन्नर आदि हाशिए पर का समाज शिक्षा से दूर ही रखा गया। जिसकी परिणति यह वर्ग आर्थिक दृष्टिकोण से संपन्न नहीं हो सका। किन्तु भारतीय संवैधानिक प्रावधान के कारण आज हर एक जाति-वर्ग के लिए शिक्षा के आबसर उपलब्ध कराए हैं जिसके कारण हर एक समाज आज उन्नति करता नजर आ रहा है। हिन्दी उपन्यास साहित्यकारों ने भी अपने साहित्य कृति में इसे अधोरेखित करने का प्रयास किया है जो बदलते नव संवैधानिक मूल्यों को उजागर करता नजर आता है। विश्व में मानव धर्म की चर्चा हो रही है। सम्पूर्ण मानवता का एक धर्म है। इस प्रकार की विचारधारा बन रही है जो विश्व की स्थिति के सर्वदा अनुकूल है। हमें विश्वास एवं आशा है कि हिंदी का उपन्यासकार संवैधानिक मूल्यानुसूत लेखन करके मानव समाज को विश्वबन्धुत्व की ओर ले जाएगा।

संदर्भ साहित्य -

1. शिवरानी प्रभात पुहाल-‘दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक’ पृ.286
2. यशपाल ‘मनुष्य क रूप’ पृ.46
3. रामभजन सीताराम ‘स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में लघु मनव की परिकल्पना’ पृ.121
4. राजेन्द्र ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ पृ.29
5. प्रदीप सौरभ ‘तीसरी ताली’ पृ.117
6. वही पृ.176
7. राजकमल चौधरी ‘मछली मरी हुई’ पृ.36

मध्ययुगीन काव्य में संवैधानिक मूल्य (विशेष कवि संत कबीर)

प्रा.डॉ. अयुबखान गुलाबखान पठाण

श्री. मदनानन्द क. महाविद्यालय, मदनसुरी
ता. निलंगा, जि. लातूर.

मध्ययुग के सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक परिदृश्य पर हम यदि नजर डाले तो पाते हैं कि, इन तिनोंही क्षेत्रों में तत्कालीन परिस्थितियाँ मूल्यों के लिए तरस रही थी। जनसामान्य समाज, धर्म व राजनीति से निराश हो चुका था। "धार्मिक आडंबरों और राजनीतिक अव्यवस्थाओं तथा धर्माधता के कारण समाज का ढाँचा विश्रंखल हो चुका था।"¹ इन बिकट परिस्थितियों में तत्कालीन जनमानस के लिए आशा कि एक किरण के रूप में कबीर का अवतरण हुआ। जिन्होंने न केवल विकृत हो चुके मूल्यों को परिष्कृत किया बल्कि समाज, धर्म व राजनीति इन तिनों के लिए नये मानक मूल्यों की स्थापना की।

कबीर के काव्यद्वारा स्थापित संवैधानिक मूल्य निम्नानुसार हैं-

1) बाह्य आडंबर का विरोध:-

कबीर के समय हिंदु व मुसलमान दोनों ही धर्मों के मुखिया जनसामान्य में अनेक पाखण्डों, ब्रह्मचारों, अंधविश्वासों व कर्मकाण्डों को फैलाकर धर्म को संकीर्णता की परिधि में बाँध रहे थे। कबीर ने दोनोंही धर्मों के ठेकेदारों की पोल खोलकर बाह्य आडंबरोंका डटकर विरोध किया। कबीर ने मुर्तीपूजा, कर्मकाण्ड, तिर्थाटनसहित विभिन्न धार्मिक कृत्यों का विरोध कर समाज में व्याप्त अंधविश्वास के विरुद्ध आवाज उठाये, वे हिंदु धर्म के बाह्याडंबरों के विरोध में कहते हैं कि,

"माला फेरी, तिलक लगाया लम्बी जटा बढ़ाता है।

अंतर तेरे कुफर-कटारी, यों नही साहब मिलता है।"²

कबीरजी इस्लाम के बाह्याडंबरों पर लिखते हैं कि,

"दिनभर रोजा रहत है, राती हनत है गाय।।

यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाये।।"³

कबीर के समय मूल्यों के पतन का मुख्य कारण यह कर्मकाण्ड ही था। इसलिए कबीर ने मूल्यों की स्थापना हेतु कर्मकाण्डों का विरोध आवश्यक समझा। डॉ. रघुवंशी लिखते हैं कि, "उस समय के समाज का विघटन और उसके मूल्यों की विश्रंखलता का मूल कारण यह सारा आचार तथा कर्मकाण्ड रहा है। ऐसी स्थिती में कबीर का पण्डित तथा मुल्ला से बार-बार उनके बारे में प्रश्न करना सहज रहा है।"⁴

2) अहंकार का त्याग:-

अहंकार सभी बुराईयों की जड़ है। उसका स्वरूप व्यापक है। यह मानव मन को दास बनाये रखता है। जिस प्रकार मानव की वासनायें अनंत हैं उसी प्रकार अहंकार के रूप भी असंख्य हैं। रूप-यौवन, धनसंपत्ति, परिवार, जाती, धर्म, ज्ञान, विधा, वेष, शक्ति आदि इसके अनेक रूप हैं। चाहे जैसा भी अहंकार हो उसका प्रत्येक रूप समाज के लिए अहितकारक एवम् निंदनिय रहेगा। रूप-यौवन, धन यह सारी अस्थायी वस्तुएँ इनपर इतराना अज्ञानता का लक्षण है। जातिजन्य अहंकार मुखता का लक्षण है। मनुष्य ने अपने स्वार्थ एवम् अहंकारवश के कारण ऊँच-निच का बँटवारा किया। यह अनैतिक एवम् हैय है। धर्म का अभिमान व्यक्ति को दुसरे धर्मावलंबियों से अलग कर देता है। जिससे परस्पर वैमनस्य एवम् द्वेष बढ़ता है और समाज में विश्रंखलता आने लगती है।

अभिमानित व्यक्ति का हृदय एक विशेष प्रकार की आग से जलता रहता है। उसकी भौहों पर पड़े हुए बल उसके मस्तिष्क को विकृत, स्वास्थ्य को नष्ट, मन को अपवित्र तथा स्वभाव को उग्र बना देता है। वाणी में कठोरता आ जाती है। व्यवहार में कटुता आने लगती है। लंकाधिपती रावण इन्द्र के समान करोड़ों लोग कौरव-पाण्डवों जैसी शक्तिशाली जोड़ी इस संसार से अहंकार के कारण ही चले गये हैं। जिन्हें अपने-अपने बल पर अभिमान था, भक्ति के क्षेत्र में भी अभिमान करना अपने लिए हानीकारक है। जहाँ 'मैं' है वहाँ सभी तुच्छ बन जाते हैं। भक्ति के क्षेत्र में तो लीनता, विनम्रता महत्वपूर्ण है। कबीरदास इस संदर्भ में कहते हैं कि,

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नहीं।

सब अंधियारा मिटि गया, जब दिपक दिख्या मांही॥"⁵

आज का समाज इससे अलग नहीं है। कोई धन के बल पर अभिमान करता है, तो कोई शक्ति के बल पर किसी न किसी दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति दूसरों को हैय दृष्टि से देखता है। वह वर्चस्व स्थापित करता है, राज करना चाहता है। अगर समानता लानी हो तो एक मनुष्य को दूसरे की ओर मनुष्य के ही दृष्टि से देखना चाहिए। कबीर इसी संवैधानिक मूल्यों को बताना चाहते हैं।

3) बाह्याचारों का विरोध:

भक्तिकालिन स्थिति तत्कालिन राजा-महाराजाओं की धर्मान्धता हिंदु-मुसलमान धर्माधिकारियों के मिथ्याचरण, आडम्बर, दिखावा, ढोंग और भिन्न-भिन्न अंधश्रद्धाओं के कारण जर्जरित हो गयी थी। इससे सामाजिक जीवन विश्रंखल एवम् अनितिमय बन गया था। पण्डे केवल छापा तिलक लगाकर पोथी पन्ना हाथ में थामकर धर्म के नाम पर भोलेभाले लोगों का शोषण करना जानते थे। हिन्दुओं का मन्दिर और मुसलमानों का मस्जिद यह स्वार्थ वामाचार के केन्द्र बन गये थे। यज्ञ करना, एकादशी, नमाज़ और धर्म के नाम पर हिंसा चलती थी। तिर्थाटन, मन्त्र, तन्त्र, वेदपाठ, अवतार उपासना, कर्मकाण्ड आदि बातें आम बन गयी थी।

तत्कालिन समाज में व्याप्त भेष-माला, तिलक, योगाचार, व्रत-नेम, उपवास, श्राद्ध, सिर मुंडन, आदि बातों को बड़े इत्मिनान से स्वीकार किया गया था। सत्य की हत्या और झुठ की रक्षा करना यह उस समय की बात थी। उनका उपदेश देना एक बात और उनका वास्तविक जीवन दूसरी बात थी। अर्थात् कथनी और करनी में जमीन-आसमान का फर्क था। कबीर ऐसे लोगों पर करारा व्यंग्य करते हुये कहते हैं कि,

"कर्ता दिसै करितन, उँचा करि-करि तुंड।

जानै बुझै कुछ नहीं, यों ही आधा खण्ड॥"⁶

आज वैज्ञानिक युग में जी रहा मनुष्य इससे पृथक् नहीं है। आज कम्प्यूटर-इंटरनेट ने पूरे विश्व को एक करने के बावजूद भी संत-महंत-पण्डित-मुल्ला अंधश्रद्धामुलक बाह्याचारों के लिए सामान्य लोगों को फँसाते रहते हैं। उनकी भौदूगिरी दिन-ब-दिन अलग-अलग वेष धारण करते हुए धर्म का डोस दे कर सामान्य लोगों को अपने जाल में अटका रही है। कहीं धर्म के नाम पर दंगा-फसाद करवाना, तो कहीं कामासक्ति से लड़कियों पर बलात्कार करना आदि कार्य उनके नित्य के बन गये हैं। ईश्वर के नाम पर उनका विश्वास संपादन कर उनको लूटना यह आम बात हो गयी है। इक्कीसवीं सदी में जी कर भी हमें कबीर का साहित्य और उनके मूल्य आज प्रासंगिक लगते हैं। अगर उनकी पोल खोलनी है तो कबीर के मूल्यों को अपनाना ही पड़ेगा।

4) दलितोद्धार की भावना:-

भारतीय समाजव्यवस्था का मूल आधार वर्णव्यवस्था है। इसी वर्णव्यवस्था की बहोतसारी शाखाएँ निकलकर मनुष्य जाती में बँट गयी है। इसके पिछे मनुष्य का स्वार्थ था। जिनमें वैमनस्य एवम् कटुता व्याप्त थी। ऊँची जातिवाले लोग अपनेआप को निची जातिवालों की तुलना में उच्च समझकर अन्य लोगों को सामान्य अधिकारों से दूर कर दिया। उनकी परछाई मात्र से उच्च वर्गों के लोगों, उनके धर्मग्रंथों तथा पुज्य देवताओं की

पवित्रता को अपावन होने की आशंका थी। सभी प्रकार से उपेक्षित एवम् तिरस्कृत दलित समाज के लोगों को सवर्ण लोग पशु से उत्तम मानने से तैयार नहीं थे।

इतर प्राणीयों की तुलना में मनुष्य श्रेष्ठ है, क्यों कि उनमें मानवता धर्म है किंतु सवर्ण लोग इस मानवता को भूल चुके थे। उनका मनुष्य के प्रति व्यवहार मनुष्य सा नहीं रहा था। दलित कहकर उन्हें टोकना और विकास के प्रवाह से निरंतर दूर फेंकना यहीं क्रूर निति सवर्णों की रही है। कबीर ने यह देखा था, परखा था और अनुभव से जाना था। ऐसी क्रूर रितियों के विरोध में कबीर की वाणी तलवार की तरह चलने लगी थी। उनकी मान्यता थी कि जब मनुष्य की उत्पत्ती एक ज्योति से हुई है तो उँच-निच की खाई खोदकर मनुष्य-मनुष्य के बीच घृणा का व्यापार चलाना व्यर्थ है।

"एक बुँद एक मल मुतर, एक चाम एक गुदा।

एक जाति तै सब उपजा कौन, ब्राह्मण कौन सुदा।।"⁷

आज भले ही विश्व की सबसे बड़ी और सशक्त प्रजातंत्र की व्यवस्था भारत की है तो भी खैरलांजी जैसी घटनाओं के कारण देश को बड़ी कालिमा लग गई है। भले ही दलितों को सरकारने विकास के प्रवाह में आने के लिए आरक्षित सीटें भी दी हो फिर भी सवर्णों का दलितों की ओर देखने का नज़रिया आज भी बदला नहीं है। फलस्वरूप समानता की बात करनी हो तो कबीर का साहित्य या उनके मूल्य आज भी हमें निर्देशित करते हैं।

5) हिंदु-मुस्लिम एकता:-

मध्यकाल में मुख्यतः हिंदु-इस्लाम दोनों धर्मों में द्वेष भावना अधिक थी। दोनों के धर्माचरणों में आडम्बर और अर्थहीन धर्माचरणों का समावेश था। हिंदु-मुसलमानों के भाईचारों के संबंधों में एक गहरी खाई बन गयी थी। ऐसे में इन दो धर्मों में वैमनस्य की भावना निर्माण होना एक आम बात थी। इस समय संत कबीर इस संघर्ष से परिचीत थे। उन्होंने स्पष्ट रीति से सामाजिक एकता का भाव जगाया। जिसमें जातिभेद, वर्णभेद और धर्मभेद को बिल्कुल स्थान नहीं था। उन्होंने धर्मभेद को सामाजिक संघर्षों का प्रमुख कारण बताकर प्रगतिशील पथ की नींव खड़ी की। वे इस बात का अनुभव करते थे कि हिंदु और मुसलमान दोनों ही भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन चुके हैं, इसे अलग करना असंभव है अतः दोनों का प्रेम और शान्ति से रहना ही समाज के हित में होगा। उन्होंने समाजसुधारक के रूप में जितने साहस से परम्परागत हिंदु धर्म के मिथ्या आडम्बरों के एवं अंधविश्वास को विरोध किया उतना ही साहस भारत में जोर पकड़नेवाली इस्लाम की नयी साम्प्रदायिक भावना से लोहा भी लिया और दोनों की अधार्मिकता पर निर्भीकतापूर्वक कुठाराघात किया।

"हिंदु कहे राम मोहि प्यारा, तुरक करे रहेमान।

आपस में दोहु लरि लरि मुए, मर्म ना काहु जाना।।

पूरब दिशा हरि को वासा, पश्चिम अलह मुकामा।

दिल में खोजी दिल ही माँ खोजो, इहे करीमा रामा।।"⁸

भक्तिकाल को गुजर कर भले ही बरसों साल हो गये किंतु परिस्थिति अब भी वैसी ही बन पड़ी है। आज भारत में कोई भी ऐसी बुलंदी और निष्पक्षता की पुख्ता ज़मीन नहीं है जो हिंदु-मुसलमान दोनों को फटकार सके और कह सके कि तुम दोनों अंधे हो, मुख हो। यदि परस्पर बाह्य प्रतिकों, ठिकाणों के लिए पत्थर, ईंट, चुने, लोहे के इबादत घरों, मंदिरों, मस्जिदों के लिए जिंदा इन्सानों को मारने पर तुले हो कह सको के तुम अधम हो, नरपिशाच्य हो, क्यों कि तुम जिंदों को पहले मुर्दा बनाते हो, फिर उसकी लाशों की राजनितिक मुनाफाखोरी में जुट जाते हो। यह त्रासदि भारत-पाक विभाजनसेही हर व्यक्ति के मन में घर कर बैठी है। इससे राष्ट्रिय एकता को छिन्न-विछिन्न कर रही है। ऐसे समय आज हमें फिर कबीर को याद करना

पडेगा। हिंदु-मुस्लिम संस्कृतियों के संघर्ष को समाप्त कर साम्प्रदायिक सद्भाव, भाईचारा, मैत्री और सौहार्द, बंधुत्व को स्थापित करना आवश्यक है। इसलिए कबीर के मूल्य, उनका साहित्य आज प्रासंगिक है।

6) अहिंसा पर बल:-

महाभारत में अहिंसा को परमधर्म, परमसुख, माना गया है। धर्मशास्त्रों में अहिंसा को परमपद बतलाया गया है। पुराणों में और उपनिषदों के साथ-साथ सभी संतों ने भी अहिंसा तत्व को स्वीकार किया है। अहिंसा तत्व के कारण ही मनुष्य सभी प्राणीमात्राओं में श्रेष्ठ है। कबीर ने भी अहिंसा तत्व का स्वीकार किया है। इसलिए वह कहते हैं कि,

"बकरी पाती खाती है, ताकी काढी खाल।

जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल।।"⁹

आज वैज्ञानिक युग में तो मनुष्य की संवेदनाएँ मर गयी हैं, जिसके कारण वह दिन-ब-दिन हिंसा की ओर बढ़ता जा रहा है। मानव पशु की तो हत्या कर ही रहा है किंतु मानव की तो निर्ममता से हत्याएँ भी कर रहा है। आज आतंकवाद इसी का द्योतक है।

7) सहजता:-

कबीर सहजता पर बल देते हुए सामान्य सहज जीवन को श्रेष्ठ मानते हैं। कबीर ने कर्मकाण्ड पर आधारित वैराग्य की बजाय सहज प्रवृत्ति को अपनाने का संदेश दिया है। वेषभूषा बदलने का नाम कबीर ने वैराग्य नहीं माना। कबीर कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति तन से स्थान पर मन से बैरागी हो जाता है तब उसे सहज ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

"तन को जोगी सब करै, मन का विरला कोई।

सब सिद्धी सहजै पाईये, जे मन जेगी होय।।"¹⁰

साथ-ही-साथ कबीर ने घर त्याग कर वन में जाने की बजाय घर पर ही सहज साधना के लिए कहा है।

"बन ही वैसे का कीजिये, जो मन नहीं तजै विकार।

घर बन समसरि जिनि किया, ते बिरला संसार।।"¹¹

8) सत्य:-

भारतीय संस्कृति का सबसे प्राचीन और प्रमुख जीवनमूल्य सत्य इसके बारे में कबीर ने अपने काव्य में प्रमुखता दी है। सत्य को ईश्वरप्राप्ति का प्रमुख साधन घोषित करते हुए कबीर कहते हैं-

"साँच बराबर तप नहीं, झुठ बराबर पाप।

जा कै हिरदै साँच है, ता कै हिरदै आप।।"¹²

कबीर ने सत्य को सनातन और अनश्वर माना है। वे मानते हैं कि सत्य मनुष्य को ईश्वर से जोड़ने का माध्यम है। कबीर कहते हैं कि सच्चा व्यक्ति सत्य के आचरण से निर्भय और अमर बन जाता है।

"साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय।

साँचे को साँचा मिलै, साँचे माही समाय।।"¹³

9) क्षमा:

कबीरकालीन समाज घृणा और वैमनस्य से ग्रस्त था। व्यक्ति, वर्ग, जाति, संप्रदाय व धर्मों में बँटकर आपस में लड़ता रहता था, तब कबीर ने समाज में सहनशीलता और उदारता का संचार करने के लिए क्षमा पर बल देते हुए कहा है,

"क्षमा बडन को चाहिए, छोटन को उत्पात।

कहा विष्णु को घटि गयो जो भृगू मारि लात।।"¹⁴

10) संतोष:-

कबीर ने लोभग्रस्त व्यक्ति को संतोष का पाठ पढ़ाया। वे संतोष को व्यक्ति के लिए ईर्ष्या, निंदा, द्वेष जैसे गुणों को दूर रखने का साधन मानते थे। कबीर ने संतोष को संसार के सभी धन, ऐश्वर्य से श्रेष्ठ माना है। जैसे -

"गोधन, गज-धन बजी-धन और रतन-धन खानि।

अब आवैं संतोष धन सब धन धुरी समानि।।"¹⁵

ईश्वर से माँग करते हुए कबीर जी संतोष के साथ कहते हैं-

"साईं इतना दीजिए, जितना कुटुंब समाय।

त मैं भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय।।"¹⁶

उपसंहार:-

कबीर का काव्य न केवल समाज और धर्म है बल्कि व्यक्ति, परिवार और सत्ता के लिए भी वर्तमान में पूर्णतया संवैधानिक मूल्यों को निर्देशित करनेवाला है। कबीरद्वारा स्थापित मूल्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। इनका आचरण आज भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए तथा समाज के लिए अनुकरणीय है। कबीरद्वारा स्थापित बाह्य आडंबर का विरोध, अहंकार का त्याग, बाह्याचारों का विरोध, दलितोद्धार की भावना, हिंदु-मुस्लिम एकता, अहिंसा पर बल, सहजता, सत्य, क्षमा, संतोष जैसे मूल्यों की आज अत्यंत आवश्यकता है। क्यों कि, व्यक्ति के आचरण को मर्यादित करने और समाज की उत्कृष्ट व्यवस्था के लिए हमारे कानून, नियम भी बेबस नजर आ रहे हैं। अतः ऐसे माहोल में कबीर का काव्य एक आशा की किरण के रूप में नजर आता है। कबीर की वाणी और उनके मूल्य प्रत्येक व्यक्ति की समझ तक सुलभ हो सकते हैं। भले चाहे हम कितने भी आधुनिक हो जाये हमें हमारे संवैधानिक मूल्यों कि प्यास बुझाने के लिए कबीर का आश्रय हमेशा लेना ही पड़ेगा।

संदर्भ:-

- 1) कबीर साहित्य और सिद्धांत, यज्ञदत्त शर्मा, अक्षरधाम प्रकाशन, सोनीपथ, पृ. 22
- 2) कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वाणि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 209
- 3) कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वाणि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 195
- 4) कबीर : एक नई दृष्टि, डॉ. रघुवंश, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 110
- 5) कबीर ग्रंथावली सटिक, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. 51
- 6) संतों और शिवशरणों के काव्य में सामाजिक चेतना, डॉ. काशीनाथ अंबलगे, पृ. 164
- 7) वर्तमान परिवेश में भक्तिकाल की प्रासंगिकता, डॉ. सुर्यकांत अजमेरा, डॉ. बापूराव देसाई, पृ. 81
- 8) संत संदेश कबीर विशेषांक, 1973, महंत पंडित श्री जगदीशदासजी गुरु (बापूदासजी), पृ. 68
- 9) मधुमती पत्रिका, डॉ. (श्रीमती) अजित गुप्ता, पृ. 43
- 10) कबीर साहित्य और सिद्धांत, यज्ञदत्त शर्मा, पृ. 122
- 11) कबीर समग्र (सं.), युगेश्वर, पृ. 724
- 12) कबीर समग्र (सं.), युगेश्वर, पृ. 443
- 13) कबीर समग्र (सं.), युगेश्वर, पृ. 444
- 14) कबीर समग्र (सं.), युगेश्वर, पृ. 442
- 15) कबीर समग्र (सं.), युगेश्वर, पृ. 441
- 16) कबीर समग्र (सं.), युगेश्वर, पृ. 463

सांप्रदायिक सौहार्द और मुंशी प्रेमचंद का कथा साहित्य

डॉ.सूर्यकांत शिंदे

हिंदी विभागाध्यक्ष

लोकमान्य महाविद्यालय, सोनखेड जि.नांदेड

प्रस्ताविक:-

आज का संपूर्ण विश्व सांप्रदायिकता की जहरीली ज्वाला से पीड़ित है। सांप्रदायिकता के मकड़-जाल में फँसकर आम जनता कराह रही है। दिन ब दिन भेद-भाव की लंबी दीवारें निर्मित हो रही हैं। आजादी के सत्तर साल गुजर जाने के बाद भी देश में कहीं मुस्लिमों का नर संहार, कहीं ईसाइयों की हत्या तो कहीं हिंदुओं पर हमला जारी है। ऐसे वातावरण में सबसे बड़ी क्षति हो रही है मानवता की। वैसे देखा जाए तो सांप्रदायिकता का कोई रंग नहीं होता। सांप्रदायिकता न हिंदुओं की हत्या करता है और न मुसलमानों की और न ईसाइयों की बल्कि सांप्रदायिकता से मनुष्य और मानवता का खून होता है। सांप्रदायिक शक्तियाँ राष्ट्र ही नहीं मानवता के अस्तित्व के लिए भी महत्वपूर्ण चुनौती उत्पन्न कर रही हैं। सोचा गया था देश स्वतंत्र होने के बाद संवैधानिक मूल्यों का पालन किया जाएगा, धार्मिक उन्माद घटेगा, आधुनिक दृष्टि विकसित होगी लेकिन तमाम उम्मीदों पर पानी फेर दिया गया। अब धर्मनिरपेक्षता का अस्तित्व बना रहेगा या नहीं? इस पर प्रश्न चिह्न खड़ा है। प्रसिद्ध चिंतक रामशरण जोशी के शब्दों में- “सवाल खड़े कर दिये हैं कि क्या भारत एक राष्ट्र है? आधुनिक राष्ट्र के रूप में इसकी बुनियाद कितनी मजबूत है? क्या भविष्य में इसकी वर्तमान तस्वीर साबुत रह सकेगी? क्या धर्मनिरपेक्षता एक मिथ और फ्राँड है, देश के दो प्रमुख समुदाय हिंदू और मुसलमान चैन व समानता के साथ जी और मर सकेंगे? ऐसे ही अनेक सवाल हैं जिनका सामना हर एक समझदार व जवाबदार नागरिक को करना पड़ रहा है”।¹

इस संदर्भ में डॉ. वीणा गौतम लिखती हैं- “भारत के आचार-विचार, चिंतन-मनन को यदि वर्तमान में कोई बात झिंझोड़ रही है तो वह है मूल्यों का जीवन से बेमेल होना या खो जाना”।²

स्पष्ट है कि सांप्रदायिकता आज के समय की एक चुनौती है, सांप्रदायिकता ने अपने हिंस्त्र पंजे से मानवता की हत्या की साजिश रची है। ऐसे में एक संवेदनशील रचनाकार आहत होता है। और वह विचार-मंथन की प्रक्रिया से गुजरता है और अपने पाठकों को जागरूक बनाने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में आज पूरी दुनिया में ज्ञान का प्रतीक कह जानेवाले भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर जी को साहित्य से बड़ी उम्मीद थी उन्होंने 1932 के अपने भाषण में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा था- “मुझे देश के लिए इंजिनियर चाहिए, डॉक्टर चाहिए, वकील चाहिए परंतु सबसे अधिक आवश्यकता मुझे साहित्यकारों की है, क्योंकि कि समाज को अगर संवेदनशील बनाना है, समाज की पुनर्रचना करके उसे शोषण मुक्त करना है तो साहित्यकारों की जरूरत होती है”।³ इस प्रकार समाज को संस्कारशील, गतिशील बनाने के लिए, समाज का स्थितिशील परंपरागत मन बदलने के लिए, समाज में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए साहित्य और साहित्यकार की महत्वपूर्ण भूमिका है।

“साहित्य समाज की दशा व दिशा की आधारशिला रखता है। यह संस्कृति का संरक्षक व भविष्य का पथ प्रदर्शक होता है। साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक माना जाता है। साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का बेहतर मंच होता है”।¹⁴ इसी संदर्भ में मूर्धन्य रचनाकार कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की रचनाधर्मिता का महत्व प्रतिपादित करना आवश्यक बन जाता है। प्रेमचंद युग में भी सांप्रदायिक शक्तियाँ ताकतवर बन चुकी थीं। प्रेमचंद ने सांप्रदायिकता के विकराल रूप को काफी नजदीक से देखा था। अपनी समग्र रचनाओं के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद ने सांप्रदायिकता की जड़ को ढूँढ़ने का प्रयास किया है। सांप्रदायिकता के संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद के विचार हैं-“क्या सांप्रदायिकता उसी को कहते हैं जो धर्म और आचार पर आधारित हो। वह भी तो सांप्रदायिकता है, जो राजनीतिक सिद्धांतों पर आधारित होती है। अगर हिंदू-मुसलमान एक दूसरे से लड़ते हैं तो क्या सोशलिस्ट और डेमोक्रेटिक एक दूसरे की पूजा करते हैं उनकी आपसी लड़ाइयाँ भी उतनी ही भयंकर, उतनी ही रक्तमय होती हैं, बल्कि उससे कुछ ज्यादा यह विभिन्नता तो किसी न किसी रूप में उस समय तक रहेगी, जब तक एक नए युग का उदय न होगा। जब सब एक दूसरे को भाई समझेंगे, स्वार्थ और भेद का अंत हो जाएगा। वह समय निकट भविष्य में आता नजर नहीं आता”।¹⁵ इस प्रकार मुंशी प्रेमचंद ने यहाँ सांप्रदायिकता की भव्यता की ओर इशारा किया है।

मुंशी प्रेमचंद ने अपने प्रारंभिक उपन्यास ‘सेवासदन’ से ही सांप्रदायिकता के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत उपन्यास में वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखे जाने के मद्दे पर बखेड़ा खड़ा हुआ। हिंदू और मुसलमान वेश्याओं को अलग-अलग स्थानों पर रखने की बात पर भी समस्या खड़ी हुई। सैयद शफकत अली, जैसे पात्रों के साथ पद्मसिंह, प्रोफेसर रमेशदत्त, सेठ बलभद्रदास, अनिरुद्ध सिंह, सदन सिंह आदि के हृदय की रंग-रंग से प्रेमचंद स्वयं परिचित थे। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं-“प्रेमचंद यह दिखलाते हैं कि नारी की पराधीनता और वेश्यावृत्ति हिंदुओं और मुसलमान दोनों में है। वह इस्लामी संस्कृति और हिंदू संस्कृति का डंका बजानेवालों से कहते हैं-देखो, यह है तुम्हारी संस्कृति जो हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों की स्त्रियों से वेश्यावृत्ति कराते हैं”।¹⁶ इस प्रकार प्रेमचंद ने देखा कि दिन-ब-दिन सांप्रदायिकता विषवृक्ष की भाँति फलती-फूलती जा रही है। अपनी रचनाओं के द्वारा लोगों को सचेत करने का काम भी उन्होंने किया है। प्रेमचंद ने अपने दूसरे उपन्यास ‘कायाकल्प’ में भी सांप्रदायिक सौहार्द का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास में जगदीशपुर की राणी देवप्रिया की विलासिता है। यहाँ भी किसानों की कथा है। प्रेमचंद ने देवप्रिया के राज्य का वर्णन करते हुए लिखा है-“चारों ओर लूट-खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोंक पीट तो साधारण बात थी, कितनों ही के खेत कटवा लिए गये, बेगार में दिन रात काम किया जाता था। भोजन के बदले हंटर मिलते थे”।¹⁷

प्रस्तुत उपन्यास में यशोधानंदन की हत्या होती है। ख्वाजा महमूद आंसू बहा ही रहे थे कि उन्हें अहल्या के अपहृत होने की खबर मिलती है। अपहृत अहल्या ख्वाजा के पुत्रों का शिकार बनती है। ख्वाजा के घर में अहल्या को छिपाया जाता है। ख्वाजा के पुत्र की बदसलुकी के प्रयास से अहल्या क्षुब्ध हो उसे मार डालती है। पूरी घटना से रू-ब-रू होने के बाद ख्वाजा का कथन है-एक घंटा पहले तक मैं उस पर निसार होता था, अब उसके नाम से नफरत हो रही है। इस प्रकार ख्वाजा से अहल्या की प्रशंसा करवाना सांप्रदायिक सौहार्द के लिए अति आवश्यक है।

मुंशी प्रेमचंद की एक महत्वपूर्ण कहानी है 'जिहाद' मुंशी प्रेमचंद प्रस्तुत कहानी की शुरुआत में लिखते हैं-"मुद्दतों से उस प्रांत में हिंदू और मुसलमान साथ-साथ रहते चले आए थे। धार्मिक व्देष का नाम न था।" आज धार्मिक उत्तेजना ने जिस कुप्र और इस्लाम का भेद उत्पन्न कर दिया है उसकी दीवार को ढहाएँ। प्रस्तुत कहानी में श्यामा धर्मदास से कहती है-'वह(खजानचंद) धर्म पर मरनेवाला वीर था, धर्म को बेचनेवाला कायर नहीं'। प्रस्तुत कथन आज के संदर्भ में विचारणीय है। आज की विडंबना है कि धर्म के नाम पर दलालों और धर्म के ठेकेदारों की बेइंतहा वृद्धि हो रही है। आज धर्म व्यापार बन गया है।

हिंदू-मुस्लिम की एकता की स्थापना के उद्देश्य से लिखा गया एक महत्वपूर्ण नाटक कर्बला है। कर्बला में हिंदू-मुस्लिम दोनों को मिलकर कुरबानी करते दिखाया गया है। प्रेमचंद ने मनुष्य को धर्म या मजहब के आधार पर बाँटना कभी न चाहा था। इसलिए इस नाटक में जामिद का कथन महत्वपूर्ण है। ठाकुर जी तो सबके ठाकुर जी हैं, क्या हिंदू, क्या मुसलमान। कहानी आगे बढ़ती है और चिंतक प्रेमचंद सांप्रदायिक ताकतों से अनुनय विनय करते हुए कहते हैं-' इसका बदला यही है कि शरारत का बदला किसी गरीब मुसलमान से न लीजिएगा, मेरी आपसे यही दरखास्त है।' हिंदू अधिसंख्यक मुसलमानों की एवं मुसलमान बहुल इलाके में हिंदुओं की हिफाजत करें तो सांप्रदायिक सौहार्द बलवती हो सकता है। अधिसंख्यकों का कर्तव्य बनता है कि वे अल्पसंख्यकों का ध्यान रखें। भारतीयता को बचाए रखने के लिए ऐसी भावना का पोषण करना कितना आवश्यक था, इस बात को प्रेमचंद ने भली भाँति समझा था।

1924 में प्रकाशित 'मुक्तिधन' कहानी में प्रेमचंद औपनिवेशिक शासन में एक मुसलमान किसान की नियति का अंकन करते हैं, जो न तो मुसलमान होता था न हिंदू वह केवल किसान होता था। इसलिए हिंदू-मुस्लिम सद्भाव के कहानीकार के रूप में प्रेमचंद बेमिसाल हैं। वे अपने कथा कहानियों के माध्यम से ऐसे हिंदू और मुस्लिम पात्रों का निर्माण करते हैं। जिनमें असाधारण धार्मिक सहिष्णुता होती है।

प्रेमचंद जी की दूसरी कहानी मंदिर और मस्जिद में चौधरी इतरअली ऐसे ही उच्चवर्गीय जागीरदार पात्र है वे न तो मुसलमानों द्वारा हिंदू मंदिर पर हमले को बरदाश्त करता है और न ही हिंदुओं द्वारा मस्जिद पर किये गये आक्रमण को। वे मानते हैं कि किसी के दीन की तौहीन करने से बड़ा और कोई गुनाह नहीं है। प्रेमचंद की प्रस्तुत कहानी सांप्रदायिक सौहार्द को उजागर करती है।

'जुलूस' कहानी में प्रेमचंद ने एक मुस्लिम चरित्र इब्राहिम को उठाया है। इसमें जिस तरह जुलूस इंडे लिए वंदेमातरम गाते युवकों का जिक्र है तो गांधी के विचार पर चलने वाले सत्याग्रही इब्राहिम का भी। आप जुलूस से आगे बढ़ते हुए आज का परिदृश्य देखेंगे तो सांप्रदायिकता आपको डराती दिखेगी जिस धर्म निरपेक्ष देश की हम बात करते आए हैं और हमारे संविधान में जो अधिकार दिया है, उसे कहीं न कहीं चोट पहुँचती दिखाई दे रही है।

निष्कर्ष:

प्रेमचंद के कथा साहित्य का अवलोकन करने के बाद सवाल उठता है कि प्रेमचंद के रचना संसार से हमें क्या सीखना चाहिए? तो इसका जवाब सीधा है। सांप्रदायिक सौहार्द और उन मूल्यों का सम्मान जो आजादी के बाद संविधान के द्वारा हमें प्राप्त हुए हैं। मुंशी प्रेमचंद मानते थे कि सभी धर्मों को तिलांजलि देकर मानव-धर्म को अपनाया जाए जिसमें समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, देश की एकता, अखंडता, भाईचारा, प्रेम, अहिंसा और एक दूसरे के

दुख दर्द को समझने और बांटने का पूरा अवसर हो। प्रेमचंद ने सदा मानव धर्म को ही शीर्षस्थ स्थान प्रदान किया है। उनके अनुसार इस धर्म के अंतर्गत मनुष्य का मनुष्य रहना अनिवार्य है। प्रेमचंद का लेखन अब लगभग सौ साल पुराना होने जा रहा है लेकिन अब भी बहुत सामयिक है। उनका समग्र साहित्य संवैधानिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना करता है, मानवता को दृढ़ बनाता है, और उदारता के भाव पैदा करता है।

संदर्भ सूची:

- 1) जोशी रामशरण, हंस, जुलाई 1993, पृ. सं. 65
- 2) डॉ. वीणा गौतम, हिंदी नाटक, पृ. सं. 197
- 3) डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्मय, खंड-5 पृ. सं. 178
- 4) हिंदुस्तान-अगस्त, 2021
- 5) प्रेमचंद विविध प्रसंग, भाग-2, समझौता या हार, पृ. 405
- 6) अरूण होता, गद्य कोश
- 7) प्रेमचंद रचनावली, भाग-4 पृ. 170
- 8) साहित्य कुंज. कॉम



हिन्दी की दलित कविता में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा विषयक चिंतन

डॉ.अशोक एम.पवार

जी.टी.पाटील कॉलेज,

नंदुरबार (महाराष्ट्र)

भारतीय संविधान के प्रधान शिल्पकार बाबासाहब डॉ.भीमराव आंबेडकर ने संविधान की रचना करते समय इस बात का बराबर ध्यान रखा कि, सभी भारतवासियों को समान अधिकार प्राप्त हो। बाबासाहब शुरु से ही समानता के पक्षधर रहे हैं इसलिए भारत के संविधान में “समानता” इस शब्द को बहुत ही व्यापक आयाम और महत्व प्राप्त है। इसी प्रकार “बंधुता” शब्द भी बहुत महत्व रखता है। एडवोकेट आकाश ब. मून ने “भारत का संविधान” प्रिमियम संस्करण का संपादन करते हुए लिखा कि, “स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा इन सिद्धांतों को अलग-अलग विचारों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए ----- अगर वह अलग-अलग समझे जाते हैं तो लोकतंत्र के उद्देश्य को छेद करना होगा। स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता, ना ही स्वतंत्रता और समानता से अलग नहीं किया जा सकता, ना ही स्वतंत्रता और समानता को भाईचारा (बंधुत्व) से अलग किया जा सकता है।”¹

हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों के अंतर्गत समानता के अधिकार, अवसरों की समानता (अनुच्छेद 16) और अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद 17, 18) संबंधी बातें उल्लिखित हैं। विधी या कानून के समक्ष सभी भारतीय समान हैं। छोटा - बड़ा अमीर - गरीब, स्पृश्य - अस्पृश्य ऐसा कोई भेद नहीं है। इतना कुछ होते हुए भी भारतीय समाज और प्रशासकीय व्यवस्था में असमानता पायी जाती है। इस बात को हिन्दी के दलित कवियों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

दलित साहित्यकारों ने बाबासाहब के विचारों को ध्यान में रखते हुए समानता को महत्व दिया है और उसकी स्थापना किये जाने की माँग करते रहे हैं। कवि जयप्रकाश कदम की बात को देखिए -

“तुमको हराम का हलुवा उचित है

मुझको ईमानदारी और मेहनत की

रोटी भी अनुचित है

चाहिए बुभुको सारा मक्खन

और मुझको छाछ भी नहीं

यह अब नहीं चलेगा

अब हर क्षेत्र में होगी

समान रूप से हिस्सेदारी।²

इस देश में समाज - धर्म और राजनीतिक पार्टियों ने रंगों को भी बाँट लिया है। यह तो एकता के लिए बाधा उत्पन्न करनेवाली बात है। आज के संदर्भ में इन रंगों में टकराव बढ़ गया है। जिससे एकता में बाधा उत्पन्न हो रही है।

भिन्न भौगोलिक क्षेत्र में जीनेवाला आदमी भिन्न - भिन्न समस्याओं से जुड़ा रहा है। वह शोषण, अत्याचार से मुक्ति पाना चाहता है और सामाजिक समानता की माँग करता है। कवयित्री सुशीला टाकभौरे अपनी कविता में कहती हैं -

“अन्याय अधर्म का विरोध मानवता को बचायेगा
समता, स्वतंत्रता, भाईचारा घर - घर तक पहुंचायेगा।”⁴

ओमप्रकाश वाल्मीकि की सोच बड़ी गहरी है। वे समानता को स्थापित करने के लिए हमेशा प्रयत्नरत रहे हैं। उन्होंने अपनी कविता में भी इस विषय को उठाया है। वे लोगों को आवाहन करते हैं -

“आओ-आओ। जनता जो बिखरी है वर्णों-जातियों में ऐक्य के सूत्र में हार बना दें, अजीत बना दे।”⁴ कवि वाल्मीकि एक कविता में इस संदर्भ में लिखते हैं -

“आज फिर वर्तमान को झुठलाकर
एकता, समता और भातृत्व के
नाम पर नया संविधान बनेगा।”⁵

दलित कवियों को आशा है कि नया युग आयेगा और एकता, समानता, भाईचारा जैसे मूल्य स्थापित होंगे। भारतीय संविधान के आरंभ में सभी जाती-धर्म संप्रदाय व लिंग के भेदभाव से परे सभी भारतवासियों या भारतीय क्षेत्र में जन्में हर जन को भारत की नागरिकता प्रदान की गई है। स्वतंत्रता का अधिकार भी सबको प्राप्त है। जनता को स्वतंत्रता का अधिकार न होगा तो लोकतंत्र की आड़ में कोई भी तंत्र जैसे तानाशाही चलायी जा सकती है।

भारतीय जनता को छह प्रकार की स्वतंत्रताएँ प्राप्त हैं। वे हैं - भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक सम्मेलन की स्वतंत्रता, संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता, भारत के राज्यों में निबाध्य जाने-आने की स्वतंत्रता, भारत के किसी भी क्षेत्र में निवास करने की स्वतंत्रता और कोई भी व्यापार करने की स्वतंत्रता। अनुच्छेद 19 में दिये गये स्वतंत्रता के अधिकारों के साथ धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार भी प्राप्त है। इस प्रकार के प्रावधानों के होते हुए भी दलितों को दबाया और कुचला जाता है। भारत के हर राज्य में दलितों को अपमानित जीवन जीना पड़ रहा है। डॉ.रश्मि चतुर्वेदी ने बहुत अच्छी बात कही, कि “..... ईमानदारी से किए गये प्रयास और कड़े प्रावधानों से वे दिन दूर नहीं जब हम प्रत्येक मानव को मानवतावादी दृष्टिकोण से देख सके जिसमें सामाजिक न्याय जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों की सही स्थापना इस देश में हो सकेगी।”⁶

मायावती के गाँव में कवि शेखर की काव्यकृति दलित कविता के क्षेत्र से सशक्त रचना है। शेखर की कविताओं में विचारों की सटीकता है। शेखर ने अपनी कविताओं में समानता, एकता और बंधुता जैसे मूल्यों पर विचार व्यक्त किये हैं। डॉ.भरत सगरे ने दलित साहित्य के संदर्भ में लिखा है, “दलित साहित्य वर्ण, वर्ग, धर्म, व्यवस्था, शोषण, रुढ़ि-परंपरा के खिलाफ विद्रोह एवं चेतना है। दलित साहित्य की प्रेरणा स्रोत आंबेडकरी दर्शन है। सामाजिक समता, एकता जागृति के लिए इसकी आवश्यकता है।”⁷ भारतीय संविधान में सभी स्त्री-पुरुषों को समानता के अवसर प्रदान किये हैं पर आज भी स्त्री-पुरुष में भेद किया जाता है। कवयित्री एक कविता में समानता की माँग करती हुई लिखती हैं -

“चलो ठीक है
शोषण के चक्रव्यूह को दृढ़ता से भेदे
चलो आवाम को दे दो
आजादी और समानता का समुद्री समतल।”⁸

कवि शोषणकारी वृत्ति को नष्ट करने की कामना करता है और जनता को आजादी के साथ समानता प्रदान करने की मांग करता है।

कवयित्री सुशीला टाकभौरे सामाजिक समानता की स्थापना पर जोर देती है। वह जातीयता, शोषण और अत्याचार से मुक्त समाज की जरूरत महसूस करती है। मानवता, समता और बंधुता जो बाबासाहेब के विचार से प्राप्त हैं उन्हें स्वीकारती हुई कहती है अन्याय और अधर्म का विरोध करने से मानवता बचेगी और समता, स्वातंत्र्य और बंधुता की स्थापना होगी। भारतीय गाँव ब्राम्हणों के लिए स्वर्ग हो सकते हैं, परन्तु दलितों के लिए तो वे नरक ही हैं।

हमारे समाज में कानून के होते हुए भी समानता स्थापित नहीं हो पायी है। इसलिए दलित कवि को उस दिन का इंतजार है जिस दिन समानता स्थापित होगी। आज भी भारत के कई गाँवों में दलितों को गाय का दूध नहीं मिलता। दलित का बेटा शादी में घोड़े पर नहीं बैठ सकता। दलितों का घोड़े पर बैठना सामाजिक अपराध माना जाता है। कवि सूरजपाल चौहान लिखते हैं -

“मैं मचलकर माँ से, कब माँगूँगा
गाय, भैंस का दूध।
कब होगी वह भोर
जब मेरी बहन या बेटे की शादी पर
चढ़कर दुल्हा आएगा घोड़ी ...।”⁹

कभी कोई दलित दुल्हा घोड़े पर बैठने का साहस करता है तो उसे बुरी तरह पीटा जाता है। उन दलितों पर निर्बंध लगाये जाते हैं। सूरजपाल जी ने एक प्रसंग का वर्णन करके सवर्णों के अत्याचारों को उजागर किया है -

“... कैसी आफत आन पड़ी
जिन पैरों चल घोड़ी चढ़ आया वो
अलग पड़े हैं दोनों पाँव।”¹⁰

हिन्दी के दलित कवि समता की आस लगाये बैठे हैं। वे वर्ण-व्यवस्था का अंत हो जाने की राह देख रहे हैं। इस बात को सभी दलित चिंतक मानते हैं। समाज में समानता के लिए वर्ण-व्यवस्था ही सबसे बड़ी बाधा है इसलिए सूरजपाल चौहान ने लिखा -

“चार-वरण का नाश हो, मिट जाए पाखण्ड।
होगी यहाँ भी एकता, बनेगा देश अखण्ड॥”¹¹

दलित साहित्यकार केवल भारत की बात नहीं करते बल्कि वे आज विश्व स्तर पर भी सोचने लगे हैं। दलितत्व दुनियाभर में अलग-अलग रूपों में व्याप्त है।

मोहनदास नैमिशराय ने स्वीकार किया है कि समता, स्वतंत्रता और बंधुता दलित साहित्य के सौन्दर्य तत्व हैं। इन तत्वों को वे जीवन मूल्य भी मानते हैं। जयप्रकाश कर्दम रश्मि चतुर्वेदी से बात करते हुए स्वीकार करती है कि, “बाबासाहेब आंबेडकर ने एक स्थान पर कहा है कि “मेरा चिन्तन समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा इन तीन शब्दों पर टिका है। ये तीनों शब्द लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के आधार हैं ...।”¹² अतः कहा जा सकता है कि बाबासाहेब समानता को सबसे बड़ा मूल्य मानते थे।

समानता की बात करनेवाले तो सभी हैं | ऐसा नहीं है कि केवल दलित कवि ही समानता की बातें करते हैं | गैर दलित समानता की बात करते हुए आरक्षण खतम किये जाने की माँग करते हैं | उन जैसों के लिए कवि जयप्रकाश कदम का सुझाव है कि,

“ अब हर क्षेत्र में होगी
समान रूप से हिस्सेदार
मैला दोने, जूती गाठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बांटनी होगी समानता ।”¹³

सारांश -

दलित साहित्य डॉ.आंबेडकर के विचारों से प्रेरित है | डॉ. आंबेडकरने मानवता, समता, स्वातंत्र्य, न्याय और बंधुभाव जैसे मूल्य गढ़े उन्हीं की परिणति ही हमारा प्रिय संविधान है | दलित साहित्यकारों ने डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर साहित्य सृजन किया अतः हिन्दी दलित साहित्य के रचनाकार इस बात से अछुते कैसे रह सकते हैं | हिन्दी दलित कवि तो भारतीय संविधान के पुरस्कर्ता ही नहीं अपितु रक्षक भी नजर आते हैं | इन्होंने समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, मानवता जैसे मूल्यों की रक्षा करने की बात ठान ली है | उनकी कविताओं में उक्त मूल्यों के हनन की चिंता जताई है साथ ही साथ अन्य संवैधानिक मूल्यों की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए समस्त मानव जाति के उत्थान के लिए उनकी महत्ता को भी अभिव्यक्त किया है | हिंदी दलित कविता में समानता का तार पकड़कर एकता का सूत्र पाकर आगे बढ़ने की बात की है | वे इच्छा जाहिर करते हैं कि सभी की जबान पर बंधुत्व का संगीत होगा और सभी के हाथों में समानता और न्याय का तंत्र होगा |

संदर्भ: -

- 1) भारत का संविधान - डॉ. भीमराव रा. आंबेडकर (प्रिमियम संस्करण पृ. XVIII)
- 2) दे. दलित साहित्य और युगबोध - डॉ.एन.सिंह, पृ.25
- 3) दलित साहित्य - अनुसंधान के आयाम - डॉ.भरत सगरे, पृ.91
- 4) दलित साहित्य और युगबोध - डॉ. एन.सिंह पृ.51-52
- 5) वही पृ.53
- 6) हिन्दी दलित साहित्य विमर्श के विविध आयाम - डॉ.रश्मि चतुर्वेदी, पृ.55
- 7) दलित साहित्य - अनुसंधान के आयाम - डॉ.भरत सगरे, पृ.130
- 8) मायावती के गांव में - शेखर, पृ.133
- 9) कब होगी वह भोर - सूरजपाल चौहान, पृ.32-32
- 10) क्यों विश्वास करूँ - सूरजपाल चौहान, पृ.23
- 11) कब होगी वह भोर - सूरजपाल चौहान, पृ.47
- 12) दे. दलित विमर्श के आलोक में - डॉ. रश्मि चतुर्वेदी, पृ.59
- 13) दे. दलित साहित्य और युगबोध - डॉ.एन.सिंह, पृ.25

राजेन्द्रयादव के कथा साहित्य में संवैधानिक मूल्य

डी. बी. केंद्रे

हिंदी विभाग

कै. डॉ. शंकरराव सातव कला व वाणिज्य

महाविद्यालय कळमनुरी जि. हिंगोली

प्रस्तावना

अपनी लेखनी में युगबोध की क्षमता रखनेवाले साहित्यकार राजेन्द्रयादव जी का जन्म 28 अगस्त, सन 1929 को उत्तर प्रदेश के आगरा शहर में एक सामान्य मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार में हुआ। मात-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची के साथ पले बड़े बालक राजेन्द्र पर बचपन से ही पारिवारिक संस्कर का प्रभाव रहा है। खेल कुद में विशेष रुची रखनेवाले राजेन्द्र के साथ बचपन में एक हादसा हुआ। आयुके बारह वे वर्ष में एक ऐसा हादसा हो गया की उनके जीवन की दिशा ही बदल गयी। हाँकी खेलते समय पैर फिसलने के वे गिर गये और उनके पैर की एक हड्डी टूट गयी जिसे डॉक्टर ने कट कर निकालना पड़ा। इस तरह राजेन्द्र जी एक पैर के से सदैव के लिए अपाहिज बन गये। ऐसे संकट की स्थिति में माता-पिता ने इन्हे बहुत ढाढस बंधाया। एक पैर से अपाहिज बने एक ही जगह पर बैठकर पढ़ने के लिए उन्हें अधिक समय मिला। उनके इसी अपाहीजपण ने उनकी बुद्धि में इतनी ताकत भर दी की हिन्दी साहित्य में युगान्तकारी साहित्यकार कहलाये। अपनी आयु के 16-17 वे साल से ही राजेन्द्र यादव अभिव्यक्त होना प्रारंभ किया। युवा अवस्था से ही प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहने के कारण से उनकी लेखनी में और भी पैनापण और निखार आ गया।

स्वयं राजेन्द्र यादव को किसी एक खुंटे से बंधे रहना कभी पसंद नहीं था और उन्होंने अपनी इसी इच्छा से अपने कथा साहित्य के पात्रों में आझादी की बयार भर दी है जो संवैधानिक मूल्यों की प्राथमिक सिद्धी है। भारतीय संविधान में स्वाधिनता के बाद अनेक संवैधानिक मूल्यों का समावेश किया गया है। जिस में स्वातंत्र्य समता, बंधुता, न्याय का समावेश है। सामाजिक चरित्र का निर्माण करने में इन संवैधानिक मूल्यों का अनन्यसाधारण महत्व होता है। हिंदी साहित्य में इन संवैधानिक मूल्यों को लेकर सदैव चिंतन हुआ है, राजेन्द्र यादव इसके लिए अपवाद कैसे हो सकते हैं। यादव जी की पुत्री 'रचना' ने अपनी बी.ए. की पढ़ाई पूरी कर अपनी मर्जी से खत्री जाति के पंजाबी युवक दिनेश खन्ना नामक युवक से अंतर्जातीय विवाह किया। पुत्री के इस निर्णय में पालक राजेन्द्र यादवजी ने सदैव सहयोग ही दिया है। उनके इस व्यवहार से पता चलता है कि, वे मानवीय मूल्यों को कितना आदर करते थे।

राजेन्द्र यादव लिखित कथा साहित्य के पात्र कस्बा, गाँव, देहात, शहर, महानगरों आदि सभी भारतीय परिवेश से आगे हैं। स्वयं राजेन्द्र यादव सभी अपनी व्यवस्था के गुलाब बने और ना ही कभी अपने पात्रों को व्यवस्था का गुलाम बनने दिया। राजेन्द्र यादव अपने अपने आप में एक बवण्डर था एक स्वतंत्र सोच थी जो आगे चलकर प्रवाह बन गया। अपनी सोच के संदर्भ में वे स्वयं लिखते हैं, "विचारधारा सूरज की तर होती है। सूरज की तरफ आप चौबीसों घण्टे देखेंगे तो अंधे हो जायेंगे। सूरज के प्रकाश से जो चीजे प्रकाशित होती हैं,

उनको देखिये। सूरज की रोशनी के बिना तो जिन्दगी चलती नहीं है। विचारधारा के बिना भी आप कुछ लिख नहीं सकते।”⁰¹

राजेन्द्रयादवजी स्वयं अपने जीवन में उन सामन्तवादी प्रवृत्तियों को सहा है भोगा है। इस सामन्तवादी प्रवृत्ति से मुक्त होने के लिए वे सदैव अपने लेखनी के माध्यम से टकराते हुए दिखते हैं। उन्हीं के शब्दों में, “सामन्तवादी प्रवृत्तियों से मुक्त होने की परीक्षाओं और प्रक्रियाओं से गुजरे बिना ही हमारा समाज अचानक साम्राज्यवाद और अपनिवेशवाद से मुक्त हो गया था और हमारे पास भारतीयता के नाम पर रह गया था सडा-गला सामन्तवादी नये युग की टकराहट स्तर - स्तर पर उसी से थी।”⁰²

राजेन्द्र यादव स्वयं एक प्रगतिशील लेखक रहे हैं। उनके जीवन और साहित्य में सदैव संवैधानिक मूल्यों की चर्चा हुई है। वे अपने जीवन को उन मानवीय मूल्यों तक पहुँचाना चाहते हैं जिसको सकल मानवता का विकास होना संभव है। मनुष्य अपने जीवन को सफलता की उन सिद्धियों से होकर उस मंजिल तक पहुँचाना चाहता है जो संवैधानिक मूल्यों की सजीवन रस पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। राजेन्द्र यादवजी ने ऐसे लेखक रहे हैं जिन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से मनुष्य को उन्हीं संवैधानिक मूल्यों पर चलने का सबक देते रहे हैं।

वे स्वयं लिखते हैं “मेरी सारी जिन्दगी इन अंधे कुओं से बाहर जाने की प्रक्रिया की तरफ जायेगा। अपने शरीर, भूगोल, मन और बुद्धि की सीमाओं के पार जाने की कोशिश उन्हें अतिक्रमित कर सकने का प्रयास.... जो कुछ मुझे दिया गया है, या मिला है, उससे उपर उठने के उपक्रम को ही आप मेरा विकास भी कह सकते हैं। वह मैंने अनुभवों के माध्यम से किया है, संबंधों के माध्यम से किया है और शायद किया है। स्वाध्याय के माध्यम से..... स्मृतियों में रहना, स्वप्नों में जीना मुझे बेहद प्रिय है, बहन होता तो लेखक बन सकना भी संभव नहीं था।”⁰³

राजेन्द्रयादव ने अपनी रचना ‘खेल’ में ‘लेखा’ नामक एक स्वतंत्र विचारधारावाली स्त्री का जीवन चरित्र बयान किया है। खेल की ‘लेखा’ का कुछ कारणों से विवाह नहीं होता। फिर भी वह अपने आपको स्वतंत्र एवं आज़ाद मानती है। वह कहती है, “मुझे नहीं अच्छी लगती शादी-वादी करके दुनिया-भर की तवालत पालना। आप - अपने मस्त और स्वतंत्र तब भी है।”⁰⁴

साहित्य आत्माभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम कहलाता है। और यह आत्माभिव्यक्ति आत्मा की तरह ही सत्यम्, शिवम् सुंदरम् होनी चाहिए। अपने वास्तविकता में ही इसकी सुंदरता है। राजेन्द्र यादवजी जीवनभर इसी लेखकीय स्वतंत्रता के पक्षधर रहे हैं। सौदाबाजी से या कल्पना विलास से मन को बहलाया जा सकता है परंतु मन को सहृदय की अनुभूति देने या द्रवित करने के लिए साहित्य में सत्यम्, शिवम् सुंदरम् का होना परम आवश्यक होता है। राजेन्द्र यादव के अनुसार “लेखक को स्वतंत्र होना चाहिए..... कोई भी समझौता उसे ईमानदार नहीं रहने देता। इसके लिए जरूरी है कि लेखक आत्मानिर्भर हो... लेखक से अलग ऐसी महत्वाकांक्षाएँ न पाली जाये जो या तो लेखन के साथ सौदा करने के लिए मजबूर करे या फिर चालाकी और झूठ की जिन्दगी में धकेल दे... इस लेखकीय स्वाधीनता के लिए बहुत कुछ छोड़ना होगा।”⁰⁵

भारतीय संविधान में वर्गवैषम्य को मान्यता प्राप्त नहीं है स्त्री -पुरुष समानता भारतीय परम्परा को एक मानवीय मूल्य है। किसी भी स्तर पर वर्ग वैषम्य मानव समाज को लगा एक कलंक है। राजेन्द्र यादव ने अपनी कथा-कहानीयों में वर्ग वैषम्य को मिटाने का काम किया है।

“सुधी जन जानने हैं कि भारतीय संस्कृति में वैवाहिक स्तर पर पुरुष का हर दृष्टि से श्रेष्ठ अथवा उच्च होना आवश्यक माना जाता है। आज 21 वीं शती में जहाँ उम्र में अपने से छोटे पुरुष से भी आधुनिक स्त्री विवाह करना पसंद करती है, वहीं पुरुष अपने पुरातन संस्कारों के चलते अपने आपको स्त्री से हीन समझने लगता है। यही बात वर्ग - वैषम्य को लेकर भी लागू होती है। वैवाहिक स्तर पर पुरुष का अभिजात्य वर्गी होना फिर भी सामान्य है परन्तु स्त्री का उक्त वर्ग से संबंधित होना वैवाहिक जीवन में खलबली पैदा कर सकता है।”⁰⁶

राजेन्द्र यादव मानवीय संबंध में प्राकृतिकता पर अधिक विश्वास रखते हैं। स्त्री-पुरुषों या पति-पत्नी के संबंध में नैतिकता पर टिका हुआ होता है। समाज के नवनिर्माण में सामन्तवादी दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता पर यादवजी जोर देते हैं। जीवन भर साथ साथ चलने के लिए पति-पत्नी को एक दूसरे के वैचारिक स्वतंत्रता आबाधित रखनी चाहिए। एक आदर्श समाज का निर्माण तभी होगा जब स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरों की भाव भावनाओं का आदर करें। “और जब दोनों के व्यक्तित्व इतने मुक्त रहेंगे कि एक दूसरे के बनने में, उसे मानसिक बल देने में समर्थ हो सकें, तभी तो एक का प्यार दूसरे को उठायेगा और आत्मा का सच्चा प्यार निखर कर आयेगा।”⁰⁷

सारांश

आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी हमारा स्त्री मुक्ति की बात करना हमारी दूषित सोच को दर्शाता है। इसके मायने यह होते हैं कि पुरुष वर्तमान में भी अपने अधिकार बाटने को तैयार नहीं हैं। स्त्री अपनी स्थिती, अधिकार एवं कर्तव्यों के प्रति सजग हो रही है। वर्तमान में अपना कम्पेनियन खूद चुन रही है। वह अपने सैक्यस्युअल संबंध की स्वातंत्र्य में क्रांतीकारी रूप में विचार कर रही है। हमारा संविधान एक तरफ स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय की बात कर रहा है तो वहीं दूसरी ओर हमने स्त्री की स्वतंत्रता को लेकर विचार करने के लिए तैयार नहीं हैं। राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य में चित्रित स्त्री अब इन अन्याय अत्याचार से परे जाकर अपने हिस्से का आनंद खोजना चाहती। उसे पाने के लिए वह वाजिब कदम भी उठा रही है।

संदर्भ सूची

01. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल - मेरे साक्षात्कार सं. राजेन्द्र यादव -पृष्ठ: 171-172
02. राजेन्द्र यादव - कहानी अनुभव और अभिव्यक्ति - पृष्ठ: 108
03. राजेन्द्र यादव वहाँ तक पहुँचने की दौड़, संग्रह - पृष्ठ: 14
04. राजेन्द्र यादव - खेल
05. राजेन्द्र यादव वहाँ तक पहुँचने की दौड़, संग्रह - पृष्ठ: 15-16
06. shodhganga.inflibnet.ac.in
07. राजेन्द्र यादव - उखड़े हुए लोग - पृष्ठ: 25

राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक भावना का चित्रांकन - 'जय भारत'

डॉ.धीरज जनार्दन व्हते

हिंदी-विभाग प्रमुख

संजीवनी महाविद्यालय, चापोली

हम सभी जानते हैं कि हमारा देश 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ। यह दिन हमारे जीवन में हर्ष और उल्लास भरता है। स्वतंत्रता आंदोलन को अहिंसात्मक बनाने के गांधीजी के संकल्प के कारण भारत में स्वतंत्रता की अधिकतर लड़ाई कलम से लड़ी गई। स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाले क्रांतिकारी और आंदोलनकारियों के साथ ही लेखक, कवि और पत्रकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आधुनिक युग में हमारे संवैधानिक मूल्य मानवीय दृष्टिकोण को नई सोच और नई ऊर्जा देकर जीवन को नई शक्ति प्रदान करते हैं। हिंदी साहित्य में मूल्यों की परंपरा सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य तथा मध्यकालीन कबीर, सूर, तुलसी आदि तथा आधुनिक युग में अनगिनत रचनाकारों का साहित्य यही संवैधानिक मूल्यों का निर्वाह करता है। वर्तमान साहित्य में मूल्यों का प्रतिफलन व्यापक धरातल पर हो रहा है। भारतीय संविधान में समता, स्वातंत्र्य, बंधुत्व, न्याय, धर्मनिरपेक्षता जैसे नए मूल्य समाए हुए हैं। इन विभिन्न मूल्यों को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी देखा जा सकता है। इस महत्वपूर्ण कार्य में डॉ रामकुमार वर्मा जी का साहित्य भी पीछे नहीं है। डॉ रामकुमार वर्मा हिंदी नाटक क्षेत्र में एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनकी अपनी मौलिक प्रतिभा है, अपना मोल क्षेत्र है और अपनी मौलिक संवेदना है। यह भारतीय संस्कृति के प्रचारक, प्रसारक तथा संरक्षक भी रहे हैं। डॉ रामकुमार वर्मा का हिंदी नाट्य साहित्य परंपरा में उल्लेखनीय योगदान है। डॉ रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'जय भारत' एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक नाटक है। इस नाटक में भारत के राष्ट्रीय इतिहास में गठित प्रथम स्वतंत्र संग्राम की बड़ी महत्वपूर्ण और रोचक कथा को चित्रित करने का प्रयास है, साथ ही भारतीयों के मन में राष्ट्रीय भावना, त्याग, तपस्या, विरत और आत्मबलिदान की भावना जागृत करने का भी प्रयास किया गया है। इस महायज्ञ में डॉ. रामकुमार वर्मा जी ने तत्कालीन समाज में राष्ट्रीय एकात्मता, बंधुता जैसे मूल्यों की चेतना जन-जीवन में भरने का उल्लेखनीय काम किया है।

'जय भारत' इस सांस्कृतिक नाटक की रचना डॉ. रामकुमार वर्मा जी ने सन 1980 में की है। यह नाटक भारतीय स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। भारत के राष्ट्रीय इतिहास में प्रथम स्वातंत्र्य-संग्राम की बड़ी महत्वपूर्ण और रोचक गाथा है। ईस्ट इंडिया कंपनी इस देश में केवल व्यापार करने के उद्देश्य से आई थी, परंतु उसने भेद - नीति और विश्वासघात के साथ कार्य किया, जिससे भारतीय जीवन कितना आक्रांत हुआ इसका परिणाम सन 1857 ई. का भारतीय विद्रोह था।

प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का परिवेश इतना व्यापक था कि उसे संपूर्ण रूप से किसी भी विधा में समाहित करना एक कठिन कार्य है। क्योंकि राष्ट्रीयता की सुरक्षा के लिए इस देश के प्रत्येक वर्ग में जन-मानस में जो लहरें उठीं यह कार्य किसी व्यक्ति तक सीमित नहीं रहा, वह सब का कर्तव्य बन गया था। सभी देश पर अपने प्राण न्योछावर करने के लिए तैयार थे। इतने व्यापक विषय को नाटक में व्यक्त करना कठिन कार्य होने की बात नाटककार ने लिखी है। "इसलिए जो परिस्थितियाँ प्रमुख रूप से इस संदर्भ में घटित हुई हैं, उनके समुचित आकलन का प्रयत्न इस नाटक में हुआ है। क्रांति की जो अग्नि, किसी स्थान - विशेष में प्रज्वलित हुई उसकी आँच किन-किन

स्थानों में अनुभव की गई और उसके परिणामस्वरूप जो विस्फोट विविध स्थानों पर हुआ उनको सम्यक रूप से प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न इस नाटक में किया गया है। जिन प्रमुख केंद्रों में क्रांति का आतंकपूर्ण उद्भव हुआ है, उन्हें अलग अंको में निरूपित किया गया है। इसलिए इस नाटक में अंको की संख्या सात हो गई है।¹

इस नाटक के आरंभ में नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा ने पूर्व रंग की स्थापना करते हुए एक नया प्रयोग किया है। पूर्वरंग में इस बात को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है कि भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की कुटिल नीति का निराकरण उसकी केंद्रीय समिति के द्वारा किया गया जा सके, परंतु कंपनी के अधिकारियों की छल और कपट से भरी हुई नीति ही सर्वत्र वर्तमान थी। तो उसके विरोध में क्रांति की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह गया। "क्योंकि अंग्रेज लोग अपनी बात के पक्के नहीं हैं। कल आश्वासन देते हैं और आज तोड़ देते हैं। और मजे की बात यह है कि जो इनका मित्र बनकर इनकी सहायता करता है उसी के गले पर ये अपनी खूनी खंजर चला देते हैं। इन पर विश्वास कर अपने आप को ही धोखा देना है।"² यह स्पष्ट है कि जिन केंद्रों में विप्लव हुआ, उनकी घटनाओं का यथावत निरूपण इस नाटक में किया गया है।

'जय भारत' नाटक सन 1857 की क्रांति में जिन महापुरुषों ने जनता का नेतृत्व करते हुए विदेशियों से संघर्ष किया, वे सहज ही वीर-पूजा के अधिकारी हुए हैं। यह बात दूसरी है कि इस संघर्ष में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसके अनेक राजनीतिक और आर्थिक कारण हो सकते हैं। किंतु जहाँ तक उनके आत्म-बलिदान की बात है, भारतीय इतिहास किसी प्रकार की शंका नहीं करता। जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच का भेदभाव न करते हुए भारतीयों ने अंग्रेजों से संघर्ष किया। "गरीबी और शोषण से हमारी जो जनता त्रस्त है हमें उसका उद्धार करना है, हिंदू और मुसलमानों से ही संयुक्त राष्ट्र का निर्माण होना है, तथा जिस आदर्श से प्रेरित होकर पंजाब के गुरु गोविंदसिंह ने, राजस्थान के राणा प्रताप ने, बुंदेलखंड के छत्रसाल ने और महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी ने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था, उसी आदर्श को लेकर हमें अपनी कमर कसनी है।"³ जय भारत नाटक के अंग्रेजों के द्वारा किए गए अत्याचारों को पढ़कर आज भी भारतीयों के आँखों में आँसू आ जाते हैं।

भारतीय सैनिकों को ऐसे कारतूस दिए जाते थे, जो गाय और सुअर की चर्बी से चिकनाई गए हैं। नाटक का एक चरित्र कहता है - "हम लोगों से कहा गया कि इन कारतूसों के टाटा मुँह से तोड़कर उन्हें इस्तेमाल में लाओ। आप ही बताइए कि हम हिंदू लोग चर्बी से चिकनाए गए कारतूसों को मुँह से लगाएंगे? यह बात हमारी भी है। क्या हम सुअर की चर्बी ओठों से छू सकते हैं? सुअर हमारे लिए हARAM हो गया है।"⁴ सैनिकों के हृदय में इस प्रकार धार्मिक आस्था कुचलने के विरोध में प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक भी। यह भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भारत के क्रांतिकारियों में किसी प्रकार साहस और उत्साह की कमी नहीं थी। "अगर लाखों सिपाहियों की यह सेना हमारे साथ हो तो भारत में मुट्ठी भर अंग्रेज हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं?"⁵ इस प्रकार के भारतीय प्रमुख क्रांतिकारियों में थे - बिठूर के नानासाहेब, बैरकपुर (कोलकाता) के मंगल पांडे, दिल्ली के सम्राट बहादुरशाह, बिहार के क्रांतिकारी नेता कुंवर सिंह, मंदसौर के फीरोजशाह, कालपी की ओर से बढ़ने वाले तात्या टोपे और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता से किसी भी देश का इतिहास गौरव-संपन्न हो सकता है। इस संदर्भ में डॉ रामकुमार वर्मा जी ने लिखा है कि अंग्रेजी इतिहासकार इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि इस देश की स्त्रियों में इतना अधिक मनोबल कैसे है कि वे पुरुषों से भी आगे बढ़कर अपने प्राण हथेली पर रखकर संग्राम भूमि में अपनी शक्ति का परिचय दे सकती हैं। महारानी लक्ष्मीबाई ने बाइस वर्ष की अवस्था में जो युद्ध-कौशल प्रदर्शित किया है, वह संभवतः संसार के इतिहास में पहली घटना है। महारानी लक्ष्मीबाई की शक्ति और साहस की ध्वजा युद्धों के इतिहास में सबसे अधिक ऊँचाई पर पर फहराती रहेगी। यह हमारे देश की परंपरा का सबसे ज्वलंत प्रमाण है कि पुरुषों के साथ

स्त्रियाँ भी कंधे-से-कंधा मिलाकर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर सकती हैं। भारतीयों के लिए ही नहीं बल्कि विदेशियों के लिए भी लक्ष्मीबाई आदर्श हो सकता है। जिस अपरिचित शक्ति से महारानी लक्ष्मीबाई में राष्ट्रीयता की शपथ ली थी और विदेशियों के आतंक से इस देश को मुक्त कर उसे स्वाधीनता की दिशा में अग्रसर करने का प्रयत्न किया था, वह इस देश के लिए ही नहीं विदेशों के लिए भी साहस के ध्रुव नक्षत्र की भाँति अटल होना चाहिए।

एक हिंदू या मुसलमान सब कुछ सह सकता है लेकिन अपनी संस्कृति का अपमान नहीं। उसके लिए वह अपने प्राण देने के लिए भी तैयार होता है। इस नाटक का एक चरित्र भोलाराम कहता है - नहीं इज्जत सही - सलामत नहीं रही। धर्म-पालन के लिए जिस सेना को जलील किया गया वे तो हमारे ही धर्म की हैं। अगर धर्म के पीछे उनका अपमान हुआ है, तो हम समझेंगे कि हमारा भी अपमान हुआ है। यही व्यक्तिगत अपमान राष्ट्र के स्तर तक पहुंच गया है। नाटक का एक चरित्र मंगल पांडे कहता है - "भाइयों! उठो-उठो रक्तचंडी को रक्त चढ़ाना है। अब हम एक-एक फिरंगी को काट कर रख देंगे। हमारा देश परतंत्रता में नहीं रहेगा। हम एक-एक फिरंगी को या तो काट कर रख देंगे या इस देश से बाहर निकाल देंगे! हमसे हमारे देश भक्ति तो नहीं छिन सकती।"⁶

देश और जाति के लिए जब व्यक्ति बलिदान करने को तैयार हो जाता है तो यही भावना देशभक्ति की भावना बन जाती है। नाटककार इस बात की पुष्टि एक चरित्र आमिर खाँ द्वारा करता है - "हम आखरी साँस तक तुम्हारा साथ देंगे हमें अपनी जान से ज्यादा अपना देश प्यारा है।"⁷ इस प्रकार रामकुमार वर्मा जी ने इस नाटक के उद्देश्य के संदर्भ में लिखा है - "मुझे विश्वास है कि इस नाटक से प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का संपूर्ण चित्र हमारे विद्यार्थियों को प्राप्त होगा और वे राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर त्याग, तपस्या, वीरत्व और आत्म-बलिदान की भावना से देश के महान नागरिक बनने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।"⁸

निष्कर्ष:

अंत में यही कहा जा सकता है कि इस नाटक में क्रांति की उस चिंगारी को प्रदर्शित किया गया है जिसने 1942 तक आते-आते अंगारे का रूप ले लिया। जिसकी तिखी आँच में सारी अंग्रेजी शक्ति जलकर राख हो गयी। इस नाटक के माध्यम से हिंदू - मुस्लिम एकता को दिखाने का प्रयास किया गया है। इस नाटक में राष्ट्रीय भावना देश और जाति की सीमा लांघकर मानवता का लक्ष्य बन गई है।

संदर्भ संकेत

1. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 412
2. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 428
3. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 434
4. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 437
5. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 433
6. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 441
7. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 442
8. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली- 2 (जय भारत) - डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा - 420

गोदान में राष्ट्रीय एवं समतावादी चेतना

प्रा.डॉ. सादिकअली हबीबसाब शेख,
हिंदी विभागाध्यक्ष,
कर्मयोगी तुळशीराम पवार महाविद्यालय,
हाडोळती, ता. अहमदपूर, जि- लातूर

प्रास्ताविक :-

आजादी का सपना पुरा कर दिखाने की उम्मीद से स्वाधीनता आंदोलन में सक्रीय सहयोग देनेवाले हिंदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद राहे हैं। उन्हें कलम का सिपाई कहा जाता है। प्रेमचंद ने अपनी कलम के हतियार से अंग्रेजों के अपने देश से भागाने हेतु योगदान दिया है। जैसे वे कई बार जेल जाकर भी अपना नाम बदलकर फिर से लेखन करने में अग्रसर रहे हैं। इसलिए इनके समग्र साहित्य में राष्ट्रीयता का भाव दिखाई देता है।

कथा सम्राट प्रेमचंद का लोकप्रिय उपन्यास "गोदान" भारतीय संस्कृति की अमर गाथा है। जिस में स्वातंत्र्यपूर्वकाल की समग्र परिस्थितियां प्रतिबिंबित होते दिखाई देती हैं। जिसमें समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, न्याय, मानवताधर्म, मूल्य आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है।

गोदान के प्रकाशन के समय समस्त भारतीय जनता शोषण और अत्याचारों की चक्की में पिस रही थी। राजनीति, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी दृष्टियों से जन साधारण का शोषण हो रहा था। जमींदारों के मध्यम से अंग्रेज ग्रामीण जनता का शोषण कर रहे थे। जिसका विरुद्ध भारतियों का असंतोष उमड़कर आ रहा था। दुसरी ओर जमींदार, पुंजीपति ढोंग राचाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ले रहे थे। शहरों के मजदूर वर्ग का और ग्रामों के शोषित वर्ग का शोषण हो रहा था।

गोदान में तत्कालीन भारतीय जीवन की उन समस्त घटनाओं और विचारों को उभारा गया है। जो कि, अपना राष्ट्रीय महत्व रखती हैं। 'गोदान' में राष्ट्रीय चेतना को प्रेमचंद ने प्रमुखता से स्वर दिया है। गोदान की रचना जिस सामाजिक पृष्ठभूमि में हुयी उसमें समाज पुरानी रूढ़ियों और जीवन की समस्याओं से मुक्ती पाने के लिए प्रयत्नशील था और आर्थिक क्षेत्र में वाह जमींदारों एवं पुंजीपतियों के शोषण से मुक्त होणे के लिए छटापटा रहा था। राजनीतिक क्षेत्र में भी भारतीय जनजीवन अंग्रेजी शासन की दास्ता से मुक्ती पाने के लिए आतुर था। गोदान की ग्राम और शहरी दोनों कथाएँ अविभाज्य रूप में तत्कालीन भारतीय युगजीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देती हैं।

गोदान की युगीन परिस्थितियाँ :-

प्रेमचंद ने तत्कालीन सभी परिस्थितियों का एम सजीव, प्रभावशाली और यथार्थ चित्रण किया है।

सामाजिक परिस्थिति :-

गोदान के युगीन समाज का यथार्थ चित्रण प्रेमचंद ने सजीव रूप में किया है। गोदान में ग्रामीण और शहरी समाज दोनों की सामाजिक समस्याओं का यथार्थ रूप में चित्रण हुआ है। तत्कालीन समाज में पारिवारिक जीवन सुखमय न होकर कलहग्रस्त था। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-बेटे, भाई-भाई, के बीच आये दिन झगडे हुआ करते थे। होरी गाँव के बहुत से लोगों के सामने अपनी पत्नी धनिया की पिटाई करता है। तत्कालीन ग्राम्य समाज में स्त्रीयों

को दुय्यम स्थान दिया जाता था | लडकियाँ बेच दी जाती थी तथा दहेज लडकियों के लिए अभिशाप बना हुआ था | होरी अपनी लडकी रूपा को अघेड उम्र के रामभरोसे के हाथ बेच देता है |

तत्कालीन समाज में जाती-पाँति के भेदभाव दृढ़ थे | संयुक्त परिवार विघटीत हो रहे थे, ऋण का भार किसानों के ऊपर बढ़ रहा था | समाज में बेकारी, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, बहुविवाह, जाँति-पाँति आदि से समाज बेबस था | इस प्रकार शहर के बड़े काहे जानेवाले खाँना जैसे मिल मलिक के बर्ताव का यथार्थ चित्रण प्रेमचंद के कथन में हुआ है |

“बड़े आदमियों की वह ईर्ष्या केवल आनन्द के लिए है | बड़ों को नीचता, कुटिलता मेही निस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है | खन्ना, रायसाहब को अपने मिल के शेयर खारिदने का सुझाव देते हैं और संपादक आँकारनाथ खन्ना की पत्नी गोविन्दी की प्रशंसाकर उनको अपने पत्र की संरक्षित बनाने का प्रस्ताव रखते हैं | वे रायसाहब की कमजोरी को पकड़कर उन से पाँच सौ ग्राहकों का चंदा ऐंठ लेते हैं | नगर का निम्न वर्ग गाँव में किसानों की तरह ही दरिद्रताग्रस्त था परंतु नैतिक दृष्टि से इसमें सदभावना थी | झुनिया को बच्चा होने पर चुहीया उसकी सेवा और सहायता करती है, शहर में शराब के दौर चालते थे | खन्ना मजदूरों की तरह ठरा न पीकर फ्रांस की शराब पिते थे |”¹

इस प्रकार तत्कालीन ग्रामीण और शहरी समाज जीवन का यथार्थ प्रतिबिंब चित्रित हुआ है |

राजनीतिक स्थिति :-

गोदान में प्रेमचंदने तत्कालीन राजनीतिक-स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है | वे राजनीतिक स्थिति में- गाँवों की राजनीतिक दशा तथा शहरों की राजनीतिक दशा का मार्मिक चित्रण करते हैं | गाँवों में जमींदार की स्थिति सर्वोपरी थी, उसके पश्चात मुखिया, महाजन, ब्राह्मण और पुरोहित का महत्व था | पंचायत का फैसला सर्वसामान्य होता था | जमींदार लगान में किसानों के खेतों को निलाम कर देते थे | ‘गोदान’ के युग में राष्ट्रीय आंदोलन अपनी उग्रता को नहीं पहुँच पाया था | कांग्रेस का आंदोलन देश के एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित था | इसकी बागडोर नागारों के हाथ में थी | ग्रामों में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव बहुत ही कम था | बेलारी की धनिया जैसी स्त्री भी इस सत्य को समझ चुकी थी कि- “जेहल जाने से सुराज्य नहीं मिल सकता”²

इस प्रकार गोदान में प्रेमचंदजी रायसाहब जैसे लोगों की राजनीति और राष्ट्रवादी स्वरूप का भांडाफोड़ निम्न प्रकार से करते हैं- “और सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि अब की हिज मेजेस्टी के जन्म दिन के अवसर पर उन्हें राजा की पदवी भी मिल गई | अब उसकी महत्वाकांक्षा संपूर्ण रूप से संतुष्ट हो गई | उस दिन खूब जश्न मनाया गया और इतनी शानदार दावत हुई कि पिछले सारे रिकॉर्ड टूट गए | जिस वक्त हिज एक्सहिज एक्सेलेन्सी गवर्नर ने उन्हें पदवी प्रदान की, गर्व के साथ राजभक्ती की तरंग उनके मन में उठी की उनका एक-एक रों उससे पल्लवित हो उठा | यह है - जीवन! नहीं विद्रोहियों के फेर में पड़कर व्यर्थ बदनामी ली, जेल गये और अफसरों की नजरों से गिर गये | जिस डी-एस-पी ने उन्हें पिछली बार गिरफ्तार किया था, इस वक्त वह उनके सामने हाथ बाँधे खड़ा था और शायद अपने अपराध के लिए क्षमा माँग रहा था |”³

इस तरह राजनीतिक दशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है |

धार्मिक परिस्थिती :-

‘गोदान’ के युग में धार्मिक आडंबर का बोलबाला दिखाई देता है | उस काल में धर्म के नाम पर समाज का शोषण हो रहा था | भाग्यवाद, कर्मवाद और ब्राह्मणवाद का प्रचार पाखंडियों के द्वारा हो रहा था | दातादीन कसकर

सूद लेते हैं, किसानों का शोषण करते हैं और उनका पुत्र मातादीन सिलीया चामरिन को घर में बिठाए हुये हैं, किंतु वे गाँव में पूज्य देवतासमान हैं क्यों कि वे पूजा-पाठ करते हैं और कथा भागवत बाँचते हैं।

ग्रामों में अंधविश्वास, कर्मकांड, भाग्यवाद प्रबल रूप में दिखायी देता है। होरी भाग्यवाद पर विश्वास कर समस्त दुःखों को सहता है बल्की, वही रायसाहब पूर्व जन्म वे पुण्या की बात कहकर मौज मजा करते हैं ग्राम-जनता धर्म-प्राण है। यह जनता द्वार पर गाय का होना स्वर्ग समान मानती हैं। किंतु होरी की यह इच्छा पूरी नहीं होती। इस तरह धनिया का दातादीन को दटकर उत्तर देना यह धार्मिक प्रतिवाद सिद्ध करता है। और सामने खड़े दातादीन से कहती है - "महाराज घर में न गाय है, न बच्छिया, न पैसा। यही पैसे हैं। यही इनका गोदान है"।

इस तरह प्रेमचंद के समय की युगीन परिस्थिती धार्मिक रूप से दुषित थी।

आर्थिक परिस्थिती :-

प्रेमचंदजीने गोदान में समकालीन आर्थिक वैषम्य का मार्किक, सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया है। आर्थिक विपन्नता और दरिद्रता की स्थिती बेलारी गाँव के होरी की ही नहीं थी बल्की, समस्त भारतीय किसानों की थी। जो अपना पसीना बहाकर अन्न उत्पन्न करता है, उसका वह सभी अन्न शोषक वर्ग उसके मुँह से निकाल लेते हैं और किसानों को पेट-भुखा रहकर मेहनत करना पड़ता है। यह निरंतर दुर्दशा का चित्र गोदान में यथार्थ रूप में व्यक्त हुआ है।

होरी और उसके घरकी आर्थिक विपन्नता से प्रताडित स्थिती समस्त भारतीय किसानों की स्थिती का प्रतिनिधित्व करती है। इसका सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुये प्रेमचंद कहते हैं। "माघ के दिन थे - होरी भोजन कर के पुनिया के मटर के खेत की मेड पर अपनी मडैया में लेटा हुआ था। चहता था, सर्दी को भूल जाए और सो रहे। लेकिन बार-बार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शित के झाँको से गिली पुआल-बिवाई फते पैरों को पेट में डालकर और हाथों को जन्धों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुह छीपाकर अपनी ही गरम साँसों से अपने को गरम करने की चेष्टा कर रहा था। --- जीवन में ऐसा तो कई दिन नहीं आया की, लगान और महाजन को देखकर कुछ बचा हो"।

इस प्रकार गोदान में आर्थिक विपन्नता, दरिद्रता, वैषम्यता का सजीव चित्र यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष :-

इस तरह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि, गोदान में युगीन राष्ट्रीय एवं समतावादी चेतना का यथार्थ चित्रण हुआ है। युगीन, तत्कालीन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के साथ प्रेमचंद ने राष्ट्रीय चेतना, समता, स्वातंत्र्य, न्याय, बंधुता आदि भावों को पत्रों के माध्यम से प्रवाहित किया है। अपनी कलम से राष्ट्रीय चेतना एवं समतावादी दृष्टि को लेकर प्रमुखता से स्वर दिया है। तत्कालीन सभी परिस्थितीयां, समस्याओं का सजीव, यथार्थ चित्रण हुआ है। इसीलिए प्रेमचंद और उनका अमरउपन्यास गोदान यह देश काल का सच्चा बेजोड़ उपन्यास के रूप में लोकप्रिया हुआ है। इसतरह समस्त उपन्यास में संवैधानिक मूल्य दिखाई देते हैं।

संदर्भ सूची :-

- १) प्रेमचंद और गोदान - श्री राकेश - पृ. १०४
- २) गोदान - प्रेमचंद - पृ. ३१२
- ३) प्रेमचंद और गोदान - श्री राकेश - पृ. १०१
- ४) गोदान - प्रेमचंद - पृ. ३२०
- ५) प्रेमचंद और गोदान - श्री राकेश - पृ. १०३

मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' में संवैधानिक मूल्य

प्रा. विद्या बाबूराव खाडे

कला महाविद्यालय नांदुरघाट

ता. केज. जि. बीड 43112

आज की ग्रामीण नारी के हृदय में समानता की भावना पाई जाती है। आधुनिक युग में ग्रामीण नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। वह पुरुष के समान ही आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में समानता की मांग करने लगी है। वह वर्तमान सामाजिक वातावरण में निस्पंद गतिशील जीवन जीना नहीं चाहती है। आज उसका जीवन क्षेत्र विशाला और व्यापक हो गया है। वह स्वतंत्र रहकर जीवन बिताना चाहती है।

आज की जागरूक नारी जटिल परिस्थितियों में पूर्ववर्ती नारी के समान घुटने टेकने के बजाय अपार बल युवा शक्ति से उसका निराकरण करती है। आधुनिक ग्रामीण नारी पुरुष की संपत्ति मात्र न रहकर उनकी सहभागिनी होकर जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह सिद्ध करना चाहती है कि नारी का भी हृदय होता है, वह स्वयं निर्णय ले सकती है और सामाजिक दायित्व को भलीभाँति निभा सकती है। अपने दायित्व को समझने और निभाने में अनेक सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करती है। वर्तमान समाज में उस पर होने वाले अन्याय अत्याचारों का धीरे से सामना करती है। वह आज कोर्ट कचहरी तक जाने को तैयार है।

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की नारी पात्र अल्मा है। अल्मा राम सिंह की एकलौती बेटी हैं। राम सिंह एक अध्यापक हैं। फिर भी कबूतरा होने के अभिशाप से पीड़ित हैं। अपनी बेटी की सुरक्षा उसे सदा ही वह सताती है। इसके लिए उसे पुलिस के गलत कामों में साथ देना पड़ता है। यही उसकी व्यवस्था तथा मजबूरी है। अल्मा 4 साल की ही थी उसे माँ के प्रेम से वंचित रहना पड़ा था। दूसरे बच्चे के जन्म के समय कमजोरी की वजह से उसकी माता का निधन हो गया। छोटी सी अल्मा राम सिंह काका के लिए परेशानी का कारण बन गई थी। कदाचित उसका संबंध कबूतरा समाज से ना होता तो अल्मा की परवरिश की कोई गंभीर बात ना होती किंतु राम सिंह भले हो सभ्य समाज में रहता हो कबूतरा होना पुलिस के लिए पर्याप्त था। पुलिस छोटी-छोटी वारदात के लिए राम सिंह काका को आकर घेर लेती थी। उसका परिणाम अल्मा की परवरिश पर होता था।

अल्मा कबूतरा समाज से दूर रहे इसलिए राम सिंह ने उसे पढ़ाने का निर्णय लिया। मंत्री जी ने अल्मा के सौंदर्य का वर्णन राणा कदम भाई का बेटा के जरिए किया है - "आई बप्पा। बाई का बेटा आई बप्पा कोयल की - सी महीन बोली। भीतर से गले की चुन्नी सँभालती हुई। एक लड़की निकली। तेजी से बाहर आती है। गुलाबी सलवार पहने हुए छाती पर दो लंबी लंबी काली छुट्टियां पड़ी हैं। कद होगा राणा के कान तक।" (1) राणा ने बिना पलकें उठाए बहुत कुछ देख लिया - "नुकीली चोटीवाला गोरा चेहरा नाक में लोग चमकती है। कानों में बालियाँ और बड़ी-बड़ी आंखें 13 वर्ष की हैं या 14 वर्ष की।" (2) तेरह चौदह वर्ष की अल्मा के जीवन में प्रवेश करता है। चंचल तथा सुंदर अल्मा को राणा देखता ही रह जाता है। अल्मा की बड़ी बेटी गोल आँखें तथा लंबी चोटियाँ उसे बुत बना देती है। 13 वर्ष की अल्मा की दाँत उजले और पंक्ति बंद हैं। उसकी मुस्कुराहट देख राणा स्तब्ध रह जाता है।

पिता रामसिंह के घर पूरा आराम था किसी बात की कोई कमी नहीं थी। अल्मा के साथ राणा को खेलने के लिए राम सिंह कहता है - "अरे तू दिन भर के बाहर बैठा रहता है

। अल्मा के संग खेल लिया कर । ताश , कैरम, लूडो, साँप - सीढ़ी ।” (3) अल्मा साँप सीढ़ी आदि खेल में दक्ष है । अल्मा बड़ी समझदार है ।

अल्मा और राणा की दोस्ती बढ़ जाती है । दोनों की नजदीकियाँ एक दूसरे के अंतर्मन को ढूँढ लेती हैं और दोनों में प्रेम हो जाता है । अल्मा राणा पर एक पत्नी के समान अधिकार जताने लगती है । उसकी यही अधिकार की भावना सभी बंधनों को तोड़कर शारीरिक संबंधों तक पहुँचती है। वह राणा को अच्छी लगती है। राणा को अलग कमरे में सोते देखकर अल्मा कहती है - “ मेरे कमरे की ओर कभी आए तो देखना ? बप्पा से कहकर सिपाहियों से पिटवाऊँगी । ” (3) अल्मा की अधिकार भावना जाग उठती है । राणा और अल्मा के संबंध से अल्मा की कोख में आकर लेने लगती है । अल्मा गर्भवती हो जाती है । राम सिंह के संदिग्ध व्यवहार को देखकर गलतफहमी का शिकार राणा अल्मा को बीच रास्ते में छोड़ कर भाग जाता है।

अल्मा राणा को सब कुछ समझाने के लिए सही वक्त ढूँढते - ढूँढते एकदम अकेली हो जाती है । राम सिंह द्वारा लिया गया कर्ज को उतारने के लिए अल्मा को ही गिरवी रखा जाता है । तभी दुर्जन सही कहता है - “ आराम से जिंदगी जोंक की तरह पड़ गई है ,साला ढोंगी , नाटक बाज । अल्मा तू गिरवी रखी है , भला। इसमें बुराई भी नहीं। हम कबूतराओं में तो यह चलन रहा है - जेवर ,गहना , बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं । अब तू खरीदी हुई । ” (4) पिता मां का कर्ज उतारने के लिए उसकी देह का उपयोग कर बड़े लोगों को खुश करना चाहता है । सूरज भान कबूतरा समाज की औरतों का उपयोग करता है ,यह एहसास दिलाने के लिए उसकी बाँह पर “अल्मा कबूतरी ” गूँदवाता है । जिसे देखकर वह हर बात को नियति समझकर झेल सके ।

श्री राम शास्त्री की नजर में अल्मा साँचे में ढले शरीर की सुंदर लड़की है । नंगे बदन पर गोरी उजियारी बिखरी हुई थी । सत्रह - अट्ठारह साल वाली जवानी कायम थी श्री राम शास्त्री उसके रूप को देखकर मोहित हो जाते हैं । अल्मा श्री राम शास्त्री के हर कार्य में सहायता करती है । अल्मा अब उनकी कमजोरी बन जाती है । चुनाव के प्रचार कार्य से भी अल्मा के बिना भी कुछ नहीं कर पाते हैं ।

श्री राम शास्त्री से ही नहीं संतोले और उसकी बहू से भी सावधान रहना जान गई थी । अल्मा को दुनियादारी का बहुत ही ज्ञान आ गया था । श्रीराम शास्त्री अब अल्मा के साथ विवाह कर लेता है । “ अल्मा परामर्श में मैत्री सी सेवा में दासी - सी , खिलाने - पिलाने में माता - सी और सेज पर रंभा - सी! श्री राम शास्त्री के यहाँ का तौर तरीका अल्मा के सलीके का मोहताज हो उठा था । ” (5) श्री राम शास्त्री की हत्या हो जाती है। अल्मा दुख के सागर में डूब जाती है। रोने लगती है । सज धज कर रहने वाली अल्मा अब सफेद साड़ी में खुद को देख नहीं पाती है । फिर भी साहसता के साथ स्वयं श्री राम शास्त्री की चिता को अग्नि देकर साहसता, वीरता का परिचय देती है ।

निष्कर्ष :

अल्मा अपने जीवन में कई अत्याचार अनाचार सहती हुई, निर्भीकता- सा हर संघर्ष के साथ आगे बढ़ती है । अल्मा जैसी इसी दलित नारी जब समाज की जड़ता को तोड़ती और परंपराओं की रूढ़ियों को चुनौती देती है, तो वह बात नारी चेतना को शक्ति और प्रेरणा बन जाती है ।

संदर्भ :

- 1) आंचलिक उपन्यासों में नारी चेतना - पृ. 61
- 2) अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा - पृ.09
- 3) अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 122

मध्यकालीन संत काव्य में संवैधानिक मूल्य

प्रा.डॉ.वीरश्री वशिष्ठजी आर्य

हिन्दी विभाग

वैद्यनाथ कॉलेज, परली—वै.

समस्त संसार के जितने भी प्राणी हैं उनमें केवल मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि सभा, प्रशासन, समिति, व्यवस्था कामकाज का ब्योरा इन सभी का सूत्रपात सिर्फ मानवों में ही पाया जाता है। तभी सृष्टि की निर्मिति के साथ निर्माण हुए ऋग्वेद, अथर्ववेद में सामान्य लोगों की सभा और वरिष्ठ जनों की समिति के जरिए शासन, प्रशासन के कामकाज की व्यवस्था का जिक्र है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पाणिनी के अष्टाध्यायी के साथ ही एतरेय ब्राह्मण, मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में शासन की व्यवस्था, उसके अलग-अलग अंगों के अधिकार जैसी बातों का ब्योरा है। अशोक के शिलालेख भी एक तरह से शासन व्यवस्था का ही बखान करते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद भारत में संविधान सभा का गठन किया गया। १६५ दिन चली २९६ सभासदों की बैठक ने डॉ.राजेंद्र प्रसाद जी की अध्यक्षता में काम किया पर मुस्लिम लिग के विरोध के चलते बी.एन. राउ को जिम्मेदारी दी गयी। जिन्होंने ७ देशों के संविधान की जाँचकर एक ड्राफ्ट बनाया जिसे डॉ.आम्बेडकर की कमिटी को सौंपा गया। एक वर्ष की गहन चर्चा के बाद २६ नवम्बर १९४९ को ड्राफ्ट स्वीकार किया गया।

भारतीय संविधान केवल एक किताब नहीं है वह भारत की आत्मा है। जिसमें संवैधानिक मूल्य को दर्शाते मौलिक अधिकार जो हर व्यक्ति को समान होते हैं, वे अनुच्छेद १४ से १८ तक सभी भारतीय नागरिकों के लिए उद्घृत हैं।

अनुच्छेद १४ समानता की व्यापक परिभाषा देता है। समानता भारत में रह रहे, हर व्यक्ति को हासिल है। चाहे वह भारत का हो या भारत से बाहर का। हर व्यक्ति इसमें कानून की नजर से बराबर है। अनुच्छेद १५ से १८ केवल भारतीय नागरिकों के लिए ही है। जिसमें भारत में रह रहे किसी भी भारतीय व्यक्ति के साथ धर्म, भाषा, जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं हो सकता।

समानता का उपरोक्त संवैधानिक अधिकार जिसको भारतीय जीवन प्रणाली में नित्य व्यवहार, स्वभाव, गुण, धर्म, जाति, प्रशासन व्यवस्था को ध्यान में रख हमारे मध्यकालीन कवियों ने अपने पदों, दोहों, कवित्त में उपदेश रूप में उतारा है। जिसे संवैधानिक मूल्य के रूप में इस शोध पत्र में सोदाहरण दर्शाया जाएगा।

संत कबीर, संत रैदास, निपट—निरंजन, बिहारी, रहीम जैसे संतों ने समता के संवैधानिक अधिकार को समाज में पिरोने का महत्वपूर्ण कार्य अपने काव्य द्वारा किया है। संत कबीर अपने दोहे में मनुष्य के भीतर उपजे षट् विकारों को जड़ से समाप्त करने का संदेश देते हैं और कहते हैं —

“काम क्रोध, मद, लोभ की, जब लग घट में खॉन।

कहाँ मूर्ख कहाँ पंडित, दोनों एक समान।”^१

अर्थात् समाज में व्याप्त मनुष्य के भीतरी शत्रुओं की खान को कबीर जैसे संतों ने मूर्ख और विद्वान दोनों में समान रूप में देखी तो दोनों के अवगुणों के कारण दोनों का समान उद्देशित कर कह दिया। संसार के सारे कष्ट दुःखों का कारण कुछ है तो वह मनुष्य के भीतर के काम, क्रोध, मद, लोभ इनसे दूरी साधने का संदेश संत कबीर देते हैं। दूसरी और संत कबीर वर्गभेद को भी स्वभाव का कारण बताते हुए कहते हैं

“दीन गरीबी बंदगी, सबसे आदर भाव।

कह कबीर तेही बडा, जामें बडा सुभाव।”^२

संसार में बड़ा वह है जो दीन दुखियों और गरीबों से समान रूप में व्यवहार करे वही व्यक्ति बड़ा है।

संत रैदास जाति धर्म की समानता के विषय में अपने दोहों से समाज के बुद्ध प्रबुद्ध लोगों को सम्बोधित करते हैं—

“जन्म जात मत पूछिये, का जात अरु पात।

रविदास पूत सभ प्रभू के, कोऊ नहिं जात कुजात॥”^३

संविधान की समानता के बावजूद आज भी जाति—पाति का प्रश्न वैसा ही है जैसा की मध्यकाल में था, समाज में उपजे जाति—पाति के कटि को उखाड़ फेंकने का काम तब भी हुआ था और आज भी हो रहा है। सभी जानते हैं मनुष्य का जन्म एक जैसे होता है, मृत्यु एक समान होती है। व्यक्ति का बोलना, चलना, खाना, उठना, बैठना, देखना सभी क्रियाएं हर व्यक्ति समान रूप से एक जैसे तरीके से करता है, फिर भी एक दूसरे से उसकी जाति लोग पूछ ही लेते हैं। तभी संत रैदास कहते थे—

“रविदास जन्म से कारनै, होत न कोउ नीच।

नर कूं नीच करि डारि है, औछे करम कौ कीच॥”^४

सत्य है ‘जन्मना जायते शूद्र, कर्मणाद्विजोच्यते’ जन्म से सभी मनुष्य शूद्र होते हैं किन्तु कर्म से वह हर व्यक्ति ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है जो कुकर्मों से बचकर सत्कर्म में इस देह को लगाता है।

जन्म, जाति भेद से बचाने और मनुष्यों के चरित्र को ऊँचा उठाकर उसको सत्कर्म में लगाने का कार्य हमारे मध्यकालीन संतों ने किया तो समाज में धार्मिक, साम्प्रदायिक दूरियों ने घर किया। उसपर भी तर्क बुद्धि द्वारा समाज में समानता का संदेश देनेवाले हमारे संतों ने अपने पदों (पद्यों) से लोगों को समझाया। जब सब को दो हाथ, दो पैर, दो आँखे, दो कान हैं तो बताओं हम अलग कैसे हुए?

“जब सभ करि दोउ हाथ पग, दोउ नैन दोउ कान।

‘रविदास’ पृथक् कैसे भये, हिन्दू—मुसलमान॥”^५

संत रैदास ने अपने काव्य द्वारा हिन्दू—मुसलमान की एकता की बात मध्यकाल में ही की थी यही नहीं दोनों के आंतरिक भेदभाव को मिटाने हेतु मंदिर—मस्जिद के झगड़े और राम रहमान के नामों के झगड़ों को मिटाने का प्रयास भी अपने पदों द्वारा गाकर सुनाया गया और लोगों को सिधी साधी भाषा में समझाया गया—

“मंदिर मसजित दोउ एक है, इन मंह अंतर नाहि।

‘रविदास’ राम रहमान का झगड़ा कोउ नाहि॥”^६

सबके लिए व्यवस्था समान होनी चाहिए, समाज में जाति, धर्म, लिंग का भेद न हो सबको राज्यव्यवस्था में समान व्यवहार, समान आहार का प्रावधान हो, अमीरी—गरीबी का भेद न हो। प्रसन्नता पर सबका समान अधिकार हो। ऐसे विचार मध्यकालीन संत कवियों के थे, जो आज समाज में सुव्यवस्था, सुशासन को दर्शाते नजर आते हैं—

“ऐसा चाहौ राज में, जहां मिलैं सबन कौ अन्न।

छोटो बडो सम बसै, ‘रविदास’ रहे प्रसन्न॥”^७

जिस प्रकार सद्यः सरकार, व्यवस्था, प्रशासन को कामकाज की शक्ति आज संविधान प्रदान करता है। तथा कामकाज का दायरा भी निश्चित करता है, ठीक उसी प्रकार संत मध्यकाल में साहित्य द्वारा समाज, सत्ता, व्यवस्था का प्रशासन व कामकाज का दायरा अपने काव्य द्वारा राजा तथा प्रजा के सम्मुख प्रस्तुत करने का साहस रखते थे। कई बार संतों को निडरता के साथ सत्य उजागर करने तथा राजा को प्रजा की पीड़ा दर्शाने पर दंडित भी किया गया। फिर भी रहीम जैसे संतों ने शासन को आईना दिखाते हुए कहा—

“रहिमन देखि बडेन को लघु न दीजिए डारि।

जहाँ काम आवैं सूई— कहा करै तलवारि॥”^८

किसी को छोटा समझकर उसे दूर नहीं करना चाहिए, क्योंकि जहाँ सूर्य काम कर सकती है, वहाँ तलवार की क्या आवश्यकता है? संत रहिम समाज में व्याप्त कुसंग पर भी अपने विचार रखते हैं। वे कहते हैं— आप अच्छे विचारवाले हैं तो संगति भी वैसे ही सुसंगति करो क्योंकि जब तक समान विचारवाले, समान ध्येयवाले, समान चित्रवाले एकसाथ नहीं आएंगे तब तक सुशासन, सुव्यवस्था संभव नहीं होगी।

सांसारिक लोगों को भी स्नेहभाव द्वारा ओतप्रोत कर संत बिहारी गृहस्थ में भी समानता का संदेश बड़ी ही कुशलता के साथ गृहस्थियों को समझाते हुए कहते हैं—

‘तौ पर वारौ उरबसी, सुनि राधिके सुजान।

तू मोहन कै डर बसी, है उरबसी समान॥’^९

समानता का भाव गृहस्थ में अपनी पत्नी संग लाने का उपदेश करते संत बिहारी ने उर्वशी—राधा को समान सौंदर्यवाली दर्शा दिया।

संसार के कर्मों का चक्र ऐसा चलता है कि रंक भूपाल बन जाता है और भूपाल कंगाल, धनवान् व्यक्ति गुणवान् होना चाहता है और गुणवान् धीमान् होना चाहता है तो संतों ने स्पष्ट रूप से कहा है— भीतर के सारे विकार, विषयों को दूर करके सब प्राणिमात्र से समान रूप से बर्ताव करने लग जाए, तो व्यक्ति के सभी सांसारिक समस्या का समाधान केवल एक संवैधानिक मूल्य ‘समानता’ से ही समाप्त हो जाए।

जिस संविधान की निर्मिति ही हमारे ऋग्वेद, अथर्ववेद, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पणिनी की अष्टाध्यायी, एतरेय ब्राह्मण ग्रंथ, मनुस्मृति और अशोक के शिलालेखों को मध्यनजर रखते हुए हुयी है। वो संविधान गलत कैसे हो सकता है। तभी तो ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा है—

‘समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥’^{१०}

हो विचार समान सबके चित्त मन सब एक हो।

ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हो॥

संदर्भ सूची

१. मध्यकालीन कविता (मध्यकालीन कवियों की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन), सम्पादक— डॉ. माधव सोनटक्के, डॉ. सुकूमार भंडारे, पृ. २५
२. वही, पृ. २५
३. वही, पृ. २८
४. वही, पृ. २८
५. वही, पृ. २९
६. वही, पृ. २९
७. वही, पृ. ३०
८. वही, पृ. ५१
९. वही, पृ. ४७
१०. ऋग्वेद—१० म.

महानगरीय जीवन में बदलते मानव मूल्य उपन्यास 'तिसरा आदमी'

डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ

सहयोगी प्राध्यापक,

हिंदी विभागाध्यक्ष,

शिवाजी महाविद्यालय, हिंगोली

जि. हिंगोली.

शोध सार-

मानव जीवन का मार्ग सच्चा और प्रामाणिक होना आवश्यक है। मानव का सुख दूसरे के लिए कष्टप्रद नहीं होना चाहिए। मानव सुखी रहे परन्तु उसका सुख ऐसा न हो कि दूसरे का सुख समाप्त हो जाये। स्वयं के जीवन की रोटी दूसरे के जलते हुए जीवनरूपी तवे पर नहीं सेंकना चाहिए। ये सब सुख की क्रूर चेष्टायें हैं। सामाजिक मूल्य समाप्त होकर उसके स्थान पर आधुनिकता के अनेकों नये विचार समाज में आ गये हैं। आधुनिक विज्ञान युग में सभी प्रकार की सुख सुविधाओं की वस्तुओं का निर्माण किया गया है। इसलिए सम्पूर्ण मानव समाज सुख सुविधाओं में व्यस्त है। ये सब ऐश्वर्ययुक्त सामाजिक जीवन होने के कारण आज की परिस्थिति में मानव जीवन में स्थिरता नहीं दिखाई देती है।

मुख्य शब्द- व्यक्ति में पनपे तनाव, दबाव, कुंठा, अकेलापन, अलगाव, ऊब, परायापन, कृत्रिमता, आत्मीयता का अभाव आदि

मानव का व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन के बिना अपूर्ण है। व्यक्ति का जीवन व्यक्त स्वरूप में दिखाई दे अर्थात् उसका जीवन सामाजिक हो। मानव जीवन का मार्ग सच्चा और प्रामाणिक होना आवश्यक है। मानव का सुख दूसरे के लिए कष्टप्रद नहीं होना चाहिए। मानव सुखी रहे परन्तु उसका सुख ऐसा न हो कि दूसरे का सुख समाप्त हो जाये। स्वयं के जीवन की रोटी दूसरे के जलते हुए जीवनरूपी तवे पर नहीं सेंकना चाहिए। ये सब सुख की क्रूर चेष्टायें हैं। सामाजिक मूल्य समाप्त होकर उसके स्थान पर आधुनिकता के अनेकों नये विचार समाज में आ गये हैं। आधुनिक विज्ञान युग में सभी प्रकार की सुख सुविधाओं की वस्तुओं का निर्माण किया गया है। इसलिए सम्पूर्ण मानव समाज सुख सुविधाओं में व्यस्त है। ये सब ऐश्वर्ययुक्त सामाजिक जीवन होने के कारण आज की परिस्थिति में मानव जीवन में स्थिरता नहीं दिखाई देती है।

कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् देश आधुनिकताबोध की ओर उन्मुख हो गया। कई प्रगतिशील योजनाएँ प्रारंभ हुईं, परन्तु इच्छित उन्नति की प्राप्ति नहीं हुई। भारतीय समाज आर्थिक दृष्टि से मज़बूत नहीं था। मध्यवर्ग आर्थिक तनाव में तड़पने के लिए विवश हो गया था। ग्रामीण जनता अभावग्रस्त जीवन से मुक्ति की लालसा में शहरों की ओर चल पड़ी। कस्बों तथा गाँवों से व्यक्ति नगरों, महानगरों में जाकर बसने लगे। कमलेश्वर जी स्वातंत्र्योत्तर जनजीवन के हर पहलू से पूर्णतः अवगत थे। वे समाज के निम्न मध्यवर्गीय एवं मध्यवर्गीय जीवन के बहुमुखी पक्षों से पूर्णतया परिचित थे। कमलेश्वर की रचनाएँ स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते जीवन की स्पष्ट दस्तावेज हैं। इस बदलते परिवेश के हर पहलू को उन्होंने सम्यक् रूप से उभारा है। उनकी रचनाओं में कस्बाई मनोवृत्ति,

महानगरीय जीवन के सर्वतोन्मुखी बदलाव , सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम आदि की अभिव्यक्ति स्पष्ट द्रष्टव्य है । उनके उपन्यास , कहानी , आलोचना , पटकथा आदि सभी विधाओं में इनकी झलक मिलती है ।

रचनाकार कमलेश्वर की ख्याति भले ही एक पटकथा लेखक या एक सरल कहानीकार के रूप में रही हो तो फिर वह एक उपन्यासकार है यह हमें ध्यान में रखना होगा। लगभग एक दर्जन श्रेष्ठ उपन्यासों का सृजन कार्य करते हुए उन्होंने विषयवस्तु के अनूठेपन की बुनियाद पर अपना अलग अस्तित्व निर्माण किया जिसमें उनकी उपन्यास यात्रा अपनी, मूल्यवत्ता सिद्ध कराती है। बहुआयामी दायित्व वहन करने वाले कमलेश्वर ने साहित्य की सभी विधाओं में सृजन कर्म किया है। जिसमें समस्या पर कलम चलाई, परम्परागत मानदण्डों से अलग साहित्य का निर्माण किया। जीवन के अन्तिम समय तक वे मार्क्सवादी वामपंथ विचारधारा पर अटल रहे। किसी भी संवेदनशील लेखक के माध्यम और पक्षधरता के सिवा और कार्य मानवीय सत्य था ही नहीं और न अभी है यानी शोषित, वंचित मानवता के पक्षधर। कमलेश्वर वामपंथी बनकर मानवता के पक्षधर तो रहे ही परन्तु मानवीय सृष्टि में विचरण करने वाले अन्य जीवों को भी नहीं भूले।

स्वतंत्रता के बाद महानगरीय परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण उनकी कहानियाँ तथा उपन्यासों में दृष्टिगत है । एक मध्यवर्गीय परिवार में जन्म लेने के कारण वे उन परिस्थितियों एवं मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं से परिचित थे । इसीलिए उनके प्रारंभ कालीन उपन्यासों एवं कहानियों में कस्बाई मध्यवर्गीय विसंगतियाँ अधिक झलकती हैं । " कमलेश्वर जी मुंबई , दिल्ली जैसे महानगरों में रहे हैं । वहाँ के व्यक्ति में पनपे तनाव , दबाव , कुंठा , अकेलापन , अलगाव , ऊब , परायापन , कृत्रिमता , आत्मीयता का अभाव आदि से भी वे परिचित थे । इसलिए उनकी दूसरी दौर की रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति हुई है । महानगरीय जीवन में मानव के बदलते मूल्यों को चित्रित किया गया है। परम्परागत मूल्यों को त्यागकर संवैधानिक मूल्यों को अपनाकर अपना जीवन यापन करता शहरी मनुष्य का रेखांकन अपने उपन्यासों में किया है।

'तीसरा आदमी' कमलेश्वर जी का आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ यह उपन्यास है जो मानव मन की परतों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करता है। नरेश का परिवार संयुक्त पद्धति का पुरस्कार करता है। इसीलिए उसे लगता है, घर में पत्नी आने की बजाए बहू आने वाली है, क्योंकि अब तक कोई भी चीज किसी एक के नाम लिखकर नहीं आयी। कमलेश्वर जी ने 'तीसरा आदमी' उपन्यास में संयुक्त परिवार का पुरस्कार किया है। छोटे परिवार, पति-पत्नी तक ही सीमित रह जते हैं। लेखक ने हिन्दु विवाह पद्धति की भी आलोचना की है। कर्मकाण्ड का प्रखर विरोध भी किया है। परन्तु एक बात मुझे स्पष्ट दिखाई दी है, वह यह कि हिन्दु पद्धति में जो विवाह प्रक्रिया चार-पाँच दिनों तक चलती है, होम-हवन होता है। जिसके कारण दुसरे के प्रति आत्मीय भाव पैदा होता है। उसका हमें समर्थन ही करना होगा।

प्रस्तुत उपन्यास में नरेश एक प्रमुख पात्र है। वह शिक्षित युवक है। उसे प्रयागराज में रेडियो उद्घोषक के पद पर काम मिलता है। नरेश का विवाह चित्रा से हो जाता है। विवाह के बाद नरेश को प्रयागराज छोटा शहर लगता है। उसकी इच्छा थी कि दिल्ली जैसे महानगर में चित्रा को लेकर जाये और मजे से जिन्दगी व्यतीत करे। दिल्ली में सुमंत नौकरी करता है, जो नरेश का दूर के रिश्ते का छोटा भाई है। दोनों के विवाह में सुमंत भी आता है। नरेश विवाह के दिन से ही अनुभव करता है कि सुमंत उसके वैवाहिक जीवन पर छाता जा रहा है। सुमंत के प्रसन्न खुले व्यक्तित्व के कारण चित्रा को उसकी निकटता अच्छी लगने लगती है। सुमंत

दोनों से दिल्ली में आने का आग्रह करता है। नरेश की महत्वाकांक्षा भी यही थी कि महानगर में जाकर नौकरी करें। नरेश प्रयागराज से दिल्ली ट्रांसफर करवा लेता है। लेकिन वहाँ जाने के बाद जो समस्याएँ उपस्थित होती हैं, वह अवर्णनीय हैं।

महानगरीय जीवन से ऊबते हुए मनुष्य के सामाजिक और पारिवारिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं। उपन्यास में महानगरीय जीवन की यांत्रिकता, कोलाहन, भीड़ तथा व्यक्ति का अकेलापन एवं संवादहीनता की स्थिति का चित्रांकन हुआ है। इस उपन्यास की कथा पति-पत्नी के सम्बन्धों के बीच तीसरे आदमी की अनुभूति ही सम्पूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहती है। शादी, नौकरी, ट्रांसफर, आर्थिक अभाव और पति-पत्नी के बीच संशयवृत्ति को लेखक ने सूक्ष्मता से चित्रित किया है। महानगरीय चकाचौंध जीवन के कारण पति-पत्नी के पवित्र संवैधानिक मूल्य भी नष्ट हो रहे हैं।

आर्थिक अभाव और कम वेतन के कारण नरेश को सुमंत के बदबूदार घर में सपत्नीक रहना पड़ता है। दोनों सुमंत के दिल्ली की बाहरी चकाचौंध, सड़कें, होटल, गार्डन और नई से नई इमारतों के बीच भी नरेश और गंदे बदबूदार मकान में सुमंत के सहारे रहने पर विवश हैं।

यही आर्थिक संकट पति-पत्नी के मध्य भावात्मक दूरियाँ पैदा करता है और धीरे- धीरे शरीरिक दूरियाँ भी। नरेश का सशक्त मन सुमंत और चित्रा के मध्य आकर्षण के लक्षण अनुभव कर निरन्तर उद्विग्न रहता है। उपन्यास की विशेषता है। तीसरा आदमी उपन्यास में एक तरफ संकट बोध से संघर्ष करता तथा इस सबके बीच से अपनी पहचान एवं व्यक्तिगत की सार्थकता की खोज पुरुष है, तो दूसरी ओर परम्परागत रुढ़ियों से मुक्त होकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास चाहती हुई नारी है।

सुमंत और चित्रा को लेकर नरेश अत्यधिक बेचैन है। संशय का भूत बढ़ते-बढ़ते उसके व्यक्तित्व को दोगला बना देता है। वह चित्रा को छोड़कर भाग जाना चाहता है। उसकी नजर में विवाह व्यक्ति को समाज की ओर ले जाने वाली पवित्र क्रिया है, किन्तु जब यह क्रिया कहीं भंग हो जाती है तो व्यक्ति भी टूट जात है। वह अपने प्रति और समाज के प्रति अपने सभी दायित्व बोधों को भुला देता है। समाज और कानून चाहे जो भी कहे परन्तु सच्चाई यह है कि पति-पत्नी के बीच मनमुटाव और दूरियाँ पैदा हो गई हों तो सारे बंधन झूठे साबित होते हैं। चित्रा की स्त्री सुलभ इच्छा अपेक्षाओं को पूरा करने में नरेश असमर्थ है। ऐसी स्थिति में चित्रा का सुमंत के प्रति लगाव और झुकाव सहज संभव है। महानगरीय जीवन में अपनी आशा आकांक्षाओं को पूरा न होने के कारण उसे पूरा करने के लिए वैवाहिक जीवन के सारे मूल्य खूँटी पर टांगकर अपने अपना स्वार्थ साध रहे हैं। जिससे पारिवारिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं उसकी परवाह उन्हें नहीं है।

चित्रा उच्च शिक्षित युवती है, वह दिन भर अकेली घर में ऊब जाती है। वह बेचैनी महसूस करती है। इसलिए सुमंत उसे प्रेस का प्रूफ दुरुस्त कराने का काम दिलवाता है। इस काम में सिलसिले में सुमंत और चित्रा करीब आते जाते हैं। एक लेखक का प्रूफ पढ़ते समय चित्रा को क्रोध आता है, जो नारी के प्रति लेखक का वक्तव्य तथा दृष्टिकोण अच्छा नहीं है। नारी पर चरित्र हीनता के आरोप उस लेख में लेखक ने लगाये थे। चित्रा क्रोध में आकर कहती है तुम्हारे ये लेखक नारी को समझते-वमझते कुछ नहीं, सिर्फ दिल की भड़ास निकालते हैं।

चित्रा का क्रोध कम करने के लिए सुमंत उसे कई प्रकार के तर्क देता है। नरेश दिल्ली के वातावरण से ऊब जाता है। उसका कीं बाहर जाने को मन करता है। उन्हीं दिनों उसे सात दिन के लिए ओ.बी. के सिलसिले में बाहर जाने का अवसर प्राप्त होता है। इसकी जानकारी वह चित्रा और सुमंत को देता है। सुमंत भी तीन-चार दिन के लिए आगरा जाने की बात कहता है। परन्तु वापस आने पर नरेश को यह पता चलता है कि सुमंत की आगरा जाने की बात झूठ थी। अपनी अनुपस्थिति में वह चित्रा और सुमंत को दिल्ली रेल्वे स्टेशन पर पति-पत्नी की तरह कंधे पर हाथ रखकर टहलते हुए देख लेता है। नरेश के पैरों तले की जमीन ही खिसक जाती है। वह कहता है- शादी तो इस बात की गारन्टी नहीं है कि पुरुष और नारी प्यार भी करेंगे ही।

महानगर में जीने वाले सभी व्यक्ति अपने आपको आत्मकेन्दीत होकर जीवन जी रहे हैं। परम्परागत मूल्यों को त्यागकर वे आत्मकेन्दीत होकर जीवन जी रहे हैं। कमलेश्वर के विचार में पति-का वह परम्परागत रिश्ता टूटता जा रहा है। नरेश के मन में सुमंत को लेकर चित्रा पर संशय मजबूत होता जाता है और इसी स्थिति में नरेश को पता चलता है कि चित्रा गर्भवती है। ऐसी हालत में वह दिल्ली से बाहर ट्रांसफर कर लेने की सोचता है। वह पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर अपने पिता के पास भोपाल चला जाता है। वह वापस दिल्ली लौटना नहीं चाहता। अपनी छुट्टी एक महीना आगे बढ़ा देता है। वह चित्रा और सुमंत के जीवन में बाधा नहीं बनना चाहता। नवजात घर में आने के पहले वह तय कर लेना चाहता है कि शिशु उनके बीच मजबूरी का शिकार न बने। नरेश को यह भी लगने लगता है कि चित्रा और सुमंत की जिन्दगी में वह स्वयं खलनायक न बने। परन्तु नौकरी का सवाल था इसीलिए छुट्टी खत्म कर दिल्ली वापस आकर एक दूसरे मित्र के मकान में रहने लगता है। उसी दरमियां चित्रा प्रसव के लिए मायके जाती है। चार महीने बाद चित्रा से पत्र द्वारा समाचार मिलता है कि- नरेश बाप बन गया है। उसे चित्रा से घृणा होती है परन्तु अबोध बच्चे को एक नजर देखने की ललक उसके दिल में पैदा होती है। वह चित्रा को पत्र द्वारा दिल्ली लौटने के लिए लिखता है। पिछली सारी बातें भूलकर फिर से नई जिन्दगी शुरू करने का निश्चय करता है। चित्रा के दिल्ली लौटने के बाद नरेश उसे अपने अन्य मित्र के कमरे में रहने के लिए ले जाता है। लेकिन पुत्र गुड्ड की आकस्मिक बीमारी में सुमंत पुनः घर में प्रवेश करता है। 'तीसरे आदमी' में पुनः प्रवेश से नरेश परेशान हो जाता है। वह महसूस करता है कि, जब भी मैं ऑफिस से घर आता, दरवाजे के पास रुकता और दस्तक देता तो लगता कि वह छाया मुझसे पहले पहुँच चुकी है और हमने दो दस्तकें दी हैं।

समाज का वातावरण बदल रहा है। समाज में नये मूल्य और नये सिद्धांत लेकर जीनव जीने की नई पद्धति जन्म लेकर जीवन जी रही है। हर एक व्यक्ति अपने संवैधानिक अधिकारों के आधार पर जीना चाहता है। आज की स्त्री पुरुष पर निर्भर न रहकर अकेली जीवन व्यतीत कर सकती है। वह पति को भगवान का रूप देने को तयार नहीं है और न उसके जुल्म सहने के लिए तैयार है। लेखक ने चित्रा को आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है।

नरेश की अनुपस्थिति में अन्ततः सुमंत और चित्रा नये पति-पत्नी के रूप में साथ रहने लगते हैं। एक बार नरेश दिल्ली आकर सुमंत से बदला लेना चाहता है। चित्रा को अपना बनाकर उसे साथ ले जाना चाहता है। परन्तु चित्रा की दृढ़ता के कारण उसे सफलता नहीं मिलती। वह हताश होकर चित्रा को छोड़कर पटना वापस

लोट आता है। उसे बहुत बाद में पता चलता है कि किसी होटल के कमरे में जाकर सुमंत ने आत्महत्या कर ली है।

सारांशतः मानव ने आधुनिक युग में अपना जीवन सुधारा है ऐसा मानना है। सुधार के नाम के साथ आने वाले दुर्गुण , खाने - पीने , नाच - गाने उठाईगीरी तथा जुआँ आदि से मानव की बलि होती है । अनेक लोगों का संसार उजड़ रहा है । इन गुण - अवगुणों से मनुष्य चौपट हो गया है । केवल आनन्द लूटने की वजह से मनुष्य इस आदत से स्थिर हुआ है । किसी को भी चैन नहीं है । शान्ति नहीं तथा सन्तोष नहीं है । मानव किसी भी क्षेत्र में क्यों न हों सभी आर्थिक तथा सामाजिक दुर्दशा के कारण परेशान दिखाई दे रहे हैं । युवा पीढ़ी की तो इनसे भी अधिक स्थिति खराब है । उनके आगे अनेक समस्याएँ हैं । अनेकों युवक मुश्किल से शिक्षा प्राप्त करके प्रतिवर्ष बेकार हो रहे हैं । समय के अनुसार उनके जीवन की अनेक आकांक्षायें बढ़ गई हैं । उनमें कहीं भी तालमेल नहीं दिखाई दे रहा है । वे शिक्षित अवश्य गये हैं परन्तु उन्हें जीवनयापन का ज्ञान नहीं मिला है । वे बेकार दिखाई देते हैं । वे दशाहीन , दिशाहीन तथा हताश हुए दिखाई देते हैं । ऐसे बेकार , अशांत युवकों की लाखों की तादाद विश्व में बढ़ रही है । बेकारी से किसी तरह नौकरी पा लेते हैं तो फिर सामाजिक दायित्व निभाने में असफल दिखाई दे रहे हैं। विवाह व्यक्ति को समाज की ओर ले जाने वाली पवित्र क्रिया है, किन्तु जब यह क्रिया कहीं भंग हो जाती है तो व्यक्ति भी टूट जात है। वह अपने प्रति और समाज के प्रति अपने सभी दायित्व बोधों को भुला देता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि महानगरीय जीवन से ऊबते हुए मनुष्य के सामाजिक और पारिवारिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं। वह आत्मकेन्द्रीत होकर जीवन जीने के लिए उत्प्रेरित है। इसलिए महानगर में जीवन ज़ापन करने वाला हर एक व्यक्ति अपने संवैधानिक अधिकारों के आधार पर जीना पसंद कर रहा है।

कालजयी कथाकार कमलेश्वर हिन्दी साहित्य जगत के बहुचर्चित, लोकप्रिय, केन्द्रीत तथा सशक्त रचनाकार रहे हैं। भले ही वे आज हमारे बीच मौजूद नहीं हैं, किन्तु मौजूद है उनका रचनात्मक योगदान और मौजूद है साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सक्रियता। 'तीसरा आदमी' उपन्यास की नायिका चित्रा एक स्वाभिमानि चरित्र है। आर्थिक स्वावलम्बन के कारण अपने बच्चों के साथ दिल्ली में जीवन बिताने का निश्चय करती है। वह परम्परावादी नारी नहीं है पति के बगैर स्त्री समाज में जी सकती है, इसकी वह मिसाल है। कमलेश्वर ने 'तीसरा आदमी' उपन्यास में महानगरीय जीवन से ऊबते हुए नरेश को कस्बे की ओर जाता हुआ चित्रित किया है।

संदर्भ सूची

1. कमलेश्वर, तीसरा आदमी, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली -2002
2. शर्मा आनंद, उपन्यासकार कमलेश्वर , मेधा बुक्स, एक्स-11. दिल्ली - 2002
3. प्रसाद व्दारिका, हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यास और उपन्यासकार, विद्याभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली- 2006
4. राय गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. स. 2013

सलाम आखिरी उपन्यास में सामाजिक न्याय को तरसती वैश्या

प्रा. संतोष येरावार

देगलूर महाविद्यालय, देगलूर

सलाम आखिरी उपन्यास में समाज द्वारा दिन में तिरस्कृत और रात में स्वीकृत वैश्या स्त्री के जीवन की वास्तविकता, संघर्ष और घृणा को मधु कांकरिया ने गहराई से उघाड़ा है। मधु कांकरिया जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज के उपेक्षित वर्ग को न्याय देने का कार्य किया है। सामाजिक अन्याय का शिकार वैश्या सदा से प्रताड़ित, उपेक्षित, अपमानित और घृणास्पद रही हैं। सामाजिक विषमता, और पाखंड के कारण वैश्याओं के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। वैश्या पुरुषों के उपभोग का साधन है परंतु वह समाज के द्वारा अस्वीकृत है। सामाजिक विडंबना और विकृतियों का ही परिणाम है कि ना उन्हें शिक्षा मिलती है, न न्याय, न मान-सम्मान अगर कोई स्त्री वैश्या व्यवसाय छोड़कर मुख्य प्रवाह में आना चाहती है तो उसे प्रताड़ित कर तिरस्कृत किया जाता है। उनके बच्चों को स्कूलों में दाखिला नहीं मिलता, सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार बनी है। उसका संपूर्ण जीवन न्याय के लिए तरसता है। चकला चलाने वाले, दलाल, पुलिस, समाज का तथाकथित पुरुष वर्ग तथा वैश्या गमन के लिए आया ग्राहक सभी के द्वारा वैश्या ओपर अन्याय किया जाता है। और न्याय को तरसती वैश्या का अंत अत्यंत दयनीय होता है।

समाज में व्याप्त विविध समस्याएँ उनके उपन्यास का प्रमुख विषय बने हैं। 'खुले गगन के लाल सितारे' इस उपन्यास में नक्सलवाद की समस्या को, 'पप्ताखोर' उपन्यास में युवकों की नशे की समस्या को, 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में नारी यातना, नारी का सामाजिक, धार्मिक शोषण और नारी संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। 'सुखते चिनार' में सामाजिक समस्याओं को तो 'हम यहाँ थे' रचना में अंधविश्वास और धार्मिक आडंबर को उघाड़ा है। मधु जी ने समाज के विविध महत्वपूर्ण विषय को अपने लेखनी के माध्यम से समाज तक पहुंचाने का प्रयत्न किया है। २००२ में प्रकाशित सलाम आखिरी उपन्यास में मधु जी ने वैश्याओं के जीवन में व्याप्त विडंबना, विकृति, संघर्ष एवं वैश्या के प्रति पुरुषों और समाज की मानसिकता तथा सामाजिक अन्याय को उघाड़ा है। स्त्री को बाजार वस्तु की तरह बिकना पड़ता है यह वैश्या जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। वैश्यावृत्ति प्राचीन काल से मानव समाज में विद्यमान है। वैश्या के प्रति पुरुषों का रवैया अत्यंत भ्रमित, विकृत, तिरस्कृत होता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के लिए कोई सम्मानित स्थान नहीं है। शोषण, संघर्ष, असमानता, परिवार में निम्न स्थान और अन्य किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं है। ऐसे समाज में वैश्या अत्यंत निम्न कोटी की तिरस्कृत नारी बन जाती है।

'सलाम आखिरी' उपन्यास में कलकत्ता के सोनागाछी, बहू बाजार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर, लालबती में चलनेवाले वैश्या व्यवसाय और वैश्याओं के जीवन, मानसिकता और समस्याओं को उघाड़ा है।

मधु जी ने नूरी, कृष्णा, रमा, नलिनी, गायत्री, जूली, चंद्रिका, पिकी, कजली, माया आदि के माध्यम से वैश्या व्यवसाय में होने वाले शोषण, वैश्याओं की आर्थिक सामाजिक स्थिति, जनमानस की वैश्याओं के प्रति मानसिकता, वैश्याओं के जीवन की त्रासदी और समस्याओं को अपनी वास्तविकता के साथ अभिव्यक्त किया है। वैश्या के प्रति समाज की मानसिकता के विषय में मधु जी उपन्यास की भूमिका में कहती है, "समाज में

वेश्याओं की मौजूदगी एक ऐसा चिरंतन सवाल है, जिससे हर समाज, हर युग में अपने-अपने ढंग से जूझता रहा है, वेश्या को कभी लोगों ने सभ्यता की जरूरत बताया, कभी कलंक बताया, कभी परिवार की किलेबंदी का बाई-प्रोडक्ट कहा और कभी सभ्य, सफेद पोश दुनिया का गटर जो उनकी काम कल्पनाओं और कुंठाओं के कीचड़ को दूर अंधेरे में ले जाकर डंप कर देता है।" मधु जी ने वेश्या व्यवसाय करने वाली महिलाओं के जाना पहचाना और लालबत्ती की नग्नता, क्रूरता, घृणा, तिरस्कार, मजबूरी और भयावहता को उघाड़ा है। वेश्या बनने के विविध कारणों को भी मधु जी ने अधोरेखित किया है।

गरीबी, प्रेम में विश्वास घात, पति द्वारा जबरन वेश्याव्यवसाय, भौतिक साधनों की लालसा, बलात्कार आदि कारणों से अधिकतर वेश्या मजबूरन देह व्यापार करती हैं। गांव में बाढ़ के कारण निर्माण भुखमरी और आर्थिक विपन्नता के चलते नूरी अपने पड़ोस की लड़की के पास कलकत्ता आती है। उसे लगता है वह लड़की शहर में नौकरी करके अपने गांव पैसे भेजती है तो नूरी भी काम की तलाश में आती है और कलकत्ता आने के बाद उसे पता चलता है उसकी पड़ोस वाली लड़की देह व्यापार करती है। नूरी भी मजबूरन ना चाहते हुए देह व्यापार करने लगती है। बांग्लादेश की दो लड़कियों को उनकी खाला पैसों की लालसा के कारण कलकत्ता घुमाने के नाम पर बेचने का प्रयास करती है। बच्चों की मां होने के बावजूद गायत्री जैसी लड़कियों को उनके पति शरीर व्यवसाय करवाते हैं। नलिनी जैसी लड़कियां प्रेम के नाम पर फस जाती है और वेश्या व्यवसाय स्वीकारती है। नलिनी को उसका प्रेमी गांव भगाकर लाता है और चकले पर बेच देता है। वर्तमान में प्रेम के नामपर केवल वासना को महत्व दिया जाता है और अनेको लड़कियां शादी से पहले गर्भवती हो जाती है। ऐसे लड़कियों को ना परिवार स्वीकार करता है न समाज वासना कि शिकार लड़कियां देह व्यापार करने लगती है। कॉलेज की युवतीयां भौतिक लालसा और बाहरी चकाचौंध के मोह माया में फसकर कॉल गर्ल बनकर हॉटलो में देह व्यापार करती है। माया कोमल कमसिन लड़कियों को वेश्या व्यवसाय में लाती है। ताकि अधिक पैसे मिल सके।

बाजार में देह की बढ़ती मांग को पुरुषों की वासना, शहरी चकाचौंध, जल्दी अमीर बनने की लड़कियों की मानसिकता, बलात्कार, प्रेम का विकृत रूप और शरीर सुख की लालसा के कारण सर्वत्र देह व्यापार फल फूल रहा है। कलकत्ता में तकरीबन पचास हजार वेश्याएं और महानगरों में दस लाख से अधिक लड़कियां देह व्यापार करती है। जिसमें 14 वर्ष की लड़कियों से लेकर 40 वर्ष तक की नेपाल, भारत और बांग्लादेश से हैं। जो संज सवर कर अपने शरीर को बेचने के लिए खड़ी हैं, मधु जी के शब्दों में, "लीपि-पुती देह। आंखों में भविष्यहीनता। चेहरे पर सस्ता और भड़कीला मेकअप। रंगे होंठ। सस्ती चमक के आभूषण। चटक और सस्ती किस्म की पोशाकें। प्लास्टिक की चप्पले। कहीं चमड़े की भी। प्रतीक्षा के लाखों कल्प। अठराह से लेकर बयालीस की उम्र की लगभग सभी वारांग नाएं। तरह-तरह की बंगाली, नेपाली, और आगरा वाली। एक नजर में न हुस्न के जलवे। न अदाओं का जादू। न कला। न श्रृंगार। न साज, न आवाज। सिर्फ देह मादा देह।"¹

मधु जी ने कलकत्ता के लालबत्ती में वेश्या व्यवसाय करने वाले वेश्याओंका, वहा के परीवंश का, दलालों द्वारा वेश्याओं के होने वाले आर्थिक शोषण का भी चित्रण किया है। जिस घर में वह देह व्यापार करती हैं वह मकान और इलाके अत्यंत बदबूदार होते हैं। आरोग्य की कोई सुविधा नहीं है। लाल बत्ती इलाके में हाफ रेट,

फूल रेट, दलाल और ग्राहक के कलह को भी मधु जी ने उद्घाटित किया है। कोई ग्राहक हाफ रेट देकर फूल का मजा उठाना चाहता है। दलाल लड़कियों को कम मेहनताना देते हैं। चकला चलाने वाली मालकिन, दलाल, ग्राहक और वेश्याओं के बीच गाली गलौच और लड़ाई झगड़े होते रहते हैं। पंकी ग्यारह वर्षों से देह व्यापार करती हैं परंतु अपने लिए कुछ बचा नहीं पाती है। दलाल और चकले की मालकिन मालामाल होती है और वेश्याओं के हिस्से मात्र पीड़ा, शोषण, घृणा, दरिद्रता और बीमारी आती है। दलालों का एकमात्र काम ग्राहक लाना फिर वह कैसा भी क्यों ना हो। “सर, सर इधर चलिए... बस थोड़ा सा आगे, पटाखा माल है, जोरदार चीज। हां हां सर बस गारंटी ही समझिए... बस सर, एक नजर देख कर लीजिए... आप भी क्या याद रखेंगे!”² दलाल का एक मात्र उद्देश्य होता है अपनी जेब गरम करना और ग्राहक को फसाना जिस कारण चकले में हमेशा विवाद होते रहते हैं। दलाल ग्राहक से कहता है, “सर, सुनिए तो, उनकी बहुत वैरायटी है। आगरा वाली, नेपाली, बंगाली और सर मोहंडन भी है, खालिस मुसल्ली... कसम से सर, अरे झूठ क्यों बोलूंगा सर, और झूठ बोल भी दु तो भी क्या, सोलहा साल की कुड़ी तो जवान होनी है....”³

वेश्या जीवन अत्यंत दयनीय और घृणित होता है। लड़कियों को जवान होने तक उनके चकले में रखा जाता है और जैसे जैसे उसकी उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे उसके अवस्था सोचनीय हो जाती है। रेशमी को चकले की मालकिन हकाल देती है और रेशमी भीख मांगने के लिए मजबूर हो जाती हैं और दर-दर की ठोकरें खाकर मर जाती हैं। अनेको वेश्याएँ गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो जाती है। रेशमी को भी एड्स जैसी जानलेवा बीमारी हो गई थी। गंभीर आरोग्य विषयक समस्या वेश्या जीवन का अंग बन गया है। अशिक्षा के कारण वेश्याओं का सार्वत्रिक शोषण होता है। दलाल, चकला मालकिन, सामान्य जनता, पुलिसवाले सभी उनको नोचने लगते हैं। औरतों के मजबूरी का फायदा उठाने में पुरुष अपनी महत्ता समझता है। सलाम आखरी उपन्यास की पंकी “मरणासन्न अवस्था में है, पर मरणा नहीं चाहती वह वेश्या, उसकी मा वेश्या, अपनी बच्ची भी इसी दुनिया में या खुदा। इस दुनिया ने रंडी बनाया शायद वह दुनिया इतनी बुरी ना हो। पंकी मर जाती है, उसकी बेटी रेशमी एच. आय. व्ही. पॉजीटीव है, पर वह इलाज करवाना नहीं चाहती। वह प्रतिशोध लेना चाहती है।”⁴

सामाजिक अन्याय हि स्त्री को वेश्या बनने के लिए मजबूर करता है। पुरुष अपने स्वार्थ के लिये स्त्री का उपयोग करता है। उसे अपनी वासना का शिकार बना कर वेश्या व्यवसाय के लिये मजबूर बनाता है। सामाजिक विषमता का शिकार मात्र स्त्री होती है जिसे न्याय के लिए सर्वस्व दांव पर लगाना पड़ता है। वेश्या बनने के लिए मजबूर स्त्री और पुरुषों की विकृत, विक्षिप्त और वासनांध मानसिकता की वास्तविकता को मधु जी ने उघाडा है, “नुरी को माता पिता ने कलकत्ता काम के लिए भेज दिया उसे पाच छह वर्ष की बालिका को संभालाना था। मालिक रात को टॉफी का लालच देकर अपने पास बिठाता, धीरे धीरे उसे बिस्तर पर धकेल देता। इसी उपन्यास की नलिनी गांव में रहती थी। छह भाई बहनो का परिवार खेती करते मां बाप रोज रोटीयां गिनते थे। एक बड़ी उम्र का मर्द नलिनी को कभी बिन्दी कभी चॉकलेट, कभी पायल देता, कभी समोसे खिलाता था। छह महिने होते न होते नलिनी उससे प्रेम करने लगी। दोनों ने घर से भागकर विवाह कर लिया और कलकत्ता में रहने लगे। दो तीन के बाद ही नलिनी को उसने वेश्या बाजार में बेच दिया। इसी उपन्यास की वेश्या माया को एक ग्राहक दिखा ले गया। पुरे दिन रखा वहा उसके तीन दोस्तो ने बारी बारी से खुल्लम खुल्ला एकही कमरे में....”⁵

मधु जी ने सामाजिक अन्याय के शिकार वैश्या कि पिडा को वाणी प्रदान की है। वैश्या जीवन की क्रूरता का भयावह चेहरा मधू जी ने उघाडा है। "हमारे भाग्य में न खुशनुमा बचपन है, न शांत पौढावस्था। हमारे भाग्य मे सिर्फ सडक और जांघ होती है। वैश्या जीवन के संघर्ष की हकीकत से जुडे वाक्य पाठक को झकझोर कर रख देते। ग्राहको बनाम सभी उम्र के पुरुषों की यौनेच्छा को संतुष्ट करने की खातिर वैश्याए रोज बली का बकरा बनने को मजबूर है। उनके जीवन की बड़ी विडंबना है की देह के एवज में तो उनके साथ सहानुभूती रखी जाती है, न ही साधारण इंसान जैसा सुलूक किया जाता है। महज पेट भरने के लिए चंद रुपयो के आलावा कुछ नही मिलता।"⁶ वैश्या के साथ अमानविय व्यवहार सफेद पोष वर्ग की पशुता का प्रतीक है। वैश्या का जीवन विडंबना और विकृतीयो से भरा होता है।

सलाम आखरी उपन्यास वैश्या जीवन की वास्तविकता, त्रासदि, क्रूरता, भयावहता, कुरूपता, विडंबना, विषमता और घृणा को प्रखरता से उघाडता है। सामाजिक अन्याय, धार्मिक प्रथा - परंपरा, पुरुषी मानसिकता, सामाजिक कुरितियों के कारण वैश्या सदियों से प्रताडीत, तिरस्कृत और अपमानित रही है। उपन्यास मे चित्रित सामाजिक अन्याया के अनेको दृष्टांत समाज की आंखे खोलने का कार्य करते है। आर्थिक लालसा के कारण पंकी तेराह वर्ष के उम्र मे वैश्या व्यवसाय में लाई जाती है। रेशमी को चकला मालकिन निकाल देती है और वह भीख मांगकर जीने को मजबूर हो मर जाती है। नलिनी को प्रेम जाल में फाँसकर वैश्या बनाया जाता है। वैश्या पंकी के भाई राजा को स्कूल मे प्रवेश नही दिया जाता। पुलिस वाले बैरकपूर के महिला के साथ सामूहिक बलात्कार करते है। कजली वैश्या व्यवसाय छोडकर चोंका बर्तन करणा चाहती है। परंतु उसे समाज का कोई तबका स्वीकार नही करता। नुरी पेट की भूक मिटाने के लिए कलकत्ता जाती है और दुसरा काम न मिलने के कारण वैश्या व्यवसाय करती है। चकले की मालकिन मीना से शरीर व्यवसाय करवाती है परंतु दाम आधा देती है। पती-पत्नी से वैश्याव्यवसाय करवाते है। अनेको उदाहरण वैश्या के सामाजिक तथा आर्थिक अन्याय के उपन्यास में चित्रित है। सामाजिक बहिष्कार, गाली गलोच, मारपीट, दोगला पुरुष वैश्याओं का उपभोग भी करता है और उसे कुलटा कलंकिनी, नीच एवं पतित भी कहता है। अपाहीज समाज, सामाजिक अन्याय, पुरुषी विषाक्त मानसिकता, आदि वैश्या की दुर्दशा का कारण है। न्याय को तरसती शोषित, पिडीत, वंचित, उपेक्षित एवं घृणित वैश्या जीवन का जिवंत दस्तऐवज सलाम आखरी उपन्यास हैं।

संदर्भ सूची

- 1) सलाम आखरी - मधु कांकरिया, पृ. सं. १४
- 2) वही पृ. सं. 14
- 3) वही पृ. सं. 14
- 4) मधु कांकरिया का रचना संसार, डॉ. उषा किर्ति राणावत, पृ. सं. 29
- 5) वही पृ. सं. 128

अज्ञेय की कहानियों में संवैधानिक मूल्य

प्रा. डॉ. मोहन मुंजाभाऊ डमरे

माधवराव पाटील महाविद्यालय, पालम

जि. परभणी- 431720

बारावीं शताब्दी में काश्मीर से राजवंश का इतिहास राजतर गिनी में लिखा है। कि राज्य के प्रमुख कर्तव्य है। धर्म पालन एवं प्रजा को अभय प्रदान करना इससे पता चलता है कि, युगो से मानव मूल्यों का मानव जीवन में महत्व रहा है। बारावीं शताब्दी के पहले महापुरुषों ने जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना कर पूरे संसार को रोशनी प्रदान की। वहीं मूल्य विविध रंग बदल बदल कर समय-समय पर जिंदा धड़कनों की स्वर देते रहे। यह जीवन मूल्य समाज संस्कृति और राष्ट्र की परम्परा से जुड़े थे आधुनिक युग में भी यही मूल्य हमारे मानवीय दृष्टिकोण को नई सोच और ऊर्जा देकर जीवन की बंजर और भयावह भूमि सीखने और जोतने की शक्ति प्रदान कर रहे हैं। मूल्यों की दृष्टि से सबसे बड़ी क्रान्ति आई जब डॉ.बाबासाहेब आम्बेडकर ने इन मूल्यों को संविधान में स्थान देकर उनकी प्रतिष्ठापना कि इसी चलते वर्तमान साहित्य में मूल्यों का प्रतीक फलन व्यापक धरातल पर हो रहा है।

भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, धर्मनिरपेक्षता जैसे नई मूल्य समाए हुए हैं। इसमें न केवल शासनतंत्र की व्यवस्था है। अपितु, सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन को भी पूरी गुंजाइश है। डॉ. बाबासाहेब ने कहा था, हमारे संविधान के सिद्धांत यदि सर्वोत्कृष्ट नहीं होते तो, यह दुनिया की किसी भी संविधान से घटकर भी नहीं है। जहाँ तक साहित्य का सवाल है मूल्यों की परम्परा सिद्ध, नाथ, जैन, साहित्य तथा मध्यकाल में कबीरा दी संत तथा आधुनिक युग में प्रेमचंद, प्रसादपंत निराला, मैथिलीशरण गुप्त, आदि का गणित रचनाकारों का साहित्य मूल्य निर्वाह के संदर्भ में संदिग्ध है। स्वतंत्र उत्तर युग में साहित्य की विभिन्न दिशाओं में प्रबुद्ध लेखकों ने जीवन मूल्यों के प्रति सजगता दिखाई है। साहित्य की प्रमुख विधाओं के अन्तर्गत कहानी ऐसी विधा है, जिसमें जीवन मूल्यों पर विशेष बल दिया है। इसका मुख्य कारण यह है। संविधानिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के पूर्व ही मनुष्यरूपी दानव ने हमारे लोकतांत्रिक मूल्यों को अपने पैरों तले रौंद कर देश की अखंडता, धर्मनिरपेक्षता में बाधा उत्पन्न की है। इसलिए आज वर्तमान में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना की दृष्टि से कहानी साहित्य, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। आज पूरी दुनिया में ज्ञान का प्रतीक कहे जाने वाली भारतीय संविधान के निर्माता डॉ.बाबासाहेब आम्बेडकर को साहित्य से बड़ी उम्मीद भी ही उन्होंने 1932 के अपने भाषण में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा था। मुझे देश के लिए इंजिनियर चाहिए, डॉक्टर चाहिए, वकील चाहिए, परंतु अधिक आवश्यकता से मुझे साहित्यकारों की भी है। क्योंकि, समाज कि अगर सृजनशीलता बताना है, समाज की पुनर्रचना करके उसे शोषण मुक्त करना है, उसकी धारणा समाज की नींव पर खड़ी करनी हो तो साहित्यकारों की जरूरत होती है। इस प्रकार समाज को संस्कारशिल, गतिशील बनाने के लिए समाज का स्थिति से परम्परागत मन बदलने के लिए समाज में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए समाज को परीष्कृत करने के लिए साहित्य सबसे प्रभावी माध्यम है।

कहानी जीवन के भोगे हुए अनुभव सत्य के क्षणों का प्रतिबिंब देती है। कहानी छोटी सी घटना के माध्यम से जो क्रोध, जो तड़पन, जो पीड़ा, और उद्वेलन छोड़ जाती है, वह अध्यात्म के मन के मस्तिष्क में मूल्य बनकर अमिट हो जाते हैं। 'अज्ञेय' की कहानियों में जीवन मूल्यों के लिए ही श्रम किया गया है। उनकी लेखनी जीवन मूल्यों के लिए ही संघर्ष करती है। मूल्यों को ही तराशती है और मूल्यों को ही स्थापना करती है।

अज्ञेय की कथा-साहित्य में जीवन मूल्य संस्था से देखने को मिल जाते हैं। रचनाकार अज्ञेय की कुल 67 कहानियों में विभिन्न प्रकार के परिदृश्य परिकल्पनाएँ उभरकर सामने आई हैं। आज समाज में विभिन्न मूल्य (मानवीय, सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक) का पतन हो रहा है। इन विषयों को रचनाकार आगे की बड़ी सतर्कता से उभेरा है।

रचनाकार अज्ञेय समाज के गिरते जीवन मूल्यों पर चिन्तित है। इन मूल्यों को यथावत बनाए रखने के लिए वे अपनी लेखनी के माध्यम से सामान्य जनमानस को, समाज को, देश को झकझोर डालना चाहते हैं। सबके सामने एक प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। 'ऐसा क्यों...? ऐसा कब तक...? विचारशील चिन्तक अज्ञेय व्यक्ति, चरित्र, घटना और देश काल को स्थूल नजरिए से नहीं देखते, वे पात्रों को अन्तस्थल में प्रवेश करते हैं। यह मूल्य जीवन की यथार्थ स्थिति को रूपांतीत करते हैं। मूल्य आदर्शों की तलाश भी करते हैं।

मानवीय मूल्य:-

अज्ञेय की कहानियों में मानवीय मूल्य पग-पग में विद्यमान है। वे दानव को मानव और मानव को महामानव बनाना चाहते हैं। वैयक्तिक कमियों की चुपके से खींच लेना चाहते हैं। वे मानव को मानवता की ओढ़नी के साथ समाज के सामने रखना चाहते हैं। मनुष्य गलती करता है। किंतु, जब उसे अपने अपनत्व का बोध होता है, कि इस संसार में मैं क्या हूँ...? मेरा क्या अस्तित्व है...? जब उसका सुधारात्मक उपाय खोजता है।

अज्ञेय की 'सेब और देव' नामक कहानी में लड़का सेब चुराता है। प्रोफेसर साहब देव चुराते हैं, किंतु जब प्रोफेसर साहब को अपने अस्तित्व का बोध होता है। उस समय उन्हें स्वयं यह लगता है कि, यह कार्य मैंने गलत किया है। जब वह मूर्ति मंदिर में वापस नहीं रख देते जब तक उन्हें आत्म संतोष नहीं मिलता, मानस शांति नहीं मिलती 'इसने तो उसे भी चुराया तुम देवस्थान लुट आएं।' सहमे हुए स्तब्ध से प्रोफेसर साहब क्षणभर खड़े रहे फिर धीरे-धीरे उल्टे पाँव-गाँव की ओर चल पड़े। अंधेरा होते होते वह मन्दिर पर पहुंचे कि वाड एक और पटककर उसने मूर्ति को यहां स्थान रखा।

'कैस्वाड़ा का अभिशाप' नामक कहानी में अज्ञेय की लेखनी मानवता का पक्ष लेती हुई लिखती..... यहां के लड़के भी हैं, जो अपने माता-पिता का पेट भरने- माता-पिता को पेट का खालीपन कम करने को वही भी करने को तैयार है। जिसके विलक्षण समस्त मानवता चिल्लाती है।

आज पश्चिमीकरण के अंधानुकरण में व्यक्ति अपने सारे रिश्ते सम्बंधों से दूर हो रहा है। वह आधुनिक बनना चाहता है। आधुनिकता की दौड़ में हमारे मानवीय मूल्य थरासायी हो रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक यशोहर नष्ट हो रही है। मानव वैज्ञानिक हो रहा है। रोज ही कुछ ना कुछ प्रयोग किए जाते हैं। अविष्कार किए जाते हैं। इन अविष्कारों के द्वारा उसकी सुविधाएं बढ़ी हैं। व्यक्ति सुविधा संपन्न हो गया है, फिर भी सुखी नहीं है। वह पहले से भी अधिक व्यस्त दिखता है। मानवता के रहस्य में व्यक्ति और समाज में एक अलग तरह की समस्या पैदा हो गई है। उसका अधिकांश समय प्रदर्शन बनाव, कोर्ट कचहरी की गैलरी में बितता है। अमानवीय कृत्यों की दुष्परिणाम कागजी घोड़े दौड़ने हैं। अज्ञेयजीने 'आत्मपदेन' में लिखा है, व्यक्ति के शोध के परित्याग के बाद मानव का शोध संभव नहीं रहता। मानव एक साथ है, मानवता केवल एक उद्भवना।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अज्ञेय की कहानियों में मानवीय मूल्यों का निर्देशन है। साथ ही गिरते मानवीय मूल्यों के प्रति क्षोभ भी है। रचनाकार उन सभी को बताना चाहता है। फटकारता है जो मानवीय मूल्यों को आघात पहुंचाने में सहायक है।

सामाजिक मूल्य: -

व्यक्ति की प्रगतिशीलता और उत्कर्ष यात्रा की परिणति है। सामाजिक भावना मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में जन्म लेता है और समाज में पलता है। समाज के बीच वह कार्य करता है। समाज के लिए करता है और अंत में समाज के बीच में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। अरस्तु ने तो समाज की विवेचना में यहाँ तक कहा है 'व्यक्ति समाज से अलग नहीं रह सकता, जो समाज से अलग है वह या तो पशु है या देवता'। सामाजिक मूल्य के संदर्भ में रचनाकार की लेखनी से प्रस्फुटित कुछ अंश स्पष्ट है।

अज्ञेय का समाज बौद्धिकतावाद से उत्पन्न कुंठाओं, मानसिक विकृतियों से संघर्ष करता है। अतः अज्ञेय की कथाओं में चित्रित सामाजिक मूल्य, ग्रामीण मूल्य कम हैं। नगर की समस्याओं से सम्बंध मूल्य अधिक हैं। सामाजिक मूल्य, में धर्म का आचरण का आडम्बर, चरित्र का दोगलापन, नकली मुखोटे का निदर्शन, ऐसे तत्व हैं जो प्रतिगामी मूल्यों को उजागर करते हैं।

अज्ञेय की कहानियों में कुंठा और तृप्ति, निराशा और पलापन के चित्र कहीं परिलक्षित होते हैं, तो तात्कालिक समाज की वनस्पति के ही परिचायक हैं। अज्ञेय के बौद्धिक व्यक्तित्व के धरातल पर तो सर्वथा ऐसे ही मूल्य निर्मित होते दिखते हैं। जो एक समग्र मानव के लिए एक समुन्नत प्रगतिशील समाज के लिए उपादेय हैं।

रचनाकार अपने योग के प्रभाव से नहीं बच सकता। व्यक्तित्व का विकास समाज के भीतर रहकर ही हो सकता है। वह अपने वाजपान और परिवेश को एकदम अस्वीकार नहीं कर सकता। या तो वह समाज और परिवेश के हितार्थ को अपनी कृति योग को आधार बनाएगा या उस यथार्थ से ऊपर उठकर एक से अधिक सम्मुन्नत समाज और परिवेश की कल्पना करेगा। पहली स्थिति में वह यथार्थवादी कहलायेगा और दूसरी स्थिति में आदर्शवादी। सच तो यह है कि रचनाकार को अपने समाज के यथार्थ और आदर्श के बीच से अपना मार्ग निकालना होता है।

सांस्कृतिक मूल्य:-

अज्ञेय यथा परी वृत्ति के ऐसे साहित्यकार हैं। एक और घुमक्कड़ वृत्ति है, तो दूसरी और व्यापक दृष्टि भी है। उनकी कहानियों में सांस्कृतिक मूल्य बहुआयामी हैं। भारत संस्कृति प्रधान देश है। यहां विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों का संगम है।

अध्यात्म की भारत में अलग पहचान है। पहले अध्यात्म को भारत की रूढ़िवादिता मानते थे। लोग जब विज्ञानवाद, पोथी, आधुनिकता, बनावटी दुनिया से ऊब चुके थे। तब उनका झुकाव अध्यात्म की ओर हुआ। देश-विदेश से भारत के अध्यात्मिक रहस्य को समझने के लिए लोग भारत आने लगे। भारत की सुख-शांति, मर्यादाएँ, परम्पराएँ, बन्धन, व्यवहार से दंग होते हैं।

'बदला' नामक कहानी में धार्मिक चिन्तन एवं समाज के हो रहे अत्याचार का पर्दा लेखन ने उकेरा है। 'शरण-दाता' कहानी में जातिगत एवं धर्म गत भावनाओं को समाहित किया है। धर्म संस्कृति किसी देश की व्यवस्था का नियामक है। इसके अनुरूप उस देश के निवासियों का वैचारिक प्रतिरूप बनता है। स्थानीय संस्कृति के अनुरूप वहाँ की कला-साहित्य का निर्माण होता है। संस्कृति स्थान विशेष के निवासियों की उत्थान पतन का कारण बनती है। धर्म एवं संस्कृति के आधार पर पारिवारिक वातावरण का निर्माण होता है।

'अज्ञेय' की कहानियों के पात्रों में अस्तिकता भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति अनुराग है, उनकी अनेक कहानियों में यह परिलक्षित होता है, कि संसार में जो हो रहा है, वह जगत नियंता के इशारे पर हो रहा है। व्यक्ति एक माध्यम है। 'पकौड़ा वृक्ष' कहानी की नायिका सुखदा के संबंध में अध्ययन ने लिखा है।

उसके भीतर एकाएक ही कुछ जग उठा है। कुछ टूट गया, जिस प्रकार उन्मत्त व्यक्ति के ऊपर ठंड पानी पड़ने से उसका खुमार एकाएक टूट जाता है। या उसकी चेतना जाग उठती है।

सुखदा के समान मानसिक उद्वेग शत्रु नामक कहानी में ज्ञान को भी हुआ था। यह अचानक मानसिक उद्वेग के साधारण बात नहीं, बल्कि ईश्वरीय प्रेरणा है। रचनाकार उसके पात्रों का तादात्म्य जगत नियंता से है, यह स्पष्ट है। कथाकार अज्ञेय स्वयं भारतीय संस्कृति के उपासक थे। इसलिए सांस्कृतिक तारा उनकी कहानियों में मिलता है।

राष्ट्रीय मूल्य:-

अज्ञेय राष्ट्रीय मूल्य के चिन्तक हैं। उनकी न केवल कहानियाँ वरन उपन्यास, कविता एवं यात्रावृत्तों सभी में राष्ट्रीय मूल्य सभ्यता से विद्यमान हैं। पात्रों का रुख उनकी अभिव्यक्ति वह क्रियाकलाप भी राष्ट्रीय है। 'शत्रु' नामक कहानी में ज्ञान नाम का पात्र संसार का नेता बन कर सामने आता है।

'ज्ञान' मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठा संसार का पुनर्निर्माण करो। ज्ञान जाग पड़ा है। उसने देखा संसार अंधकार में पड़ा है। मानव जाति उस पर अंधकार में पथभ्रष्ट हो कर विनाश की ओर बढ़ती जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है तो मानव जाति को पथ पर लाना होगा अंधकार से बाहर खींचना होगा उसका नेता बन कर उसे शत्रु से युद्ध करना होगा।

'हरसिंगार' नामक कहानी में जीवन की यथार्थता देखी जा सकती है गोविन्द सोचने लगा पच्चिस साल से वह भीख मांग रहा है। शायद पच्चिस साल और मांगता रहेगा। यही सत्य है यही यथार्थ है।

आज हम सब आजादी की वर्षगांठ मनाते हैं। कहने को तो स्वतंत्र हो गए, आजाद हो गए हैं, किंतु स्वतंत्रता के पीछे परतंत्रता आज भी ओढ़नी ओढ़ कर दामन छुपाए खड़ी है। फिर कैसी आजादी स्वतंत्र, समता, बंधुता कहाँ रह गई। नादान बच्चों की किलकारियाँ धीमी पड़ गई हैं। उनके उछल-कूद धमा-चौकड़ी के दायरे सीमित हो गए हैं। इस पर रचनाकार अज्ञेय का चिंतन दृश्य है।

वे आँगन में खड़े होकर आकाश देखने लगे। आजाद देश का आकाश। और नीचे से अभ्यर्थना में जलते घरों का धुआँ। धूप में धाययामः । लाल चन्दन- रक्त चन्दन

सन्दर्भ सूची:-

१. अज्ञेय- सेब और देव- पृ. 383
२. वही (कैसाड़ा का अभिशाप) पृ. 396
३. अज्ञेय- आत्मपदेन
४. अरस्तु
५. अज्ञेय-(संपूर्ण कहानियाँ) पृ. 473
६. पगोडा वृक्ष- 314
७. वही
८. हरसिंगार-पृ. 485

शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की पौराणिक नाट्याभिव्यक्ति : एक और द्रोणाचार्य

- डॉ. मजीद शेख

सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक,
हिंदी विभाग, प्रतिष्ठान महाविद्यालय, पैठण,
जिला-औरंगाबाद- 431107 (महाराष्ट्र)

भूमिका (Introduction) :-

साहित्य की हर विधा अपने आप में महत्वपूर्ण होती है। समाज एवं व्यक्ति के निर्माण में उनका महत्व भी अनन्यसाधारण रहा है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक ऐसी विधा है जो अपनी दृश्य-श्रव्य समन्वित विशेषता के कारण प्रेक्षक / श्रोता पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। इसी कारण नाटक का महत्व अन्य विधाओं से अधिक हो जाता है। शंकर शेष ने नाट्य-विधा को ही साहित्य सर्जन का मुख्य लक्ष्य बनाया। वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, अनुसंधाता, अनुवादक और सर्वोपरि एक उत्कृष्ट नाटककार के रूप में प्रख्यात थे। डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं, "शंकर शेष के नाटक मंच, आशय तथा प्रभाव की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके नाटकों में प्रगतिशीलता का स्वर प्रमुख है। बदलती सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियां आम आदमी को कितना परेशान कर रही हैं, उसका तीखा चित्रण इनके नाटकों की विशेषता है।"¹ आलोच्यकाल के नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनैतिक वस्तु का प्रयोग किया गया है। नाटककार ने समकालीन शिक्षा जगत् की यथार्थ विसंगति एवं विद्रूपता को पौराणिक कथा और आधुनिक कथा को समानांतर जोड़ते हुए 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की सर्जना की है। "एक और द्रोणाचार्य" में शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अशैक्षणिक मूल्यों के दर्शन के दबाव को रेखांकित किया गया है।"²

1. सुविधाभोगी मनोवृत्ति एवं कायरता का दिग्दर्शन :

समकालीन शिक्षा जगत् की यथार्थ विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को उजागर करना 'एक और द्रोणाचार्य' इस नाटक का प्रमुख लक्ष्य रहा है। जो असत्य एवं अनाचार को सहन नहीं करता, किंतु समाज और परिवार के दबाव तथा परिस्थितियों के समक्ष उन्हें समझौता करना पड़ता है। जिस प्रकार महाभारत युगीन द्रोणाचार्य सत्यनिष्ठ गुरु होकर अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थिति के दबाव में असत्य और अन्याय का साथ देते हैं। द्रोणाचार्य के शब्दों में, "उस दिन भूख मेरे सिद्धांत से बड़ी हो गई। प्रतिशोध ने विवेक को जीता। उस दिन तुमने मुझे भडकाया। उस दिन तुमने मुझे राजकीय अन्न की दासता में धकेला। तुम्हें अश्वत्थामा के लिए दूध चाहिए था, अपने लिए वस्त्र, राजकीय सम्मान। उस दिन तुमने रोका क्यों नहीं ? मेरी हिचकिचाती आत्मा को शक्ति क्यों नहीं दी ? क्यों मुझे सुविधाभोगी होने के लिए उकसाया ? बोलो, मुझे राजकीय अन्न की दासता से समझौता करने पर किसने विवश किया?"³ समानांतर रूप से द्रोणाचार्य और एकलव्य का पौराणिक आख्यान आधुनिक सुविधाभोगी एवं स्वार्थी रक्षक समुदाय पर घटित होकर आज की सड़ी गली शिक्षा व्यवस्था और उसको बनाने वालों पर गहरा व्यंग्य करता है। द्रोणाचार्य की तरह आज का शिक्षक व्यवस्था के इशारे पर भौंकनेवाले कुत्ते के समान है। प्रिंसिपल के संवाद में, "प्रेसिडेंट साहब आखिर मालिक हैं अन्नदाता हैं। उनका कॉलेज उनकी मर्जी। इसीलिए तो कहता हूं, नौकरी करनी है तो कान बंद कर लो। आंखें मूंद लो। मुंह खुला

रखो-बोलने के लिए नहीं, रोटी खाने के लिए।"⁴ द्रोणाचार्य की तरह आज का शिक्षक व्यवस्था के इशारे पर भौंकनेवाले कुत्ते के समान है। द्रोणाचार्य का अर्थ है सत्ता द्वारा पाला हुआ शिक्षक। संभ्रान्त और प्रतिष्ठित होकर भी स्वार्थ, शोषण और सत्ता के सामने दुम हिलाते पालतू कुत्ते से अधिक बड़ा व्यक्तित्व नहीं रखता। प्रिंसिपल कहता है, "किसकी हिम्मत है। जल्लाद से भी कहीं विरोध किया जाता है। मुझे तो सुबह से शाम तक गाली देता है, गधा और उल्लू का पट्टा कहता है। पर क्या करूं, सुनता हूं। सुनूंगा नहीं तो जाऊंगा कहां। नौकरी जो करनी है।"⁵ इस नाटक में यत्र तत्र व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है।

2. मध्यम वर्ग की पाखंडी मनोवृत्ति एवं अवसरवादिता :

शंकर शेष के नाटक हिंदी नाटक की उस परंपरा के नाटक हैं जिनमें उपदेशों, प्रवचनों की कोरी लफ्फाजी और देश की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय अनमोल धरोहर के प्रति आसक्ति न होकर, यथार्थ का नश्वर है जो भीतर तक चुभता है। 'एक और द्रोणाचार्य' इस नाटक में वे व्यवस्था के मशीनरी में मानव की गरिमा, स्वाभिमान के साथ जीने के लिए संघर्ष करता अरविंद किस प्रकार व्यवस्था के धमकी और प्रलोभन के षडयंत्र में घिरकर अपनी गरिमा, मान-सम्मान का गला घोटकर पुनः द्रोणाचार्य बन जाता है, उसका यह त्रासक चित्रण है। विमलेंदु (आत्मा) की व्यंग्योक्ति, "याद है जब तुमने विरोध की भाषा अपनाई, सत्ता ने तुम्हारे अस्तित्व पर सीधे हमला किया। कभी प्रलोभन देकर, कभी आतंक जमाकर। इसलिए विरोध मत करो। सब विरोध बकवास है। यदि व्यवस्था तुम्हें अपने इशारे पर भौंकनेवाला कुत्ता बनाना चाहती है तो भौंको कुत्ते के पिल्लों को जन्म दो।"⁶ अरविंद प्रेसिडेंट के बिगडेल बेटे राजकुमार के छुरा रखकर नकल करने के विरोध में उसके खिलाफ रिपोर्ट तैयार करता है, किंतु व्यवस्था के दूसरे पुर्जे उसके खिलाफ कार्यवाही करने का माददा दिखा नहीं पाते। वाइस प्रिंसिपल के सपने देखता अरविंद का दोस्त चंदू, चुंगी नाके के मुहरिर से प्रिंसिपल बना समझौता परस्त प्रिंसिपल, लोकतंत्र की दुहाई देने का विरोध न कर उनके मातहत विनम्र बने रहकर निश्चिंत जीवन जीने का सबक सिखाते हैं। प्रिंसिपल की अपनी जबानी, "अब अपनी तारीफ अपने मुंह क्या करूं। तीस साल नौकरी की। पूरे तीस साल। चुंगी नाके के मुहरिर से बढ़ता-बढ़ता प्रिंसिपल हो गया। लड़ता तो क्या बनता ? लड़ो मत-झुको। सोचो मत-मानो।"⁷ अंततः अरविंद जो उस युवा चेतना का प्रतिनिधि है। जिसमें साहस है, निर्भीकता है, विरोध का माददा है, व्यवस्था की गलत नीतियों के प्रति चिढ़ है, कुछ कर गुजरने में जीवन की सार्थकता को मानने का संस्कार है, सत्ता की भारी भरकम मशीनरी के आगे पस्त होकर उसी का एक सुचारू कलपुर्जा बनकर रह जाता है। 'कौरव तंत्र' में किस प्रकार द्रोणाचार्य की गुरुता, सच्चाई, साधना, शिक्षा एक गुलामियत में परिवर्तित होकर उस तंत्र को और मजबूत बना देती है तथा विद्रोह तथा विरोध का पाला रिक्त होता चला जाता है और मानव की अस्मिता की सुरक्षा करनेवाले अर्जुन द्रोणाचार्य हो जाते हैं। उसी तंत्र की तांत्रिकता का सूक्ष्म विश्लेषण इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। अपितु शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानदान के पवित्र कार्य की आड़ में राजनीति की घुसपैठ और उससे उत्पन्न किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति को दिखानेवाले इस नाटक में पूरे शैक्षिक वातावरण की भ्रष्टता को भी रेखांकित किया गया है।

3. आचार्य द्रोणाचार्य और प्रोफेसर अरविंद में साम्य :

'एक और द्रोणाचार्य' इस नाटक में आदर्शवादी, सत्यवादी तथा कर्तव्यनिष्ठा को महत्व देनेवाले प्रोफेसर अरविंद की कहानी है जिसे समाज एवं राजनीतिक घात-प्रतिघात के आगे झुकना पड़ता है। जिस प्रकार

सामाजिक व्यवस्था और तत्कालीन राजनीति ने द्रोणाचार्य को असत्य का साथ देने को विवश किया, उसी तरह अरविंद को भी सबकुछ जानते-समझते हुए अन्याय का साथ देना पड़ता है। नाट्य-वस्तु में द्रोणाचार्य और आज के युग के अरविंद की तुलना चरित्र मूल्य और परिस्थितियों के संदर्भ में की गई है। गुरुवर द्रोणाचार्य को गरीबी के कारण राज दरबार में आमंत्रित किया गया था, उनके आदर्शों को समाज व्यवस्था ने कुचलने का उपक्रम किया तब उन्होंने युद्ध की भाषा जाननेवाली पीढ़ी का निर्माण किया था। द्रोणाचार्य, "मैंने केवल शस्त्र चलाने की शिक्षा दी है। मैंने उसके आगे ऐसा कुछ नहीं सिखाया है, जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है।"⁸ अरविंद भी परीक्षा में नकल करते विद्यार्थी को पकड़कर रिपोर्ट लिखता है पर ऊपरी दबाव से रिपोर्ट को दबा दिया जाता है। चंदू का संवाद, "प्रोफेसर अरविंद ने झूठ बोलकर मेरी सब श्रद्धाओं को कुचल दिया। कॉलेज से मैं जिस तरह निकाला गया उसने मेरा जिंदगी के प्रति रहा-सहा विश्वास भी जाता रहा।"⁹ अरविंद को प्रिंसिपल बनाकर प्रेसिडेंट उसे अपने हाथ का खिलौना समझता है। एक लड़की पर अत्याचार करनेवाले प्रेसिडेंट के लड़के को देखकर अरविंद उसे सजा दिलवाना चाहता है पर कुछ नहीं कर पाता और लड़की की मृत्यु का कारण अरविंद को ही बनना पड़ता है। अनुराधा कहती है, "वह आपको बड़े-बड़े निरर्थक शब्द थूकनेवाला नपुंसक बुद्धिवादी कहता था। आपने सचमुच मुझे कहीं का नहीं रखा। मेरे सब भ्रम टूट गये। अब आपको चिंता करने की जरूरत नहीं होगी। कल शायद कोई सवाल ही न उठे।"¹⁰ यह कितनी बड़ी विवशता और त्रासदी है कि जो व्यक्ति अर्जुन का निर्माण करना चाहता था, वह दुर्योधन को विद्या देने के लिए लाचार हो गया। द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा से कहते हैं, "उस राजकीय अन्न की दसता ने मेरा विवेक खरीदा। मेरी न्याय बुद्धि खरीदी। मुझे एकलव्य का अंगूठा कटाना पड़ा, मुझे कर्ण जैसे होनहार विद्यार्थी को व्यवस्था की आड़ लेकर ठुकराना पड़ा। पक्षपात, क्षुद्रता ने मेरा स्वत्व छीन लिया। अश्वत्थामा, उस समझौते ने मुझे कभी सही आदमी नहीं बनने दिया। तब मैं सही आदमियों का कहां से निर्माण करता।"¹¹ जो विद्यार्थी अरविंद पर विश्वास करते हैं, उनपर ही अन्याय होता है और अरविंद चाहकर भी कुछ कर नहीं पाता। अरविंद यदि प्रेसिडेंट के विरोध में अपनी आवाज उठाता तो उसका अस्तित्व और उसकी इज्जत दोनों नष्ट हो सकती थी। अपना व्यक्तित्व गंवानेवाले तथा न चाहते हुए भी कौरवों की अन्यायपूर्ण नीतियों का साथ देनेवाले द्रोणाचार्य और आधुनिक समाज के शिक्षक अरविंद में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। विमलेंदु (आत्मा) का संवाद उल्लेखनीय है, "बकवास ! तू द्रोणाचार्य है। कौरवों की भाषा बोलनेवाला, युद्ध में भी उसका साथ देनेवाला। तू किस बात का प्रोफेसर ? तू द्रोणाचार्य है।"¹² अरविंद की पत्नी और मित्र संघर्ष से दूर रहना चाहते हैं। उनका सोचना है कि समाज का हित करते हुए यदि हम बर्बाद हो जाएंगे तो समाज हमें नहीं पूछेगा, इसलिए अपना घर और परिवार भी देखना आवश्यक है। अरविंद कमजोर है, इसलिए वह इस चक्रव्यूह को नहीं तोड़ पाता।

4. शिक्षा के क्षेत्र में विसंगति और नैतिकता का अंधपतन :

एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा के माध्यम से वर्तमान शिक्षा संस्थान में व्याप्त असंगतियों, वैचारिक पतन, नैतिक मूल्यों के ध्वंस, चरित्रहीनता की स्थिति और शिक्षक के पंगु आचरण पर प्रहार करते हुए 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की रचना की गई है। शिक्षा के क्षेत्र में विसंगति और नैतिक पतन की स्थिति उसी दिन बन गई थी, जिस दिन द्रोणाचार्य ने व्यवस्था के हाथों अपनी विद्वत्ता और योग्यता बेच दी। आदर्श और नैतिकता का आडंबर बना शिक्षा-व्यवसाय इतना भ्रष्ट हो गया है कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए शिक्षक

को अपना आदर्श और ईमानदारी को व्यवस्था के हाथों बेचना पड़ता है। नाटक का यह संवाद कथ्य की विश्वसनीयता और उसके भ्रष्ट चरित्र पर निर्भरता से प्रहार करनेवाला है, "तू द्रोणाचार्य है। व्यवस्था और सत्ता के कीड़ों से पिटा हुआ द्रोणाचार्य-इतिहास की धार में लकड़ी की ठूठ की तरह बहता हुआ, वर्तमान के कगार से लगा हुआ-सड़ा-गला द्रोणाचार्य। व्यवस्था के लाइटहाउस से अपनी दिशा मांगनेवाले टूटे जहाज-सा द्रोणाचार्य।"¹³ अरविंद कहता है मेरी बुजदिली ने अनुराधा को मार डाला। लीला, उसका विरोध नहीं बिका। कोई नहीं खरीद सका उसे, अपितु वह जाते-जाते मुझे नसीहत दे गई, "आत्मज्ञान हो गया है मुझे। अपने क्षुद्र होने का आत्मज्ञान। प्रेसिडेंट के फोन ने मुझे अपनी तस्वीर दिखा दी। समझौते के फंदे पर अपने-आपको पच्चीसों बार लटकानेवाला मैं..... दूसरों की नकाब उतारने की कोशिश में खुद नंगा हो जानेवाला मैं..... मुझ पर थूको।"¹⁴ शंकर शेष के नाटक परंपरा, संस्कृति के वैशिष्ट्य और मानवीय दृष्टिकोण के साथ सामने आये हैं। सामाजिक कथ्य, जाने-पहचाने चरित्र और सरल भाषा का प्रयोग इनके नाटकों की मुख्य विशेषताएं रही हैं।

5. दलित चेतना की हृदयस्पर्शी प्रस्तुति :

'एक और द्रोणाचार्य' इस नाटक के अंश से 'दलित चेतना' को समझ सकते हैं। द्रोणाचार्य गुरु दक्षिणा के तौर पर एकलव्य से अंगूठा मांगते हैं। इतना ही नहीं, इस मांग का वे समर्थन भी करते हैं।

अर्जुन : "पर यह अन्याय है, गुरुदेव ! देखा नहीं, उसकी आंखों में क्षत्रियों के लिए कितनी घृणा थी। आपने एक महान प्रतिभा को उभरने से पहले ही कुचल दिया।"¹⁵

द्रोणाचार्य : वह सिद्ध करना चाहता था कि वह मेरी सहायता के बिना भी महान धनुर्धर बन सकता है। कल इतिहास मेरी अपूर्णता पर हंसेगा..... "¹⁶

द्रोणाचार्य के इस समर्थन का खंडन अर्जुन जिन शब्दों में करता है वे शब्द दलित चेतना को स्पर्श करनेवाले हैं। अर्जुन कहता है, "इतिहास तो फिर भी कल हंसेगा आप पर। जब भी प्रतिभा को जाति और व्यवस्था के नाम पर कुचला जाएगा तो लोग आपको ही याद करेंगे। इतिहास आपको कभी क्षमा नहीं करेगा।"¹⁷ अर्जुन द्वारा किया गया द्रोणाचार्य का यह खंडन और दलित साहित्य में एकलव्य के मिथक का दलित लेखकों द्वारा किया हुआ विश्लेषण बहुत ही साम्य रखता है।

6. नाटकीय व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग :

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक में नाटक शैली का प्रयोग किया गया है। महाभारत कालीन द्रोणाचार्य, कृपी, अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पात्रों के साथ युगीन संदर्भ में प्रोफेसर अरविंद, यदू लीला, चंदु, अनुराधा और राजकुमार प्रस्तुत हैं। विविध घटनाओं और प्रसंगों में समानता स्थापित करते हुए यहां समाज में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार किया है। दो कथाओं या दृश्यों को समानांतर रूप से संयोजित कर महाभारत कालीन गुरु द्रोणाचार्य के जीवन की घटनाओं और समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षकों की स्थिति में साम्य को दिखाया गया है। विमलेंद्र की युक्ति का उपयोग, संवादों की रचना, अदालत का दृश्य, नाटकीय लय आदि नाटकीयता के उदाहरण हैं। संवादों में आक्रामकता और टकराहट भी है और आक्रोश तथा संपूर्ण अभिनयात्मकता भी। सन्नाटे और चीख, चीत्कार, कोलाहल आदि जैसी विरोधी स्थितियों का विधान दर्शकों को आकर्षित करनेवाला है। कृपी का नाटकीय संवाद, "अपना नपुंसक आचरण ढंक्ने के लिए मुझ पर आरोप लगाते हुए तुम्हें थोड़ी-भी लज्जा नहीं आती ? मैं पूछती हूं तुम्हारा आचार्यत्व कहां मर गया था ? क्या वह केवल एकलव्य का अंगूठा

कटवाने या सूतपुत्र कहकर कर्ण की अवहेलना करने तक सीमित था ? तुमने अपने शिष्यों को रोका क्यों नहीं ? क्या तुम्हारा उन पर कोई नैतिक अधिकार नहीं था।"¹⁸ जब अरविंद प्रोफेसर से प्रिंसिपल बनने के लिए मजबूर हो जाता है तो अपनी पत्नी लीला से कहता है, "और बनाओं प्रिंसिपल ! कहीं का नहीं रखा मुझे।"¹⁹ शंकर शेष ने अपनी अर्थपूर्ण और तर्कपूर्ण भाषा से नाट्यार्थ को पूरे सामर्थ्य के साथ व्यक्त किया है। विमलेंद्र की आत्मा की कल्पना कथ्य को स्पष्ट करने के लिए है। अंत में अरविंद की प्रतिध्वनि के रूप में उसकी विवशता का वर्णन हुआ है जो नाट्य प्रभाव को गहराई देता है।

❖ निष्कर्ष :

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि शंकर शेष ने 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक में समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में राजनीति के प्रवेश की स्थिति को दर्शाया है। आचार्यों का अपमान करने की परंपरा पुरानी है जिससे उनके हाथों मानव जाति की सेवा के बदले युद्ध की भाषा समझनेवाली पीढ़ी का निर्माण होता है। इसके अलावा गुरु-शिष्य संबंध, व्यवस्था की क्रूर नीति और अर्थाभाव के कारण मनुष्य के विवेकहीन हो जाने की स्थिति भी चित्रांकित है। द्रोणाचार्य की पौराणिकता को नये युग के अरविंद की कथा से जोड़ा गया है क्योंकि दोनों को राज्याश्रय पाकर अन्याय का साथ देना पड़ता है। द्रोणाचार्य के संवाद में कहना चाहूं तो, "मैं इसी का पात्र था। सत्य और न्याय का पक्ष जानते हुए भी मैं उसके विरोध में लड़ा। अपने ही शिष्यों के विरुद्ध, राजकीय अन्न की दासता-समझौते का चरित्र।"²⁰

संदर्भ :

1. डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपुर (द्वितीय सं. 2008), पृ. 177
2. उपरोक्त, पृ. 177
3. शंकर शेष, एक और द्रोणाचार्य, पराग प्रकाशन, दिल्ली (सं.1993), पृ. 86
4. उपरोक्त, पृ. 18-19
5. उपरोक्त, पृ. 19
6. उपरोक्त, पृ. 107
7. उपरोक्त, पृ. 20
8. उपरोक्त, पृ.87-88
9. उपरोक्त, पृ. 98
10. उपरोक्त, पृ. 74
11. उपरोक्त, पृ. 86-87
12. उपरोक्त, पृ. 108
13. उपरोक्त, पृ. 108
14. उपरोक्त, पृ.74
15. उपरोक्त, पृ. 54
16. उपरोक्त, पृ. 54
17. उपरोक्त, पृ. 54
18. उपरोक्त, पृ. 84
19. उपरोक्त, पृ. 59
20. उपरोक्त, पृ. 105

जहीर कुरेशी की गज़लें: धार्मिक संवेदना

सहा.प्रा. एन.एस. भंडेकर

कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, गंगाखेड.

धर्म आदमी को जोड़ता है, तोड़ता नहीं। 'ऐष धर्मः सनातन' कहानी में जो बात रचनाकार ने रखी है, वह सत्य है। मूलतः कौनसे भी धर्म में ईर्ष्या-द्वेष का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। धर्म का महत्व हर युग और समय में अनन्य साधारण है। धर्म का ज्ञाता, समाज में शांति-सौहार्द के लिए हर युग और समय में प्रयासरत रहा यह बात हमारे अतीत से पता चलती है। समाज सुधारक, विद्वान, धर्म के ज्ञाता पंडित समाज में समानता, भाईचारा, प्रेम, सौहार्द के लिए प्रयासरत रहे हैं। किंतु समाज में कुछ अराजक प्रवृत्तियाँ धर्म का सहारा लेकर समाज में धार्मिक विद्वेष फैलाने में कई बार सफल हुई हैं। जिसके चलते समाज में अराजकता, अशांति का माहौल बना हुआ दिखाई देता है। जाति-धर्म के नाम पर संवेदनशिल पहलुओं को समाज के सम्मुख इस प्रकार रखा जाता है कि समाज मन आहत होकर स्व-धर्मरक्षणार्थ रास्ते पर उतर कर विनाश का कारन बन जाता है।

वास्तविकतः समाज में धर्म के दो पहलु दिखाई देते हैं। एक वह धर्म जिसके अंतर्गत व्यक्ति, समाज एक विशिष्ट विचारधारा को अपनाते हुए जीवन यापन करता है और दूसरा वह 'धर्म' जो व्यक्ति के 'कर्म' से संबंधित है। यह बात तो स्पष्ट है कि कर्माधारीत धर्म सर्वश्रेष्ठ है। हिंदु, मुस्लिम, सीख, इसाई आदि धार्मिक विचारधाराओं को अपनाने वाले तथा अपने धर्म की अस्मीता को अबाधित रखते हुए धर्म रक्षणार्थ सदैव तत्पर रहनेवालों में संवेदनशिलाता का प्रभाव अधिक पाया जाता है। अतः समाज में कुछ प्रवृत्तियाँ संवेदनशिल बिंदुओं को आधार बनाकर समाज में धार्मिक विद्वेष का माहौल निर्माण करने में तत्पर दिखाई देती हैं। ऐसी प्रवृत्तियों के कारण समाज में अशांति बनी रहती है।

वर्तमान में धर्म और राजनीति यह दोनों भी पहलु एक दूसरे से जुड़े दिखाई देते हैं। जिसके चलते राजनीति धर्म का उपयोग अपने लिए करती हुई दिखाई देती है। धार्मिक अस्थिरता के प्रमुख कारणों में राजनीति भी एक प्रमुख कारण है, जिसके चलते धार्मिक अस्थिरता कई बार निर्माण हुई है। राजनीतिक क्षेत्र में विशेषकर चुनाव के समय राजनीति में धर्म का एक अस्त्र के रूप में प्रयोग कर स्वार्थ साधने का प्रयास किया जाता है। जिसके चलते भारतीय समतामूलक समाज में आज भी धर्म तथा जाति के नाम पर चुनाव लड़ते हुए आसानी से देखे जा सकते हैं। परिणामतः धर्म निरपेक्षता का भाव लुप्त होकर समाज में धार्मिकता के आधार पर निर्माण वर्ग चुनावी मैदान में अपने अपने धर्म को लेकर धर्म का प्राबल्य अबाधित रखने हेतु प्रयासरत रहते हैं। साहित्य के क्षेत्र में इन विभिन्न पहलुओं पर समय सापेक्षता तथा यथातथ्यता के धरातल पर प्रकाश डाला गया है।

साहित्य की दुनिया में विशेषतः गज़ल के क्षेत्र में आधुनिक हिंदी गज़ल को समृद्ध बनानेवाले गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर जिन्होंने दुष्यंतकुमार की परंपरा को समृद्ध बनाते हुए पाठकों के मन-मंदिर में गज़ल को स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया, ऐसे प्रमुख गज़लकार 'जहीर कुरेशी' ने समाज में व्याप्त विभिन्न पहलुओं जैसे सामाजिक, राजकिय, आर्थिक, वैश्विक, आधुनिक आदि के साथ धार्मिक परिवेश को भी समयसापेक्षता तथा यथातथ्यता के धरातल पर सहज, सरल भाषा में वाणी प्रदान की। समाज मन तथा समाज जीवन की अतल गहराईयों को वाणी प्रदान करने वाले गज़लकार की गज़लों में वर्णीत धार्मिक संवेदना को निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

मूलतः मानव समाज में धर्म एक विचारधारा है। जिसे अपना कर मानव अपने जीवन की राह तय करता है। धर्म से संबंधित कोई भी विचारधारा अन्याय-अत्याचार का समर्थन नहीं करती। अतः सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि मानव समाज में धर्म एक ऐसी विचारधारा है जो शांति, सौहार्द की राह प्रदान करती है। वैसे देखा जाये तो कोई भी धर्म बैर की सीख नहीं देता। वह सीख देता है, आपस में प्रेम, सद्भाव, सौहार्द और शांति की। इसी पर प्रकाश डालते हुए जहीर कुरेशी अपनी ग़ज़ल के एक शेर में कहते हैं,

“धर्म सिखाए बैर तो, उसको समझ अधर्म,
धर्म प्यार का रास्ता, धर्म शांति का मर्म।”¹

भारत यह बहुधर्मिय राष्ट्र है। जिसमें अनेक धर्मों तथा जाती-पाति के लोग एक साथ रहते हैं। हर धर्म तथा संप्रदाय के अपने-अपने नियम हैं। जिसका आचरण कर लोग उसी विचारधाराको अपनाकर चलते हैं। धर्म के प्रति लोगों की आस्था, प्रेम के साथ-साथ धार्मिक कट्टरता भी हर धर्म में पाई जाती है। हर धर्म की नींव होती है उसके सद्विचार जो उसे चरम शिखर पर पहुँचाती है। किन्तु समय के साथ-साथ इनमें बदलाव भी होते हैं या कुछ बदलाव जानबुझकर किये जाते हैं। जो लोग अपनी सुविधानुरूप अर्थ लगाकर उसका आचरण में प्रयोग करते हैं वहीं कालांतरण में उस धर्म के नियम बन जाते हैं। धर्म के इस बदलाव को जहीर जी कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं,

“धार्मिक आस्था के नियम
हर सदी में निराले मिले”²

स्पष्ट है कि धार्मिक आस्था यह एक संवेदनशील विषय है। इसके प्रति धर्म के अनुयायी हर समय सजग रहते हैं। किंतु कई बार अपनी सुविधानुरूप इन नियमों में जानबुझकर बदलाव किये जाते हैं, जो आग चलकर एक नियम का रूप ले लेते हैं।

मूलतः धर्म और राजनीति यह दोनों अलग-अलग क्षेत्र हैं। धर्म का कार्य है, समाज में सद्भावना, सद्विचार, भाईचारा, प्रेम स्थापित करे। यह कार्य हमारे अतीत में तत्परता के साथ संपन्न हुआ दिखाई देता है। किंतु वर्तमान में धर्म के क्षेत्र में राजनीति का पदार्पण हुआ है तब से जो संत अपने सद्विचार से समाज जीवन को आलोकित करते रहे हैं, उनकी वह अमृत वाणी आज व्यर्थ लगती है। आज अनेक ऐसे संत हैं, जो राजनीतिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। इसी बात पर प्रकाश डालते हुए जहीर जी अपनी ग़ज़ल के एक शेर में संतों की बाणी पर प्रहार करते हुए कहते हैं,

“राजनैतिक हुई इसलिए,
व्यर्थ संतों की बानी लगे।”³

राजनीतिक लालसा के चलते आज अनेक संत राजनीति में सक्रिय दिखाई देते हैं। हम सभी जानते हैं कि राजनीति में सच कम और झूठ का सहारा अधिक लिया जाता है। जनता से केवल वादें किये जाते हैं और सत्य किसी कोने में पड़ा रहता है। आज इसी राजनीति में सक्रिय होने पर संतों की बानी व्यर्थ लगती है इसमें कोई दुहराय नहीं। संतों का यह दयित्व है कि, समाज को सही दिशा प्रदान करे, उपदेश प्रदान करे किन्तु जो संत अपनी जिम्मेदारियों को निभाना नहीं जानता वह संत ग़ज़लकार की दृष्टि से कायर है। ग़ज़लकार जहीर कुरेशी के शब्दों में,

“जो जिम्मेदारियों से भाग आया,
मुझे वो सन्त कायर लग रहा है।”⁴

एक ओर ग़ज़लकार ने संतो का राजनीति के प्रति आकर्षण धर्म के क्षेत्र में बाधा के रूप में प्रकट किया है तो दूसरी ओर संतों की जिम्मेदारियों पर प्रकाश डालते हुए जो संता अपनी जिम्मेदारी निभाने में सक्षम नहीं उन पर करारे प्रहार भी किये हैं।

संत-फ़कीर समाज को सत्य की राह दिखाने वाले एक प्रमुख पथप्रदर्शक होते हैं। उनमें दया, शांति, अपनापा, प्रेम, शांति-संयम के भाव कुट-कुट कर भरे होते हैं। किंतु जीस संत-फकीर में ये भाव नहीं पाये जाते वह समाज को क्या नई राज प्रदान कर पायेंगे ? संतो में ही अगर संयम न हो तो धार्मिक टकराव की स्थिति में क्या समाज में शांति बनी रह पायेंगी ? संत-फ़कीरों में नीहित क्षमा भाव के अभाव और उसके परिणामों को जहीर कुरेशी एक ग़ज़ल के एक शेर द्वारा इस प्रकार प्रकट करते हैं,

“संत-फकीरों में न हो, अगर क्षमा का भाव,
तो धर्मों के बीच में, होंगे ही टकराव।”⁵

यहां पर जहीर कुरेशी ने संत-फकीरों की में नीहित क्षमाभाव के अभाव को लक्ष्य कर धार्मिक टकराव की होने के कारनों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है।

आज आधुनिकता के इस दौर में बाजारवादी युग ने हर किसी को अपनी ओर आकर्षित किया है। आज तो बाजार का स्वरूप पुरी तरह मुक्त बन चुका है। जिसमें हर कोई अपने आप को आजमा कर धनवृद्धि के प्रयास करता दिखाई देता है। इस मुक्त बाजार ने आम जनमानस को तो अपनी ओर आकर्षित किया ही है, साथ ही संत भी इसके प्रभाव से अछुते नहीं रहे। वे इस बाजार की होड़ में पुरी तरह उतर चुके हैं और ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु उनेक प्रकार के उत्पाद बाजार में उतार चुके हैं। इसी बात पर प्रकाश डालते हुए ग़ज़लकार कहते हैं,

“संत भी मुक्त लगते नहीं
आजकल मुक्त-बाज़ार से”⁶

जहां पर संत और बाजार की बात की जाये तो वर्तमान में ‘पतंजली’ के विभिन्न प्रकार के उत्पादों का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

धार्मिक विद्वेषता यह समाज को लगा एक रोग है। जिस समाज या संप्रदाय में धार्मिक विद्वेष की चिंगारी फैलती है, वहाँ हमेशा अशांति का माहौल बना रहता है। नफरत की चिंगारी आदमी को आदमी नहीं रहने देती। परिणामतः आम जनमानस का जीवन नकमय बन जाता है। ऐसी ही प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए जहीर कुरेशी कहते हैं,

“जिस शहर को न भूख मार सकी,
लोग नफरत से मर रहे थे वहां!”⁷

नफरत आदमी को अंधा बना देती है। जिस कारन वह अपना सदसद्विवेक खो देता है। स्पष्ट है कि भूख से लड़ाई कर आदमी जैसे तैसे जिवित रह सकता है किंतु नफरत उसे भूख से कई गुना अधिक तेजी से समाप्त कर देती है। ग़ज़लकार संवेदना के धरातल पर स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं कि, नफरत को छोड़ कर प्रेम, सौहार्द तथा शांति का अपनाये। किंतु नफरत से ग्रसीत व्यक्ति हो या समाज पुरी तरह अंधा हो जाता है। जिसका कोई रुख नहीं होता। वह दिशाहीन पंछी की भाँती भटकता रहता है और अपनी चपेट में जो आये उसे समाप्त करने पर तुल जाता है। सांप्रदायिक विवादों के चलते लोग किस प्रकार पागल बन जाते हैं, इसे ग़ज़लकार ने कुछ इस प्रकार प्रकट किया है,

“आपने देखे नहीं दो ‘संप्रदायों’ के,
लोग हो जाते हैं जब पागल विवादों में!”⁸

वैसे देखा जाये तो मानव जीवन किसी युद्ध से कम नहीं। मानव को जीवन यापन करते समय अनेक प्रकार की कठिनाईयों को पार कर आगे कि ओर बढ़ना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार धर्म-युद्ध की बात की जाये तो उसे जितने के लिए भी अनेक कठिन प्रसंगों से होकर गुजरना पड़ता है। मूलतः सच्चाई की राह बहुत ही कठिन है, जिस पर चलना आसान नहीं होता। मानव जीवन का धर्म है कि वह अपने कर्तव्य का निर्वहन ठीक से करे यकिनन कठिनाईयों के बावजूद अंत में जीत प्राप्त होगी। जिस प्रकार धर्म युद्ध में कौरव-पांडवों की बात की जाये तो पांडवों को अनेक कठिनाईयों के बाद विजय प्राप्त हुई थी। ठीक उसी प्रकार मानव जीवन भी किसी धर्म-युद्ध से कम नहीं। इसी बात पर प्रकाश डालते हुए जहीर कुरेशी अपनी गज़ल के एक शेर में कहते हैं,

“ये ज़िन्दगी, क्या किसी धर्म-युद्ध से कम है
ये धर्म-युद्ध है - जारी था और जारी है”⁹

गज़लकार जहीर कुरेशी ने यहाँ पर संवेदना के धरातल पर मानव जीवन को धर्म-युद्ध से जोड़कर मानव जीवन की कठिनाईयों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। साथ ही गज़लकार इस बात को भी स्पष्ट करते हैं कि, मानव जीवन की सार्थकता सत्य के कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने में ही है। जो निरंतर जारी रहेगी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, गज़लकार जहीर कुरेशी आधुनिक हिंदी गज़ल क्षेत्र के एक प्रमुख हस्ताक्षर थे। जिन्होंने अपनी गज़लों द्वारा समाज के विभिन्न पहलुओं को संवेदना के धरातल पर अभिव्यक्त किया है। समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ, विज्ञान, टेक्नॉलॉजी आदि कई क्षेत्र उनकी गज़लों में उभरकर आये हैं। गज़लकार ने धार्मिक परिवेश में व्याप्त अनेक पहलु जैसे समाज का आचरण, संतों का कर्तव्य-कर्म, लोगों की धर्म के प्रति दृष्टि, धार्मिक विद्वेष, प्रेम, अपनापा, शांति, सौहार्द आदि कई पहलुओं को समयसापेक्षता तथा यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति प्रदान कर समाज को एक नई दिशा प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

संदर्भ-

1. दोहों से दोजा-गज़लों तक- जहीर कुरेशी, पृ. 57
2. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा - जहीर कुरेशी, पृ. 57
3. भीड़ में सबसे अलग- जहीर कुरेशी, पृ. 17
4. बोलता है बीज भी - जहीर कुरेशी, पृ. 100
5. दोहों से दोजा-गज़लों तक- जहीर कुरेशी, पृ. 89
6. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा - जहीर कुरेशी, पृ. 31
7. चाँदनी का दुःख - जहीर कुरेशी, पृ. 82
8. चाँदनी का दुःख - जहीर कुरेशी, पृ. 102
9. समंदर ब्याहने आया नहीं है- जहीर कुरेशी, पृ. 71

धूमिल के काव्य में संवैधानिक मूल्यों का चित्रण

डॉ मुकुंद कवडे
हिंदी विभाग,
पीपल्स महाविद्यालय नांदेड़.

आजादी किसी के भी जीवन में अहम होती है, चाहे वह मनुष्य हो या अन्य प्राणी, पशु-पक्षी हो हर प्राणी आजादी मिलने हेतु संघर्ष करता रहता है। मनुष्य अपने जीवन में आजादी या स्वतंत्रता के लिए हर संभव प्रयास करता है। विवेकशील मनुष्य तो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अधिक सचेत जागृत रहता है। आधुनिकता की प्रक्रिया प्रारंभ होने के पश्चात भारतीय जनता अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति हेतु प्रयासरत थी कई महान स्वतंत्रता सेनानियों और भारत की जनता के स्वाधीनता संग्राम के फल स्वरूप भारत ने 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। स्वाधीनता मिलने के पश्चात भारतीय गणराज्य की स्थापना हुई। भारतीय संविधान में न्याय, स्वतंत्रता, समता, बंधुता, एकता, अखंडता, गणतंत्र आदि संवैधानिक मूल्यों को अपनाया गया।

भारतीय स्वतंत्रता भारतीय इतिहास के साथ-साथ वैश्विक इतिहास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारतीयों ने एक लंबे ऐतिहासिक युग के पश्चात स्वाधीनता का अनुभव किया। आजादी का ऐतिहासिक आंदोलन और आजादी के पश्चात भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था का वास्तविक अंकन सभी समकालीन कवियों ने किया है। संवेदनशील कवि धूमिल के काव्य में भी समता स्वतंत्रता गणतंत्र एकता न्याय अखंडता जैसे संवैधानिक मूल्यों की वास्तविक स्थितियों का अंकन हुआ है। समकालीन कवियों की तरह धूमिल की कविता में भी संवैधानिक मूल्यों के संबंध में नकारात्मक स्थिति मिलती है किंतु इसे तत्कालीन वास्तविकता की दृष्टि से देखना होगा।

स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण संवैधानिक मूल्य है संविधान द्वारा हर भारतीय नागरिक को विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास आस्था, उपासना आदि की स्वतंत्रता मिली है। स्वतंत्रता तो हमें मिली किंतु उसके पश्चात भारतीय समाज में कई तरह के शोषण हो रहे थे देश के जननायक सत्ता और कुर्सी के जोड़-तोड़ में डूबे रहे, फाइलों में योजनाएं बनती रही, खोखले और अर्थहीन नारे लगाए जाते रहे, पूंजीपति वर्ग अफसरों एवं स्वार्थी नेताओं का सहारा प्राप्त कर आम जनता का शोषण करता रहा इन स्थितियों को देखकर धूमिल स्वतंत्रता के घोषणा पत्र पर ही सवाल करते हैं-

धुंधलाती आंखें पढ़ना चाहती है
आजादी का घोषणापत्र
किसने चुराई है रोशनी
अन्न और वस्त्र कहां है तुम्हारे लिए
कहां है मेहनत पर जीने का कौल
किसने काटे हैं हाथ?¹

आजादी का अनुभव भारतीय जनमानस में निराशा एवं आक्रोश में परिवर्तित हुआ। सबकी आशाएं बिखरने लगी और जनतंत्र की असलियत सामने आने लगी और मन में बार-बार यही प्रश्न उपस्थित होता रहा कि वाकई क्या यह प्रजातंत्र या पूंजीतंत्र है। स्वाधीनता के बाद जो सपने दिखाए थे वह तो पूरे नहीं हो रहे थे ऊपर से शोषण अलग से हो रहा था। कवि के अनुसार संवैधानिक व्यवस्था में भारतीय जनमानस की समस्याओं को कोई हल नहीं कर रहा था। इसलिए धूमिल अपनी कविता अकाल दर्शन में कहते हैं कि

उस मुहावरे को समझ गया हूं
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है और न मौसम
बदल रहा है।²

भारतीय संविधान भारत के सभी लोगों के लिए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करता है। न्याय सामाजिक समता के लिए महत्वपूर्ण होता है। सुदामा पांडे धूमिल ने तत्कालीन वास्तविकताओं को आंखों से

देखा समझा और उसे ही अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। न्याय प्राप्त करने के लिए आम आदमी को ही संघर्ष करना पड़ता है। कवि के अनुसार पूंजीपति पर अन्याय होता ही नहीं तो उसके लिए न्याय की आवश्यकता ही नहीं है बल्कि वह गरीब का हर तरह से शोषण करता है इसकी अभिव्यक्ति उनकी 'गांव में कीर्तन' कविता में हुई है वे कहते हैं कि,

गांव की सरहद पार करके
कुछ लोग
बगल में बस्ता दबाकर कचहरी जाते हैं
और न्याय के नाम पर
पूरे परिवार की बर्बादी उठा लाते हैं।³

न्याय के नाम पर कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाते लगाते पूरा परिवार बर्बाद होता है किंतु न्याय नहीं मिल पाता है। धूमिल के अनुसार स्वाधीनता मिलने के कई सालों बाद भी संविधान के अनुसार भारतीय व्यवस्था नहीं चल रही है। संविधान के सभी नीति नियम तो होते हैं किंतु कई स्वार्थी लोग अपने अपने हिसाब से उसका अर्थ निकालते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं, जिसमें संवैधानिक मूल्यों का हनन होता है। कवि अपनी प्रसिद्ध कविता 'मुनासिब कार्रवाई' में इसी बात को कहते हुए न्याय इस संवैधानिक मूल्य पर व्यंग्य करता है। कवि कहता है कि,

यह न्याय के लिए है
क्योंकि इसमें थोड़ा सा भी विवेक है
वह जानता है कि आजकल
शहर के कोतवाल की नियत है
और हथकड़ी का नंबर एक है।⁴

वस्तुतः धूमिल की कविता परिवेश की विसंगति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करती है। समकालीन कविता के अध्येता दयानंद शर्मा ने ठीक ही कहा है कि "धूमिल ने शोषण की की संपूर्ण प्रतिक्रियाओं और सामाजिक विसंगतियों को बेबाक स्वरों में ग्रहण करते हुए ऐसी पटकी लगाई है कि वे स्थितियां बेनकाब हो कर सामने आ जाती हैं।"⁵

समता एक महत्वपूर्ण संवैधानिक मूल्य है। भारत में विशेष रूप से सामाजिक समता की अधिक चर्चा होती है। कई जाति धर्म से युक्त भारत देश में सामाजिक असमानता फैली हुई है। हालांकि कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों, रचनाकारों ने सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयास किया है फिर भी भारत देश की स्थितियों का अंकन करने के पश्चात समता की हमें वास्तविकता दिखाई देती है। कवि धूमिल अपनी मोचीराम कविता के माध्यम से सामाजिक दृष्टि का परिचय देते हैं। वे कहते हैं कि,

बाबूजी सच कहूं मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है।⁶

भारत की स्वाधीनता मिलने के पश्चात कई वर्षों बाद भी भारत में आर्थिक और सामाजिक समता स्थापित नहीं हो पाई है और वर्तमान स्थितियों को देखने के पश्चात समता स्थापित होने की कोई गुंजाइश भी दिखाई नहीं देती है। वस्तुतः धूमिल जनतंत्र की सामाजिक व्यवस्था में स्थित समग्र विषमता को नष्ट कर वर्गविहीन राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे किंतु पूंजीपतियों और कुछ धर्मांध व्यक्तियों द्वारा पूरी कोशिश होती रही है कि ऐसी व्यवस्था बनी रहे, इसलिए धूमिल अपनी 'भाषा की रात' कविता में कहते हैं कि,

मुझ में भी आग है
मगर वह
भभककर बाहर नहीं आती
क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ
एक पूंजीवादी दिमाग है।⁷

भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक विषमता को देखकर कवि आक्रोश व्यक्त करता है।

स्वतंत्रता, समता, न्याय की तरह बंधुत्व भी एक महत्वपूर्ण संवैधानिक मूल्य है। वस्तुतः इसके माध्यम से भारत के सभी लोगों के मन में समान बंधुता को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण उद्देश्य संविधान सभा के सामने था। वैसे देखा जाए तो विश्व बंधुत्व की कल्पना भारत की एक महत्वपूर्ण धरोहर है। इस बात को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान में बंधुत्व को एक महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में अपनाया गया है। धूमिल को लगता है कि चारों तरफ मूल्यों का हास हो रहा है और मनुष्य मूल्यहीन परिवेश में जी रहा है उसे कोई पथ दिखाई नहीं दे रहा है। मूल्यों के सामान्य संकट में धूमिल सचेत थे। तत्कालीन समय समाज में नफरत, झूठ, छल, कपट, आदि का साम्राज्य इतना छा गया कि भाईचारा, सहानुभूति, प्रेम आदि भावनाएं समाप्त हो रही हैं। धूमिल ने समाज के झूठे मूल्यों को नकार कर उन सब समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया जो हम सबकी थी। इसलिए धूमिल आज के इस अमानवीय संकट के संदर्भ में कहते हैं कि,

सहानुभूति और प्यार
अब एक ऐसा छलावा है जिसके जरिए
एक आदमी दूसरे आदमी को अकेले
अंधेरे में ले जाता है और
उसके पेट में सुरा भोग देता है।⁸

धूमिल ने इस बात पर अधिक बल देते हुए कहा है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सभी प्रकार के मूल्यों पर संकट आया है। प्रेम, सहानुभूति, नैतिकता, भाईचारा, ईमानदारी, न्याय, समता, स्वतंत्रता, बंधुता सभी का पतन हो रहा है। उसकी जगह फरेब, धोखा, झूठ, अनैतिकता, शोषण नफरत, अविश्वास, बढ़ रहा है। इन सभी स्थितियों को देखकर धूमिल का कवि मन संवैधानिक मूल्य पर प्रश्नचिन्ह निर्माण करता है। वर्तमान स्थितियों को देखने के पश्चात यही सच लगने लगता है कि "समकालीन परिवेश में मूल्यों का संकट एक महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है ऐसा लगता है कि पूरे देश में चरित्रहीन तथा मानवीयता अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई है। प्रेमभाव, सच्चाई, ईमानदारी, भाईचारा, सहानुभूति, देश प्रेम आदि मूल्य प्रायः समाप्त हो गए हैं।"⁹

अतः निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि भले ही भारतीय समाज में संवैधानिक मूल्य अच्छी तरह से बस गए हो और आज उन मूल्यों की स्थिति भी पहले की तुलना में अच्छी रही हो फिर भी जिस तरह से संवैधानिक मूल्य भारतीय समाज में पनपने चाहिए थे वे पनपे नहीं या यह कहे कि कुछ स्वार्थी लोगों ने इन मूल्यों को जानबूझकर पनपने नहीं दिया और न ही एक बेहतर जनतांत्रिक व्यवस्था निर्माण होने दी है इसी कारण धूमिल ने तत्कालीन वास्तविक स्थितियों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है और किस तरह से इन संवैधानिक मूल्यों की अवहेलना होती गई है इसे अपनी कविताओं के माध्यम से चित्रित करने की कोशिश की है।

संदर्भ :-

1. धूमिल, सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, हत्यारे दो, पृ. सं 70
2. धूमिल, संसद से सड़क तक, अकाल दर्शन, पृ. सं. 19
3. धूमिल, कल सुनना मुझे, गांव में कीर्तन, पृष्ठ संख्या 76
4. धूमिल, संसद से सड़क तक, मुनासिब कार्रवाई, पृ. सं 84
5. दयानंद शर्मा, आधुनिक कवि और उनका काव्य, पृ. सं 78

6. धूमिल, संसद से सड़क तक, मोचीराम, पृष्ठ संख्या 41
7. धूमिल, संसद से सड़क तक, भाषा की रात, पृष्ठ सं. 95
8. धूमिल, कल सुनना मुझे, दूसरे का घर, पृष्ठ संख्या 46
9. धर्मपाल पीहल, साठोत्तरी हिंदी कविता, पृष्ठ सं. 124



हिंदी दलित साहित्य : मानव अधिकारों की पहल

डॉ. जयंत जानोबा बोबडे

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
श्री शिवाजी महाविद्यालय, परभनी

भूमिका :

साहित्य समाज का दर्पण होता है, अतः सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक समस्याएँ, संघर्ष और द्वन्द्व इसमें अभिव्यक्त होते आये हैं। साहित्य में समाजशास्त्र और दर्शन सदा से ही इन समस्याओं से रूबरू होते आये हैं। प्राचीनकाल के एकेश्वरवाद, द्वैत-अद्वैत, सगुण-निर्गुण आदि से लेकर आधुनिक काल के छायावाद, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद आदि वाद-विवादों ने साहित्य की गति को आगे बढ़ाया है। आर्थिक आधारों पर व्यक्ति और समाज की व्याख्या करके मार्क्सवाद ने वर्ग-चेतना द्वारा सर्वहारा की मुक्ति और सामाजिक-आर्थिक समानता की चेतना फैलायी। व्यावहारिक स्तर पर भले ही इसे सफलता न मिली हो किन्तु चेतना के स्तर पर इसने जो विश्वव्यापी समाजवादी दर्शन दिया वह मानव सभ्यता को बहुत बड़ी देन है। यह चेतना-दर्शन आज भी समाज और साहित्य की मुख्य धारा में शामिल है। हिंदी का दलित साहित्य इसी संवेदना को आगे बढ़ाते हुए मानवीय पक्ष को लेकर पाठकों के सामने आता है। सदियों से दबेकुचले समाज को मुख्यधारा में लाने का महत्वपूर्ण कार्य दलित साहित्य ने किया है। दलित साहित्य के विभिन्न विधाओं के माध्यम से साहित्यकारों ने मानवमुक्ति की बात कर प्रत्यक्ष रूप से मानव अधिकार की बात की है। प्रस्तुत आलेख में इसी विषय को लेकर चिन्तन किया है।

महत्वपूर्ण शब्द :

दलित साहित्य, मानव अधिकार, पहल, बुनियाद, चेतना, दर्शन, शोषित, विकास, ईमानदार, आन्दोलन, छुआछुत आदि।

पद्धति :

प्रस्तुत शोधालेख को लिखने के लिए विवेचनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। जिसमें दलित साहित्य तथा मानव अधिकार इस विषय पर विद्वानों द्वारा लिखे गए पुस्तकों, लेखों तथा सन्दर्भों का सहारा लिया गया है।

उद्देश्य:

१. दलित साहित्य के अर्थ को स्पष्ट करना।
२. दलित साहित्य की अवधारणा स्पष्ट करना।
३. दलित साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करना।
४. हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति को स्पष्ट करना।
५. मानव अधिकारों के सन्दर्भ में दलित साहित्य किस प्रकार बुनियाद का काम कर रहा है इसका विवेचन करना।
६. हक की लड़ाई को स्पष्ट करते हुए दलित साहित्य किस प्रकार प्रेरणा का साहित्य बना है इसका विवेचन करना।

दलित शब्द का अर्थ :

'दलित' शब्द की उत्पत्ती संस्कृत भाषा के 'दल' धातू से हुई है। नागरी प्रचारणी सभा काशी से प्रकाशित संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में दलित और पददलित अर्थ दिया है। जैसे पददलित पैरों से रौंदा या कुचला हुआ, जो दबाकर बहुत हीन कर दिया गया है। मराठी शब्द कोश में भी "दलित शब्द" का अर्थ इसी प्रकार से दिया गया है। दलित तुड़वलेले, चुरडलेले, मोडलेले, इंग्रजी मध्ये 'डिप्रेस्ड क्लासेस' जिसे सदा ही रौंदा या मसला गया वह जाति ही दलित है। दलित शब्द का कोशगत अर्थ है- जिसका दलन और दमन हुआ है, जो दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ है, वंचित है। इस अर्थ का सहारा लेकर आज बहुत से विद्वान उस प्रत्येक रचना को दलित साहित्य के अंतर्गत रखना चाहते हैं जिसमें शोषण का चित्रण हुआ है। वे मार्क्स द्वारा प्रयुक्त सर्वहारा शब्द का हवाला देते हैं। परंतु सर्वहारा शब्द का अर्थ अलग है और दलित शब्द का अर्थ अलग है। प्रसिद्ध दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय कहते हैं, मदलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद है। दलित की व्याप्ति सीमित है, तो सर्वहारा की अधिक। सर्वहारा अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।

मानव अधिकार : अर्थ -

मानव अधिकारों से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से हैं जो व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। यह अधिकार भारतीय संविधान के भाग-तीन में मूलभूत अधिकारों के नाम से वर्णित किए गए हैं और न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। इसके अलावा ऐसे अधिकार जो अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकार किए गए हैं और देश के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं, को मानव अधिकार माना जाता है। मानव अधिकार सबके अर्थात् स्त्री, पुरुष, बच्चे एवं वृद्ध लोगों के अधिकार हैं, और सब को समान रूप से प्राप्त है। इन अधिकारों का हनन जाति, धर्म, भाषा, लिंग-भेद के आधार पर नहीं किया जा सकता है। यह सभी अधिकार जन्मजात अधिकार हैं। मानव अधिकार, मानव स्वभाव में ही अंतर्निहित है तथा इन अधिकारों की अनिवार्यता मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिये सदैव रही है। मानव अधिकार सबके अर्थात् स्त्री, पुरुष, बच्चे एवं वृद्ध लोगों के अधिकार हैं, और सब को समान रूप से प्राप्त है। इन अधिकारों का हनन जाति, धर्म, भाषा, लिंग-भेद के आधार पर नहीं किया जा सकता है। यह सभी अधिकार जन्मजात अधिकार हैं। मानव अधिकार, मानव स्वभाव में ही अंतर्निहित है तथा इन अधिकारों की अनिवार्यता मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिये सदैव रही है।

दलित साहित्य की अवधारणा :

भारतीय साहित्य में नविनतम एवं अनुपम बदलाव के रूप में जो साहित्य उभरकर हमारे सामने आया है वह दलित साहित्य है। आधुनिक काल में "दलित" शब्द का विशेष अर्थ प्राप्त हो रहा है। दलित शब्द को लेकर हिन्दी साहित्य के विद्वानों में मतभेद है। डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरने बहिष्कृत अछूत शब्द का प्रयोग किया है। प्राचीन साहित्य में शुद्र, दलित शब्द का प्रयोग हो रहा है। दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गांव की सीमा के बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकरी जनता और यायावर जातियाँ सभी के सभी दलित शब्द से व्याख्यायित होती है। दलित शब्द की व्याख्या केवल अछूत जाति

का उल्लेख करना पर्याप्त नहीं होगा, इसमें सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े का भी समावेश हुआ है। हिंदी काव्य परंपरा पर एक विहंगम दृष्टव्य डालने पर ज्ञात होता है कि, दलित साहित्य की परिकल्पना का नवीन्येस अभी हिंदी में अंकुरित होकर धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रेसर हो रहा है। हिंदी काव्य में सबसे पहले कबीर की वाणी ने दलित वर्ग की करुणा व वेदना को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया है। आज साहित्य में दलित साहित्य केंद्र में है। बहुत से विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि दलित साहित्य ही भविष्य का साहित्य होगा। दलित साहित्य ही वह साहित्य है जो अपनी अर्थवत्ता बनाएं हुए है। वह प्रतिबद्ध साहित्य है। उसका अपना समाज दर्शन है। वह कला के मूल्यों को महत्व देता है, परंतु उससे अधिक अभिव्यक्त होनेवाले समाज को महत्व देता है। वह परिवर्तन कामी है। इसलिए आज उसकी अर्थवत्ता बनी हुई है और भविष्य में भी रहेगी। गैर दलित साहित्य में यह बात बहुत कम देखने को मिलती है। दलित साहित्य का प्रारंभ मराठी साहित्य से माना जाता है इस सन्दर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल कहते हैं, “ध्यान भी आया कि मराठी में दलित साहित्य-आन्दोलन सन् 1960 के बाद चला। इस आन्दोलन की वैचारिक भूमि का निर्माण रानाडे, ज्योतिबा फुले तथा डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने किया है। इन तीनों ने जातिप्रथा, वर्ण-व्यवस्था, अछूत-समस्या, जातिवादी साम्प्रदायिकता, गैर-ब्राह्मणों के अधिकार की लड़ाई को तीव्र किया। राजनीतिक चेतना के स्तर पर अम्बेडकर ने लोक-जागरण को बदलना है। पूरी हिन्दू सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था जातिप्रथा से नियंत्रित है। फलतः जातिप्रथा के मुकम्मल वज्र ढाँचे को तोड़े बिना कोई भी सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं है। फिर राजनीतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के पीछे आता है”। मराठी साहित्य में जन्मा यह साहित्य हिंदी में विस्तार ले रहा है। अछूतों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य कहा जाता है। इस सन्दर्भ कृष्णदत्त पालीवाल का मत दृष्टव्य है वे कहते हैं, “मराठी दलित साहित्य की सम्पूर्ण वैचारिक-सामाजिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देते ही यह तथ्य उभरकर सामने आ जाता है कि साहित्य का विषय-क्षेत्र बहुत सीमित है। यह विचार कि दलित ही दलित व्यथा को वाणी दे सकता है। दलितेतर का दलित-चित्रण झूठी करुणा का प्रलाप है अपने आप में उस साहित्य पर प्रश्नचिह्न लगाता है”।

हिंदी दलित साहित्य में मानव अधिकारों की पहल :

कुछ ही दशक पहले मानव अधिकारों की बात की जाने लगी है। समग्र हिंदी के दलित साहित्य में मानव अधिकारों की बात अपनी पूरी ताकद के साथ कही गयी है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हिंदी का दलित साहित्य पुरे भारतीय साहित्य के लिए मार्गदर्शक बना है। हिंदी की विभिन्न विधाओं के माध्यम से मानव अधिकारों की बात किस प्रकार से की गयी है उसका विवेचन निम्न बिन्दुओं के माध्यम से कर सकते हैं।

हिंदी दलित कहानी :

समग्र दलित साहित्य अन्याय तथा अत्याचार के विरोध का साहित्य है, लेकिन कहानी विधा के रूप में विरोध प्रतिरोध का तेवर अपेक्षाकृत ज्यादा मुखर और प्रबल होता हुआ दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि आत्मकथा, जो कि दलित साहित्य की प्रतिनिधि विधा है, व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में संघर्ष गाथा बनकर रह जाती है, कविता कवि का आक्रोश, नाटक स्थितियों का बयान। परन्तु कहानी लेखक, पात्रों, घटनाओं, परिवेश आदि का ऐसा समग्र बिम्ब प्रस्तुत करती है कि जो पाठक के चेतन, अवचेतन का हिस्सा बन जाती है। इस

अर्थ में दलित कहानी एक उम्मीद जगाती है, एक भाव-संवेदन का संचार करती है। दलित कहानी के विकास पर दृष्टि डालते हैं तो हमें दलित साहित्य की कहानी विधा मानव अधिकारों की पहल करते हुए दिखाई देती है। दलित साहित्य की पहली पीढ़ी में ओमप्रकाश वाल्मीकि से शुरू करें तो जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, अनीता भारती, रजनी सिसोदिया, कैलाश वानखेड़े और संदीप मील जैसे कथाकार मानव अधिकारों का एक विमर्श रचते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कहानीकार मनुष्य ने मनुष्य को किस प्रकार जानवर जैसा सुलूक किया है इसका वास्तविक चित्रण कर मानव अधिकारों की पेशकश करते हुए दिखाई देती है। ये कहानियाँ एक सूत्र में न बांधकर बहुअर्थी संवेदना के सूत्र हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। हिन्दी कहानी में अनेक तरह के उतार-चढ़ाव के उपरान्त अनेक तरह के आन्दोलनों से अलग दलित कहानी बदलते सामाजिक प्रतिरोध का चित्रण करते हुए मानवीय संवेदना को यथार्थ चित्रण की एक विशिष्ट धारा के रूप में चित्रित करते हुए दिखाई देता है। आठवें-नवें दशक तक आते-आते अपनी खास पहचान निर्मित की और धारा के प्रवाह को निरन्तर प्रवाहित किया। दलित कहानी ने अनेक समस्याओं का सामना किया तथा अपने सर्जनात्मक आक्रोश को स्वर देकर बदलाव के आयाम स्थापित किए। दलित कहानी का आशय दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा या शोषण का वर्णन करना नहीं अपितु इसके माध्यम से दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि को तोड़ना रहा है साथ ही साथ उनमें अपने अधिकारों को के प्रति जागृत करने की चेतना रहा है। दलित चेतना को लेकर उभरे सशक्त दलित लेखकों की कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

हिंदी दलित उपन्यास :

हिंदी साहित्य लेखन में दलित उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें जीवन का समग्र रूप में प्रस्तुत होता है। उपन्यासकार के समक्ष जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करने की सुविधा होती है जिसमें दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक सन्दर्भों से जुड़े जीवन का वर्णन किया जाता है। दलित उपन्यास साहित्य एक व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित न होकर पूरे समाज का वास्तव प्रस्तुत करता है जो मानवीय मूल्यों के साथ मानव अधिकारों की पहल करता है। समाज की समस्याओं, परम्पराओं एवं नीतियों के अन्याय के विरुद्ध एक अलग अवधारणा की स्थापना के उद्देश्य से दलित उपन्यास लिखे गये हैं तथा समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों तथा विषमतावादी परिस्थितियों को केन्द्रित करके उनकी विद्रूपताओं का चित्रण उपन्यास में किया जा रहा है। समाजवादी व्यवस्था के संघर्षरत मनोभावना और मनोकामना को चित्रित करने का काम दलित उपन्यासकारों ने बखूबी किया है जिससे शिक्षा से वंचित दलित समानता का संवैधानिक अधिकार पाकर अब शिक्षा पाने लगे हैं। साथ वो अब अपने अधिकारों तथा हकों की बात करने लगा है। गाँव से शहर जाकर अच्छे पदों पर नौकरियाँ करने लगे हैं तथा साथ ही वे समता, स्वतन्त्रता, बंधुता और सम्मान के साथ अपने अधिकारों को समझने लगे हैं। आज तक साहित्य की सीमा से दरकिनार रहे दलित, पिछड़े, उपेक्षित आदि को दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में स्थान दिया है। आज का उपन्यास यथार्थवाद के साथ मानवीय संबंधों को वास्तविकता को स्पष्ट करता जा रहा है। दलित उपन्यास का उद्देश्य निश्चय ही सवर्णों द्वारा लिखे उपन्यासों की अपेक्षा बिल्कुल अलग है। दलित उपन्यासों ने समय दर समय दलितों के विभिन्न

प्रश्नों को यथार्थ दृष्टि से पाठको के सम्मुख प्रस्तुत कर मानव अधिकारों की पहल की जो अपने जीने की राह को दिखाने में सफल हुई है.

हिंदी दलित कविता

साहित्य समाज परिवर्तन का महत्वपूर्ण हथियार माना जाता है, जो मानसिक रूप से विचारों को मजबूत बनाने करता है. दलित साहित्यकारों ने भी इसी हथियार का सहारा लेकर समाज में नए नैतिक तथा सामाजिक मूल्य स्थापित करने की कोशिश की, जिसकी तीव्र रचनात्मक अभिव्यक्ति दलित साहित्य की प्रथम प्रमुख विधा कविता में देखने को मिलती है. दलित कवियों ने हिन्दू धर्म, वर्ण व्यवस्थाजन्य जाति भेद से उत्पन्न समता और एकता विरोधी तमाम तत्वों को अपनी रचनाओं में नकारा है और दलितों के अधिकारों की और मानव अधिकारों की बात की यह युग परिवर्तन के लिए क्रांतिकारी संचेतना रही है. वर्ण-व्यवस्था से निर्माण हुए संकटों को वे चुपचाप सहन करने को तैयार नहीं हैं. दलित कविता को सम्मानपूर्वक जीवन जीने और युगीन मानवीय अधिकारों का पक्ष प्रस्तुत करती है. कोई भी दलित कवि कविता के लिए कविता नहीं लिखते, बल्कि कविता उनकी मुक्ति का और अधिकारों का मार्ग प्रशस्त करती है वे इसी मुक्ति के लिए कविता लिखते हैं. मुक्ति और मानव अधिकार उसका साध्य और कविता साधन है. भारतीय सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था में दलित समाज को अब तक तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित रहना पड़ा है. हिन्दी दलित कविता इसी व्यवस्था के प्रति दलित समाज की वेदना को प्रकट करने के साथ-साथ विद्रोह प्रकट करती है जिसमें दलित कवियों ने अस्पृश्यता, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण कर अपने अधिकारों की बात की है. अपितु मुख्य लक्ष्य जीवन में घृणा की जगह प्रेम, समता, बन्धुता, मानवीय मूल्यों का संचार करना तथा मानव अधिकारों की पहल करना ही दलित कविता का मुख्य लक्ष्य है.

हिंदी दलित आत्मकथा :

अमेरिका में लिखा गया नीग्रो साहित्य, भारत के दलित साहित्य की प्रेरणा बना. 'फुले' और 'अम्बेडकर' ने जिस प्रकार का आत्मकथा-लेखन मराठी में किया वह भारतीय साहित्य में अप्रतिम और दिशादर्शक रहा है. आत्मकथा-लेखन की कोई परम्परा हमारे साहित्य में पहले नहीं रही क्योंकि जिस बेबाकी, ईमानदारी और अपने प्रति जिस कठोरता और क्रूरता की माँग यह विधा करती है वह भारतीय चरित्र का हिस्सा नहीं था शायद इसका कारण यह है कि हमारे धार्मिक, सामाजिक संस्कार हमें वस्तुपरक और यथार्थवादी बनाने की अपेक्षा पाखण्डी अधिक बनाते हैं. इस पाखण्ड को मराठी के दलित लेखकों ने बड़ी हिम्मत से तोड़ा इसीलिए इसमें अक्करमाशी (शरण कुमार लिंबाले) चाणी का स्वाद (दया पवार), बबलू की टहनियाँ (लक्षण माने) और हकीकत (केशव मेश्राम) जैसी आत्मकथाएँ लिखी जा सकीं. जिन्हें पढ़कर हमें एक-से एक दिल दहला देनेवाले अमानवीय संसार का साक्षात्कार होता है. इनकी परिणति में हिन्दी में भी कुछ दलित लेखकों ने भी अपनी आत्मकथाएँ लिखीं, इसमें मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' और सूरजपाल चौहान की 'तबादला' का यहाँ सहज ही उल्लेख किया जा सकता है.

निष्कर्ष :

दलित-साहित्य ने वर्ण, नस्ल और लिंग-भेद को अपना विषय बनाया है और समाज में सदियों से व्याप्त जाति और वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी है। यह सामाजिक संरचना की तह में छिपे षड्यन्त्र और प्रपञ्च का पर्दाफाश करता है और बताता है कि किसप्रकार से सदियों से दलितों के मानव अधिकारों का हनन किया है। अपनी गलित दलित स्थिति के प्रति पीड़ा, विषमता के प्रति आक्रोश और व्यवस्था के प्रति विद्रोह इसके प्राथमिक स्वर हैं। हिंदी के दलित साहित्यकारों ने उन मुद्दों को अपने साहित्य के माध्यम से उठाया जो मुद्दे साहित्यिक धाराओं में समाहित नहीं थे। उन संवेदनाओं को साहित्य के माध्यम से चित्रित किया है जो आज साहित्य के सूचि में नहीं थे। इस दृष्टि से हिंदी का दलित साहित्य यथार्थता की पहल के साथ साथ मानव अधिकारों की भी पहल करते हुए दिखाई देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आजकल - अक्टूबर, 1992
२. आजकल - अगस्त, 2001
३. आजकल - दिसम्बर, 2003
४. नया ज्ञानोदय - दिसम्बर, 2006
५. कृष्णदत्त पालीवाल : दलित साहित्य बुनियादी सरोकार
६. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका,
७. पुत्री सिंह कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य
८. डॉ. चन्द्रकुमार वरुणे, दलित साहित्य आन्दोलन
९. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य की हुंकार

दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक संकुचितता

डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे,

हिंदी विभागाध्यक्ष ,

श्री छत्रपती शिवाजी महाविद्यालय , उमरगा,

जिला - उस्मानाबाद ,

भारत देश अनेक धर्म एवं संप्रदायों में विभाजित है। यहाँ अलग-अलग संप्रदाय के लोग निवास करते हैं। हिंदू , सीख , ईसाई , मुस्लिम आदि धर्म का पालन करनेवाले लोग अपनी-अपनी मान्यता से धर्म से जुड़ते हैं, जिनमें मुख्य तौर से हिंदू और इस्लाम धर्म का पालन करनेवाले अत्याधिक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म और संप्रदाय का अभिमान होता है, होना भी चाहिए, परंतु वह एक सीमा में रहकर । मनुष्य में धर्म के प्रति अत्याधिक अभिमान उसको संकुचित बना देता है। परिणाम स्वरूप उसका अन्य धर्म और संप्रदाय के प्रति देखने का भाव सीमित बन जाता है। उसमें सहृदयता या सद्भावना नहीं के बराबर होती है। धीरे-धीरे उसके अंदर अन्य धर्म के प्रति द्वेष की भावना जन्म लेती है। इस भावना का जन्म मनुष्य के मस्तिष्क में होने के बाद उसे केवल अपना धर्म सबसे अच्छा लगता है और अन्य धर्म संप्रदाय गलत । मनुष्य के अंदर इस प्रकार की धार्मिक सोच जब निर्माण होती है तो वह धार्मिक संकुचितता के विकार से ग्रस्त बन जाता है। मनुष्य की अन्य धर्म के प्रति सीमित सोच सामाजिक और धार्मिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। विश्व के इतिहास में इस सोच के हानियों के अनेक प्रमाण मौजूद हैं। दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक संकुचितता के प्रति उपन्यासकारों ने जो संवेदना प्रकट की है , वह पूर्णतया वर्तमान सामाजिक सोच के धरातल पर है। साहित्य, समाज का दर्पण होने के कारण समाज की अच्छी और बुरी छवियों को साहित्य में चित्रित करना रचनाकार का दायित्व है । दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक संकुचितता के प्रति प्रस्तुत संवेदना उसी दायित्व का परिणाम है।

वीरेंद्र जैन कृत 'डूब ' उपन्यास में धार्मिक संकुचितता के कई दृश्य प्रस्तुत हुए हैं। देश को आजादी मिलने के बाद पूरे लडैई गांव में यह अफवाह फैल गई कि "मुसलमानों के रहते आजादी का कोई अर्थ नहीं, तब उन्हें भी मार डाला गया।" (१) यह कार्य गांव के कट्टर हिंदुओं द्वारा घटित हुआ। लडैई गांव के दिगंबर जैन अन्य देवों को धर्माभिमान के कारण कुदेव मानते हैं। माते साव 'पत्थर बब्बा' का दर्शन लेने के बाद ये जैन लोग उन्हें अपनी बिरादरी से बहिष्कृत कर देते हैं । मोती साव उनके सामने लाख गिड़गिड़ाने के बावजूद भी उनकी बिरादरी उन्हें माफ नहीं करती। उन पर आरोप लगाया जाता है कि - " तुमने कुदेव की पूजा की है।" (२) राजनीति भी धार्मिक संकुचितता से प्रभावित है। प्रस्तुत उपन्यास में ठाकुर , मोती साव को गाँव का सरपंच बनाने के लिए राजी नहीं हैं। मोती साव बनिया हैं और ठाकुर नहीं चाहते हैं कि गाँव में यदुवंशी अहीर और रघुवंशी ठाकुर मौजूद रहने के बाद कोई बनिया सरपंच बने। इसलिए ठाकुर को यह अपने जाति तथा बिरादरी का अपमान लगता है। इसलिए वे अपनी धार्मिक संकुचितता से परिपूर्ण भावना को उजागर करते हुए कहते हैं कि - "वो तो मोती साव का नाम सुनकर हमने यह सोची कि इस गाँव में इतने यदुवंशी अहीर मौजूद

हैं , हम रघुवंशी ठाकुर मौजूद हैं , एक बनिया की यह मजाल ! और इस बनिया की करतूत तुम खुद भी तो देख रहे हो। उसे न तुम पर भरोसा है , न किसी और पर। उसे भरोसा है केवल अपने कलदार पर।..."(3) बनिया लोग अपने धर्माभिमान के कारण अन्य जाति के प्रति हेय दृष्टि रखते हैं। उदाहरण के रूप में मँझले साव का अट्टू साव को कहा यह कथन देखिए- "तू यह बातें गाँव वालों को क्यों बताता है ? शहर में छोड़ आया कर यह नए जमाने की नई नई बातें। तेरी बातों पर यकीन करके कल को किसी चमार या बसोर की मताई तेरी मताई के बगल में खड़ी होकर कुँ से पानी भरेगी तब क्या अच्छा लगेगा ?तेरी मताई फिर क्या कभी भी उस कुँ का पानी पी सकेगी? तब जानता है क्या होगा? दिवाले (मंदिर) के कुँ से पानी भरेंगे ये ओछी जाति वाले और तेरी मताई , काकी, आजी मील भर दूर जाएँगी पानी लेने ।फिर कल को ये कमीने जमीन पर नहीं हमारी बगल में चौतरा पर बैठकर बातें करना चाहेंगे।" (4) घूमा के घायल भाई पर इसी संकुचित सोच के कारण वे अट्टू साव को इलाज करने नहीं देते हैं। अपनी खाट पर निम्न जाति के सोये व्यक्ति का आचरण उन्हें अपने धर्म की अवमानना जैसा लगता है। इसलिए वे डपटकर कहते हैं कि - "उठा अपने भाई को ।तेरी इतनी हिम्मत कि हमारी खाट पर.... चल उठा और ले जा अपने टपरे में। " (5) मास्साव अपनी बेटी यशस्वनी का विवाह रामदुलारे से करने का निर्णय लेते हैं। लेकिन मास्साव के रिश्तेदारों को यह संबंध मान्य नहीं है। उनकी दृष्टि में रामदुलारे निम्न जाति के हैं। इसलिए वे मास्साव के इस निर्णय को गलत ठहराते हुए कहते हैं कि - "कैसी भी दशा रही हो मास्साव की , मगर यह तो अधर्म ही हुआ न कि रामदुलारे के साथ एक क्षत्रिय जाति की कन्या"(6) इससे ज्ञात होता है कि प्रस्तुत उपन्यास में धार्मिक संकुचितता से प्रभावित सामाजिक और धार्मिक परिवेश है।

प्रभा खेतान द्वारा रचित 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रिया की माँ धार्मिक संकुचित भावना से ओत-प्रोत है। वे अपने घर में निम्न जाति के लोगों को प्रवेश नहीं देतीं ।उनके घर में आने वाले मेहतर को नल तक छूने की अनुमति नहीं है। उसके जाने के बाद वे नौकरों द्वारा पूरे घर को पोछा मार कर साफ करवा लेती हैं। रसोई बनाने वाला महाराज नहीं रहा तो वे खुद खाना पकाती हैं। वे अन्य नौकरों को खाना पकाने या रसोई घर में आने की अनुमति नहीं देती हैं। उनका अपनी जाति पर काफी अभिमान है और उनका आचरण उससे प्रभावित है।

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'इदन्नमम' उपन्यास में बऊ की मानसिकता धार्मिक संकुचितता से प्रभावित है। श्यामली के दादा बऊ और मंदा की सुरक्षा के लिए उन्हें चीफ साहब की बहन अनवरी के घर भेज देते हैं। बऊ को अपने धर्म पर अभिमान होने के कारण वे मुस्लिम के घर में रहती तो हैं, परंतु अपना खाना स्वयं पकाती हैं। इस संदर्भ में अपनी धार्मिक संकुचित भावना को व्यक्त करते हुए बऊ कहती हैं कि - "यही कि मुसलमानों के घर का खाना-पीना देखकर डुकरों हल्ला न कर दें । छुआछूत फैलाई तो दबी - ढकी बात कितने दिन छिपेगी?" (7) प्रस्तुत उपन्यास में अयोध्या कांड के परिणामों का उल्लेख है। अयोध्या में बाबरी मस्जिद ढहाने के बाद देश में हिंदू धर्म के अभिमान का सर्वोच्च रूप देखने को मिलता है। श्यामली गाँव भी उससे अछूता नहीं है। इस घटना के बाद श्यामली के हिंदुओं की धार्मिक संकुचितता उभर कर सामने आती हैं और वे कहने लगते हैं कि - " चलो हम भी मारेंगे मुसलमान, काटेंगे उनके सिर, हाथ -पाँव। बस जिसके हाथ में जो आया ले -लेकर निकल पड़े नथू ,पन्नी माते का मौंडा धनसिंह , अपने पिरकास लै- लै लठ्ठ पहाँच गये चीफ साब के

दुआरें। पल्ले पुरा के अर्जुन, भगवानसिंह, रामभरोसे हुन आ गये फरूआ लै-लै कें।" (८) पूरे गांव के हिंदू इस धार्मिक संकुचितता के कारण मोदी साब के घर पर हमला बोल देते हैं। उनके प्रति पूरे गाँव के हिंदुओं में द्वेष की भावना है। इसी भावना के कारण पूरे गाँव में उनकी दशा असहाय बन जाती हैं और वे इस द्वेष से बचने के लिए अपने गाँव का त्याग कर देते हैं।

अलका सरावगी लिखित 'कलिकथा : वाया बाइपास' उपन्यास में धार्मिक संकुचितता के प्रति व्यापक संवेदना प्रकट हुई है। प्रस्तुत उपन्यास का वातावरण अंग्रेजों की 'फूट-बैर' की नीति से पूर्ण है और यह नीति धार्मिक संकुचितता को प्रबल बनाती है। इस नीति के कारण हिंदू और मुस्लिम अपनी जाति तथा धर्म के प्रति सीमित सोच रखते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में हिंदुओं की धार्मिक संकुचितता का अमोलक ने अनुभव लिया है। हिंदू - मुस्लिम दंगे के समय कुछ हिंदू लुंगी वाले लोग अमोलक को पकड़कर उसे नंगा कर उसके लिंग की जांच करते हैं। धर्म के नाम पर व्यक्ति की उग्रता का यह सजीव उदाहरण है। उपन्यास के किशोर बाबू धार्मिक संकुचितता से पूर्ण दंगों का अनुभव करते हैं। इस संदर्भ में उपन्यास में लिखा गया है कि - " किशोर बाबू अपने बरामदे से बाहर लोहे की जालियों पर पड़े खस के गिरे हुए पर्दों से झाँककर देखते कि मुसलमान लाठियाँ भाँजते, तलवार चमकाते हुए, 'अल्लाह- हो-अकबर' और 'लड़कर लेंगे पाकिस्तान' नारे लगाते हुए नीचे से गुजरते। छूरेबाजी, लूटपाट और सोडा वाटर के बम फेंकने की घटनाओं के कारण कलकत्ता में चारों तरफ दहशत और अफरा तफरी का माहौल बना हुआ था। कलकत्ता की सड़कों पर लाशें ही लाशें बिछी थीं। खून की नदी बह रही थी। सड़क पर छोटे-छोटे हिंदू मुस्लिम बच्चों की अतडियाँ बाहर दिख रही थीं। इन सभी दृश्यों ने किशोर को न जाने कितने सवाल के घेरे में डाल दिया कि उन छोटे-छोटे लड़कों ने उन गुंडों का क्या बिगाड़ा था? हिंदू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले क्या गलत कहते हैं? जब हजार सालों में भी हिंदू और मुसलमानों को साथ रहना नहीं आया, तो अब आगे कैसे आ जाएगा? इससे तो अच्छा है कि देश के दो टुकड़े हों और पाकिस्तान बने।" (९) लेकिन किशोर बाबू यह स्वीकार करते हैं कि देश विभाजन के बाद भी धार्मिक संकुचितता कम नहीं हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में हिंदुओं की धार्मिक संकुचितता का सजीव प्रमाण बाबरी मस्जिद ढहाने की क्रिया है। हिंदुओं की धार्मिक संकुचितता को बढ़ावा देने में 'विश्व हिंदू परिषद' और 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की भूमिका विशेष रही है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में धार्मिक संकुचितता का निरूपण अलका सरावगी ने बड़े ही संवेदनात्मक रूप में किया है।

रवीन्द्र वर्मा कृत 'निन्यानबे' उपन्यास में धार्मिक संकुचितता का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास के और अलका इसी धार्मिक संकुचितता के कारण विवाहबद्ध नहीं होते। दोनों प्रेमी हैं और विजातिय हैं। दोनों के परिवार अपने-अपने जाति पर स्थायी हैं। इस बारे में अलका का कथन धार्मिक कट्टरता पर प्रकाश डालने वाला है। वह कहती है कि - " तुम कायस्थ हो हम ब्राह्मण हैं मेरी माँ तो इस प्रस्ताव पर ही अनशन कर देगी।" (१०) इसी प्रकार की स्थिति बल्लो, उल्फत और सुजाता के विवाह के संदर्भ में घटित होती है। इन तीनों को अपने विवाह में धार्मिक संकुचितता का अनुभव होता है। कुछ हिंदूवादी युवक मुस्लिम समाज को कलंकित करने के उद्देश्य से सिद्दीकी के माथे पर गेरुआ टीका लगाते हैं। राम जन्मभूमि और बाबरी मस्जिद विवाद का गहरा प्रभाव छात्र छात्राओं के मस्तिष्क पर है। प्रिया के स्कूल में मंदिर- मस्जिद का खेल इसी का प्रमाण है। इस संदर्भ में प्रिया बताती है कि - " इस खेल में पहले मिट्टी से एक मस्जिद बनाई जाती, फिर लात मार

कर मस्जिद गिराई जाती और फिर ऐन उसी जगह एक मिट्टी के मंदिर का निर्माण होता। जब आधी छुट्टी खत्म होने की घंटी बजती तो उसे मंदिर की घंटी मानकर लड़कियाँ मंदिर के सामने दोनों हाथ जोड़तीं और अपनी कक्षा में लौट जातीं। अगले दिन मंदिर की जगह धूल होती थी। लड़कियाँ फिर उसी जगह मस्जिद बनातीं, गिरातीं और फिर मंदिर बना देतीं जो गिर जाता।" (११) इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक संकुचितता कि जड़ें बालमन को कितना प्रभावित की हुई हैं। इससे इसकी गंभीरता ज्ञात होती है। प्रस्तुत उपन्यास का हरि हिंदूवादी संगठन का नेता है। उसने अपनी कोटी पर अपने धर्म के अभिमान के फलस्वरूप भगवा झंडा फहराया है। इसके साथ ही उसने पूरी कोठी में हिंदू धर्म के प्रतीक स्वरूप गेरूँ रंग को प्रधानता दी है। इससे ज्ञात होता है कि हरि की मानसिकता धार्मिक संकुचितता मंडित है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक संकुचितता के प्रति उपन्यासकारों ने जो संवेदना प्रकट की है, वह पूर्णतया वर्तमान सामाजिक और धार्मिक परिवेश पर आधारित है। धार्मिक संकुचितता के मूल में धर्माभिमान की अधिकता है और यह सांप्रदायिकता को जन्म देती है। इसके कारण मनुष्य की हिस्त्र प्रवृत्ति उद्घाटित होती है, जो मानव और मानवीयता के लिए घातक है। परिणामस्वरूप धार्मिक सद्भावना का पूर्णतया लुप्त हो जाती है। धार्मिक संकुचितता यह पूर्ण रूप से धार्मिक मानसिकता पर आश्रित है। इससे देश का विकास कदापि संभव नहीं है। इसी संदेश के साथ दसवें दशक के हिंदी उपन्यासकारों ने इस पर अपनी संवेदना प्रस्तुत की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- १) वीरेंद्र जैन - डूब , पृ.११
- २) वही , पृ.३३
- ३) वही , पृ.४१
- ४) वही , पृ.६५-६६
- ५) वही, पृ.७२
- ६) वही , पृ.२६५
- ७) मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम, पृ.३७
- ८) वही , पृ. २५४
- ९) अलका सरावगी -कलिकथा : वाया बाइपास , पृ. १६८
- १०) रवीन्द्र वर्मा - निन्यानबे, पृ.९७
- ११) वही , पृ. १८१

फणीश्वरनाथ रेणु के कथासाहित्य में सामाजिक चेतना

प्रा. सौ. डॉ. विजया जगन्नाथ पिंजारी-शिंदे

यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय पाचवड

मु. पो. पाचवड, ता-वाई, जिल्हा-सातारा

(महाराष्ट्र)

व्यक्तित्व:-

हिंदी साहित्य के एक प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में फणीश्वरनाथ रेणू को पहचाना जाता है। हिंदी साहित्य में इनका स्थान अनमोल है। यही वजह है इनके साहित्यिक देन की वजह से इन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया।

फणीश्वरनाथ रेणू का जन्म ४ मार्च १९२१ को बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना गाव में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज औराही में हुई। मैट्रिक नेपाल के विराट नगर में हुई। इंटरमिडिएट काशी हिंदू विश्वविद्यालय से पास की १९४२ को वे स्वतंत्रता संग्राम में कुद पडे १९५० में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आंदोलन में हिस्सा लिया परिणाम स्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। उन्होंने जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति में अहम भूमिका निभाई। १९५२-५३ के समय वे भीषण रूप से रोगग्रस्त रहे थे जिसके बाद लेखन की तरफ उनका झुकाव अधिक रहा था। उनके इस काम की झलक उनकी कहानी ('नवे एकला चलो रे में मिलती है।) इन्होंने हिंदी में आंचलिक कथा की नींव रखी। इनकी कई रचनाओं में कटिहार के रेल्वे स्टेशन का उल्लेख मिलता है। अप्रैल १९७७ में इनकी मृत्यु हुई। उस वक्त उनकी उम्र केवल ५६ साल की थी।

कृतित्व

रेणू जी को हिंदी साहित्य में असाधारण ख्याती उनके बहुचर्चित 'उपन्यास मैला आचल' के कारण मिली। परती परिकथा तक का सफर लेखन क्षेत्र में उपर की ओर जाता नजर आता है। उस के बाद उपन्यास में वो बाते नहीं दिखती।

उपन्यास:-

मैला आचल-१९५४ परती परीकथा १९५७, दिर्घतपा-१९६४ जुलूस कितने चौराहे १९६६ कलंक मुक्ती १९७२, पकट बाबू रोड १९७९

कथासंग्रह:

ठूबरी १९५९, एक आदिम रात्री की महक १९६७ आग्निकोर १९७३, एक श्रावणी दोपहर की धूप १९८४, अच्छे आदमी १९८६

रिपोतोर्ज

ऋणजल धनजल, नेपाली क्रांतिकारी कथा, वनतुलसी की गंध श्रुत अश्रुत पूर्व

प्रसिद्ध कहानियाः

मारे गये गुलफाम (तिसरी कसम फिल्म) एक आदिम रात्री की महक, लाल पान की बेगम, पंचलाईट, तबे एकला चलो रे, ठेस संवदिया तीसरी कसम इस फिल्म में राजकपूर (हिरामन) और वहीदा रहमान (नाचनेवाली हिराबाई) की मुख्य भूमिका में चित्रित यह फिल्म हिंदी सिनेमा में मिल का पत्थर साबित हुई। हिराबाई और हिरामण के अद्भुत प्रेम का दुःखांत दर्शको को अविस्मरणीय लगता है। बासू बट्टाचार्य ने इस फिल्म का निर्देशन किया है।

उनके प्रथम उपन्यास मैला आंचल के लिए उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

लेखन परंपरा की विशेषता

रेणु जी का लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ता है। आज़ादी के बाद उन्हें प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है। अपनी कृतियों में उन्होंने आंचलिकता को अधिक महत्व दिया है। “रेणु जी की कहानियों में और उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक जीवन के हर धूल, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सूर, हर सुंदरता और हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की उन्होंने सफल कोशिश की है। इनकी भाषा शैली में एक जादुई सा असर है। जो पाठको को अपने साथ बांधकर रख लेता है। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सृजनात्मक प्रयोग किया है। इनके रचनाओं का हर पात्र मनोवैज्ञानिक सोच को कायम रखनेवाला है। हर पात्र सामान्य सरल मानव मन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है”¹ रेणु जी का अधिकतर कथासंग्रह साहित्य आंचलिक रचनाओं के अंतर्गत आता है। अपने कथासाहित्य में इतनी आंचलीकता लाने में सक्षम वह हिंदी साहित्य के पहले साहित्यकार रहे हैं।

रेणु जी के कथा साहित्य में आंचलीकता

‘मैला आंचल उपन्यास’ में उन्होंने नेपाल के सिया करीब उत्तर पूर्वी बिहार के पिचले ग्राम आंचल को पृष्ठभूमि बनकर वहाँ के जीवन का अत्यंत सजीव चित्रण किया है। रेणु जी स्वयं ही इस ग्रामीण आंचल से जुड़े हुई हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनकी रचनाएँ यह स्वतंत्र हुए भारत के राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक परीदृश्य का ग्रामीण संस्करण हैं। रेणु जी के अनुसार इस में “फुल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है और किचड़ भी है। इस में वह किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाये। इस में गरीबी है। भूखमरी, रोग, जहालत, धर्म की आड़ में हो रहे शोषण बाह्यडम्बर, व्याभिचार, अंधविश्वास आदि का चित्रण है”²।

‘परती परिकथा’ रेणु का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास कि कथा कोसी अंचल का पारनपूर गाँव है। जहाँ के विकास के नाम पर लोगो से जमीन ली जाती है। कोसी मैया के शाप की कई कहानियाँ इस में जुड़ी हैं। उपन्यास में मैला आंचल की भाँती नायकत्व किसी खास पात्र की बजाय आंचल को ही माना गया है।

ग्रामीण जनजीवन पर लिखी रेणु जी की कहानियाँ बड़े या छोटे पर्दे पर आते ही लोगों के दिल और दिमाग पर छा गये। उनकी आंचलक कहानियों का ही आकर्षण था कि फिल्मकार फिल्म के चित्रित करने में लालाईत होते थे। “पंचलाई” कहानी से तात्पर्य है की पेट्रोमॅक्स पूरी कहानी इसी केरोसिन लॅम्प के ईद्गिर्द गठीथ हुई है। यह लॅम्प आज भी ग्रामीण इलाके का मशहूर हिस्सा है।

‘तीसरी कसम’ कहानी रेणु जी की प्रसिद्ध कहानी ‘मारे गये गुलफाम’ कहानी पर फिल्म बनायी है। गाँव की सीधी माटी में ऐसी कहानी जो लोगो ने पहले पर्दे पर खूब पसंद कि इसके मशहूर गीतों ने जैसे

“चलन मुसाफिर मोहलियों” और “दुनिया बनानेवाले क्या तुने मन में समयी रे” यही कर्णमधुर गीतोंने लोगों का दिल मोह लिया। “रेणू जी कहा करते थे मैं अपनी कहानियों में अपने आप को धुंढता हूँ। अपने को मतलब आम आदमी को”³ उनका कहानिकार रूप उपन्यासकार के रूप से अधिक प्रभावी रहा है।

प्रेम, संवेदना, हिंसा, राजनीति, अज्ञाता, भावुकता के विभिन्न रूप और रंगों की यह कहानियाँ भारत के ग्रामीण आंचल की चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं। वह स्वतंत्र भारत का सांस्कृतिक आयीना है। इन कहानियों में लेखक ने लोकभाषा जनसाधारण के जीवन की दैनिक क्रियाएँ और परिवेश को जीदन्हे सजीव ढंग से व्यक्त किया है। उससे हिंदी की ताकत और क्षमता को भी बड़ाया है। इसी दुष्टी से रेणू को आंचलिकता के महानायक की भी संज्ञा दी है।

प्रत्येक आंचलिक उपन्यास का एक चुना हुआ विशिष्ट क्षेत्र होता है, जिसकी अपनी भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। उनकी अपने रूढ़ियाँ, परंपराएँ, रिति-रिवाज एवं जीवनयापन का विशिष्ट ढंग सुरक्षित रहता है। कथाकार इन्हीं विशेषताओं को उजागर करके उस विशिष्ट क्षेत्र को एक चरित्र कथा क्षेत्र के निवासियों के रहन-सहन, रीति-रिवाजों, परम्पराओं मूल्यों आस्थाओं, प्रथाओं, पवों, आदर्श एवं मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को इस प्रकार संगठित एवं अभिव्यक्ती देता है। वे परस्पर समान होते हुए भी दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतने भिन्न हो कि यह विशेष क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग और विशिष्ट प्रतीत होता है।

रेणू जी के उपन्यासों का मुख्य प्रवाह तो है, उस अंचल विशेष का समग्र सामाजिक सांस्कृतिक जीवन जहाँ जीवन के अनेक दुःख-दर्दों के बीच भी आनन्द उल्हास की बासुरी जीवन में प्राणवायु का काम करते हैं। अनेक पात्र, घटनाएँ, अनेक दृश्य एक-दूसरे को काटते हुए, आड़ी-तिरछी बरसाती नदी की भाँति लहराते हुए चले जाते हैं। कोई भी पात्र व प्रसंग अधिक समय के लिये नहीं ठहरता, सभी अंचल के जीवन को गती देने आते हैं। और यही लेखक का उद्देश भी है। तहसीलदार, रामकिरणपाल सिंह, रामखेलावन, बलदेव, लक्ष्मी, ज्योतिषी काका, महंत सेवादास, रामदास, कालीचरण, चरखा मास्टरनी, डॉ. प्रशान्त, कमली बावनदास आदि सभी पात्र अपने मानवीय रूप में संबलता-निर्बलता के साथ व्यंजित हुए हैं।

मानवजीवन की कुत्सित प्रवृत्तियों का चित्रण भी तटस्थता के साथ बिना नैतिक-अनैतिक के पचड़े में पड़ किया गया है। महंत सेवादास, रामदास, नरसिंह, नंगा बाबा आदि लक्ष्मी के पीछे पड़े हैं। लक्ष्मी बलदेव पर आसक्त है। रामपियरिया की माँ सात बेटों के बाप छीतम से फसी है। फुलिया माँ के आग्रह एवं सम्मति से सहदेव मिसर की आग बुझाती है। इस सम्बंध में रमजूदास की पत्नी फुलीया कि माँ से तो यहाँ तक कहती है कि “तुम लोगो को न तो लाज है न शरम। कब तक बेटे की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी? आखिर एक हद्द होती है किसी बात की। मानती हूँ कि जवान बेवा बेटे दुधार गाय के बराबर हैं। मगर इतना मत दुहो कि देह का खून भी सुक जाय”⁴। इस पर फुलिया की माँ बिगड़ जाती है और उसकी पोल खोलते हुए कहती है कि वह अपने खास भतीजे के साथ भाग गई थी और गुअर टोली के कलरु के साथ रातभर ‘रासलीला’ रचाती रहती थी।

कालीचरण चरखा मास्टरनी मंगला देव के प्रेमपाश में फँस जाती है तो डॉ. प्रशान्त और कमली प्रेमसूत्र में बंधकर विवाह के पहले ही शारीरिक सम्बन्ध जोड़ बैठते हैं। वस्तूता गाँव के उन्मुक्त वातावरण में ये बातें

चौकाने वाली न लगकर असहज ही लगती है। कदाचित यही कारण है कि ग्रामीण जीवन में मनोविकारजनक मानसिक ग्रंथीया कम मिलती है।

परन्तु इन सबके उपर रेणू की दृष्टि मानवीय संवेदनाओं को बिन्दुओं को तलाशती है। डॉ. प्रशान्त जो बुद्धिवादी होने के कारण पहले हृदय की सत्ता को नकारता है। बाद में मौसी, कमली गणेश, संधाल तथा अन्य दिन-हीन सदियों से लोगों के सम्पर्क से दिल और उसके दर्द को न केवल पहचानता है, प्रत्युत उसके अभाव में वह मानवीय पर भी प्रश्नचिन्ह लगता है। डॉ. ममता पर लिखे उनके पत्र में उन लोगों के प्रति उस मिट्टी के प्रति उनका जो ममत्व है वह छलकता है। डॉ. प्रशान्त ने ग्रामीण जीवन के दर्द की सही नब्ज को पकड़ा है। एनाफ्लीज और सैंडपलाई से भी ज्यादा जहरीले और भयंकर किटाणू है गरीब और जहालता जो घुन की तरह उनके जीवन के साथ लगी हुई है। डॉ. ममता भी मानव की ही शक्ति में सर्वाधिक विश्वास करती है और सबसे ऊपर माणूस सत्य की स्थापना करती है। उपयुक्त उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि प्रस्तुत कृति में रेणू का जनवादी स्वर सशक्त होकर उभर सका है जो उसके साहित्य को एक विशिष्ट गरिमा प्रधान करता है।

रेणू जी की दुतीय कृति परती परिकथा में इन्होंने आंचलिक उपन्यास के शिल्प का अधिक सायास प्रयोग किया है। जितना, ताजमनी, लुतो, भिम्मल, वीरभट्टर आदि अनेक यथार्थवादी पात्रों के माध्यम से परानपूर गाँव के तुटने की कथा-व्यथा इसमें चित्रित है। रेणू स्वतंत्रता के उपरान्त गाँव में जो मूल्य परिवर्तन आये हैं, उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में राजनीति ने जो हलचल पैदा की है उन्हें पकड़ने में रेणू की संवेदनशील यथार्थ दृष्टि पूर्णतया सक्षम है।

जुलूस उपन्यास मानवीय संवेदनाओं पर लिखा हुआ उपन्यास है। मुख्य पात्र पवित्रा है। जिस पात्र को छोड़कर बाकी सभी पात्र अपने पेट भरने के स्वार्थ पर परक भावना तक सीमित हैं। फणीश्वरनाथ रेणू के जुलूम उपन्यास में पवित्रा के माध्यम से परिस्थितियों से सामंजस्य करने की चेतना ही है।

फणीश्वरनाथ रेणू का दिग्धतपा प्रसिद्ध उपन्यास की मुख्य पात्र बेला है। जुलूस उपन्यास की पात्र पवित्रा से भिन्न है। पवित्रा परिस्थितियों से समझोता करती है तो बेला समझोता नहीं कर पाती और अपने आपका आत्मदाह कर लेती है।

फणीश्वरनाथ रेणू के आनचलिक उपन्यास चाहे कितने चोराहे हो और फिर पल्टुबाबू सभी उपन्यास सामाजिक जीवन को चेतना देने वाले हैं।

संदर्भ

1. डॉ. निलू सिंह सहचर पत्रिका लेखक. आंचलिकता के महानायक फणीश्वरनाथ रेणू- पृष्ठ ७
2. संदीप नाईक लेखक फणीश्वरनाथ रेणू और आंचलिकता-पृष्ठ १२
3. रेणू साहित्य द्विज अस्मिता के विपरीत शोषितों पिडीतों की अस्मिता फोरवर्ड प्रेस पृष्ठ २०
4. एस. के. सादीख पाशा लेखक. रेणू के आंचलिक उपन्यास में सामाजिक जिवन विवरण पत्रिका सन २०१६ पृष्ठ २

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में संवैधानिक मूल्य

प्रा. डॉ. दत्तात्रय लक्ष्मण येडले

हिंदी विभाग अध्यक्ष, श्री संत सावता माळी
ग्रामीण महाविद्यालय, फुलंब्री, जि. औरंगाबाद.

देश आजादी के अमृत महोत्सव का पर्व उत्साह के साथ मना रहा है. आज गांव-गांव तक शिक्षा पहुंच गई है. आवागमन के साधनों में सुधार होने के कारण जनसंख्या शहरों की ओर बढ़ रही है. जिससे शहरों का विस्तार हो रहा है. एकल परिवारों की संख्या बढ़ने लगी है. परिवार टूटने के सारे परिणाम सामने आने लगे हैं. एक ओर हत्या और बलात्कारों की संख्या बढ़ गई है. लोगों का पुलिस व्यवस्था से विश्वास उठ रहा है तो दूसरी ओर नारियों में शिक्षा का प्रचार अधिक होने से वे नौकरियों में पुरुषों से आगे रही हैं. आज नारी मुक्ति आंदोलन जोरों पर है. 'नारियों ने राष्ट्र में चलने वाले सभी आंदोलनों में भाग लिया है. दहेज से संबंधित हत्या की घटनाएं, बलात्कार, शराबखोरी और उससे उत्पन्न हिंसा आदि प्रश्नों को लेकर महिलाएं आंदोलन कर रही हैं.' ¹ महिलाओं के इन कोशिशों का लाभ यह हुआ है कि महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सुरक्षा आदि के लिए सरकार ने विस्तृत योजनाएं बनाई हैं. 'पंचायत राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटें आरक्षित की हैं फिर भी स्वतंत्रता के इतने सालों बाद आदिवासी, महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों में कोई कमी नहीं आयी. आज भी गरीब लोग संवैधानिक मूल्यों के प्राप्ति हेतु संघर्ष कर रहे हैं.' ² मैत्रेयी पुष्पा जी ने इसी का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है.

मैत्रेयी पुष्पा नब्बे दशक के हिंदी रचनाकारों में प्रमुख हैं. इनका जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में 'सिकुरा' गांव में हुआ. जहां शिक्षा की व्यवस्था का अभाव था. इनकी रचनाओं में बुंदेलखंड के स्थानीय परिवेश का उल्लेख मिलता है. इन्होंने उपन्यास, कहानियां, लेख तथा संस्मरण लिखे हैं. जिनके पात्र वास्तविक जीवन से लिए गए हैं. उनकी रचनाओं का केंद्र बिंदु गांव तथा स्त्रियों के प्रश्न हैं. मैत्रेयी जी के पात्रों का जुझारूपन ऊपर नहीं है, वह उनके चरित्र की विशेषता है. इनके प्रमुख उपन्यास - बेतवा बह रही, इदन्नमम, चाक, झूला नट, अल्मा कबूतरा, अगल पाखी तथा कहानी संग्रह प्रकाशित हैं.

समतामूलक समाज के महान सपनों को ध्यान में रखकर व्यक्ति का सम्मान एवं उसके मौलिक कर्तव्य पर मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में प्रकाश डाला है. लेखिका ने अपने उपन्यासों में संवैधानिक मूल्य - समता, बंधुता, स्वतंत्रता और न्याय संबंधी वर्णन किया है. इसके साथ ही आर्थिक विषमता, जातिवाद, गलत परंपराएं और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि विषयों का विस्तृत वर्णन किया है. डॉ.सी.जी.प्रसन्नकुमारी ने लिखा है - 'नारी शोषण के नंगे चित्र मैत्रेयी पुष्पा जैसी महिला कलाकार की तूलिका ही खींच सकती है.' ³

'इदन्नमम' उपन्यास में लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने मध्यप्रदेश के बीहड़ों में बसे सोनपुरा गांव लोगों की कहानी चित्रित की है. 'गांव सड़क और अस्पताल से दूर होने के कारण गांव के मरीजों के लिए अस्पताल की आवश्यकता को लेकर नायिका मंदा के पिताजी आवाज उठाते हैं, तब उनकी गोलियों से हत्या कर दी जाती है. मंदा की सुंदर और जवान मां को उसके जीजा जी भगा कर ले जाते हैं. नाना जी अपनी बेटी मंदा को छीनने

के लिए मां के खिलाफ पुलिस की सहायता लेते हैं। इसीलिए मंदा को लेकर उसकी नानी जंगल-जंगल भटकती है। उसका खेत जिस व्यक्ति को संभालने को दिया था, उसी ने उसे बेच दिया। इसीलिए मंदा का सारा घर बिखर गया। पेट-पूजा के लिए मंदा रामायण पढ़कर अपना और अपनी नानी का पेट भरती है। बचपन से ही मंदा निडर स्वभाव की लड़की है।⁴

मंदा की मां जब उसे डराते हुए कहती है कि घर के बाहर मत निकलो पुलिस पकड़ लेगी, तब मंदा कहती है। 'मेरे माथे पर लिखा है कि मैं बंदा हूँ? मैं अल्मा की बेटी हूँ? स्कूल के पास खड़ी किसी भी लड़की को कैसे बांध ले जाएगी पुलिस?'⁵ इतनी-सी बालिका मंदा जब रामायण पढ़ कर नए-नए अर्थ बताती है, तो गांव वाले चकित हो जाते हैं। मंदा के मुख से मैत्रेयी जी ने नारी जागरण के लिए राम से यह प्रश्न पूछा है कि सीता की पवित्रता का सबूत मांगने वाले राम ने भी अपनी पवित्रता का सबूत देना चाहिए। क्या औरतें सिर्फ दंड पाने के लिए जन्मी हैं? महाभारत की सत्यवती ने व्यास के सामने अपनी बहुओं को नंगा क्यों खड़ा किया? कुंती ने द्रोपदी को वस्तु समझकर उसे किस अधिकार तले पांचों में बांटा? बालिका के मुख से इस प्रकार के सवाल सुनकर सारा परिवेश सोच में पड़ जाता है। 'इदन्नमम' उपन्यास आम आदमी को अपने अधिकार के लिए चेताता है। साथ ही सारे षड्यंत्र के खिलाफ भड़काता है। चुनाव पर बहिष्कार डलवाता है।

क्रेशर मशीनों से उड़ने वाली धूल से फैलने वाली बीमारियों को रोकने के लिए अस्पताल की आवश्यकता पर वह हस्ताक्षरों की एक मुहिम चलाती है। वोट के अधिकार और शक्ति के आधार पर वह राजा साहब जैसे बड़े आदमी को नीचा दिखाती है। क्योंकि पांच साल एम. एल. ए. रहने पर भी वे लौट कर कभी इस गांव को आए नहीं थे। क्रेशर मशीनों के कारण न केवल बीमारियां फैली अपितु मजदूरों एवं किसानों का नुकसान होता देख मंदा गांव-गांव जाकर उन्हें समझाती है। वह कहती है कि यह तो अपने गांव के आदमी ही हिम्मतवर नहीं, दूसरे सरकार बहरी है। तीसरे रावण राज हो रहा है इस गांव में। इस देश में प्रजातंत्र नहीं, शोषण तंत्र लागू है। लहलहाते खेतों की हरियाली को घेर लिया क्रेशरों ने।

'इदन्नमम' जीवन का मूल मंत्र है। मंदा को आश्रम के साधु महाराज और पारीछा के टीकमसिंह संघर्ष गाथा की दीक्षा देते हैं। उसके बलबूते पर वह गांव-गांव में धन इकट्ठा करवा कर ट्रैक्टर खरीदी है। संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति हेतु संघर्ष के लिए लोगों को प्रेरित करती है। पुलिस द्वारा उसके साथ की गई बदतमीजी का सजा वह पुलिस को करारा थप्पड़ लगा कर देती है। मंदा की सोच बहुत साफ और तार्किक है। वह स्थिति का सही विश्लेषण करके ही एक्शन प्लान बनाती है। मंदा आंचलवासियों को साथ लेकर उन्हें अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास, भीरुता, दरिद्रता के कोड से मुक्त करने के बाद ही स्वस्थ-स्वच्छ आंचल की कल्पना करती है। व्यवस्था और आदमी की सोई आत्मा को जगाना उसका प्रधान लक्ष्य है। मंदा ने अपने कार्य से उसने नारियों में शक्ति भर दी है। कुसुमा का अपने चचिया ससुर को समर्पित होना इसी नारी चेतना का प्रतीक है।

अंत में लेखिका ने कहा है कि जब तक औरत पुरुष प्रधान व्यवस्था की प्रतिनिधि बनी रहेगी वह दो खेमों में बैठी रहेगी। लेखिका ने उपन्यास में स्वतंत्रता, समानता और आर्थिक निर्भरता के लिए संघर्षरत मंदा के माध्यम से आम महिलाओं की समस्याओं को चित्रित किया है।

'चाक' यह मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास मील का पत्थर माना जाता है। चाक उपन्यास की कथा गद्य एवं लोक गीतों के माध्यम से व्यक्त हुई है। उपन्यास की अधिकांश स्त्रियां पुरुषों की तुलना में अधिक विकासशील और विस्फोटक हैं। वे सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर रीतियों और रुढ़ियों से जुझने का प्रयास करती हैं। उपन्यास में रेशम अपने पति की मौत के बाद देवर के साथ विवाह करना नहीं चाहती। इसीलिए उसे मार दिया जाता है। उसकी मौसेरी बहन और नायिका सारंग उसका बदला लेना चाहती है। उस गांव में सारंग ही अकेली ऐसी महिला है जो गुरुकुल में पढ़ी है। उसका आदमी कमजोर है। इसलिए वह पड़ोस के गांव से एक पहलवान को बुलाती है। उसमें ऊर्जा भरने हेतु वह कलावती चाची से तेल की मालिश करवाती है। कलावती चाची का समर्थन उसमें वह उर्जा भर देता है कि डोरियां को वह पछाड़ देती है। श्रीधर मास्टर के आने पर वह उसकी पोट- पूजा की व्यवस्था करती है। श्रीरंग के लिए सारंग एक साहसी औरत थी। गांव के गुंडों से जब श्रीधर मास्टर की पिटाई होती है। तो एकमात्र सारंगी ही उसकी मदद करती है। नायिका के इस कृत्य को लेखिका ने उचित बताकर नारी मुक्ति आंदोलन का समर्थन किया है। जिस प्रकार श्रीधर को वह समर्पण करती है। उसी प्रकार पति को भी। ऐसी स्त्री को क्या नाम देना चाहिए ? पतिव्रता या कुलटा, बेटा जब पिता के सामने अपने पत्नी पर आरोप लगाकर उसे घर से बाहर निकालना चाहता है तब उसके पिता उसे समझा देते हैं कि जो गलती उन्होंने कि वह बेटा ना करें। बेटे को मारने जब उसका पति रंजीत दौड़ता है तब सारंग उसकी छाती पर बंदूक तानती है। सारंग का रुद्र रूप देखकर रंजीत भी डर जाता है।

सारंग की बौद्धिकता को गति श्रीधर के कारण मिलती है। उसने उसमें आत्मविश्वास जगाया है। उसे उसके अस्तित्व की पहचान करा दी है। अन्यथा उसमें चुनाव लड़ने की हिम्मत नहीं आती। श्रीधर जाति का कुम्हार था और सारंग प्रतिष्ठित जाट परिवार की बहू थी। इसीलिए सारंग का श्रीधर से मेलजोल रंजीत की दृष्टि में गुनाह था। वह उसे 'रंडी' के नाम से संबोधित करता था और सारंग उसे शराबी और ग्राम्य प्रधान का पीछलग्गू कहती थी। सारंग को कई बार लगता है कि अपना देश मुक्त यौन संबंध को मान्यता क्यों नहीं देता ? श्रीधर ऐसे विचार प्रस्तुत करता है जो नारीवादी आंदोलन की विचारधारा को अतिवाद की ओर आकर्षित करते हैं। अपने बालक चंदन की शिक्षा-दीक्षा हेतु उसे वह दलवीर के पास रखती है। श्रीधर के आ जाने पर उसे अपने पास बुलाती है। उसका यह कार्य नारी अधिकार के दायरे को बढ़ाता है।

'चाक' उपन्यास महिला सशक्तिकरण के विचारों को व्यक्त करता है। बेशक गांव में महिलाओं की दशा पंचायत राज में सुधर गई है। सारंग को चुनाव लड़ने के लिए श्रीधर ने उकसाया था। उसे यह समझाया कि जब अंगूठा छाप आदमी प्रधान बन सकता है तो वह क्यों नहीं? गांव के पंचों को पता था कि सारंग चुनाव लड़ सकती है। इसीलिए उन्होंने सारंग के प्रति रंजीत को चुनाव लड़ने के लिए उकसाया था। उन्हें आशा थी कि रंजीत के चुनाव में खड़े रहने पर सारंग चुनाव नहीं लड़ेगी किंतु पंचों की चालाकी को सारंग पहचान लेती है और वह अपने पति के विरोध में चुनाव लड़ती है। गांव की औरतों की पूरी फौज उसके साथी गीत गाते हुए औरतों का दल-बल गली-गली में सारंग का प्रचार करते घूमता है। पंचों के हौसले पस्त हो जाते हैं। सभी को पता था कि वह रंजीत से भी अधिक कुशल, समझदार और साहसी है। चरणसिंह बोहरे ने तो कहा भी 'यह रंजीत की लुगाई आदमी से कितनी गुनी और बलवान है कि बांधने-छेदने पर भी इतनी खौफनाक है।' ⁶

गांव के बड़े-बूढ़ों ने सारंग को ही आशीर्वाद दिया. पुराने प्रधान ने बूथ कैपचरिंग के लिए गुंडे और पुलिस को अपने कब्जे में कर लिया. परंतु रात में सबने ज्यादा शराब ली और आपस में मारपीट की. जिस से वे अपना कार्य कर ही नहीं सके. वह आपस में ही लड़ मरे और सारंग जीत गई. चाक उपन्यास का कथा विन्यास पति रंजीत और पत्नी सारंग के मधुर और कड़वे संबंधों के बीच गतिशील होता है. सारंग समाज और परिवार दोनों ही स्तरों पर अस्तित्व और अधिकार के लिए लड़ती है. स्त्री विमर्श के सभी आयामों एवं नारी मुक्ति, नारी चेतना, नारी अधिकार और संवैधानिक तत्व का विश्लेषण करने का प्रयास उपन्यास में किया गया है. गुलकंदी जब एक खाटीक शिक्षक, नर्तक से प्रेम कर उसके साथ भाग जाती है तब घर लौटने पर गांव वाले उसके घर को आग लगा देते हैं. उसमें गुलकंदी, उसका पति और उसकी मां जलकर मर जाती है. अंत चाहे जो हो गांव की एक गोरी गुलकंदी ने खाटीक से विवाह कर अंतरपुर जैसे छोटे गांव में क्रांति कर देती है. किसी समय उसी गांव की दशा ऐसी थी कि पत्नियों को पति का मुंह तक देखने नहीं मिलता था उसे अपना दुःख-सुख तक वह सुना नहीं सकती थी. औरतें महज संभोग और संतान उत्पन्न का साधन समझी जाती थी. उसी गांव में सारंग का हर काम एक नई शुरुआत थी.

मैत्रेयी पुष्पा जी द्वारा लिखित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की नायिका कदमबाई है, जो 'कबूतरा जाति' से संबंधित है. कबूतरा जाति के लोगों के गांव में घर है, ना जंगल में. वह ज्यादातर जेल में ही होते हैं या जंगल में. उनकी औरतें ज्यादातर मत बेचती है या किसी की सेज सजाती है. कदमबाई अपने पति से मिलने पूरे श्रृंगार के साथ जंगल में छिपती है. परंतु उसका उपभोग लेने पति जंगलिया तो नहीं आया बल्कि मंसाराम ने उसका उपभोग लिया. दूसरे दिन कमलबाई को खबर मिलती है कि किसी ने जंगलिया की हत्या कर दी है. पुलिस स्टेशन में जाति वालों ने जंगलिया की लाश पहचानने से इनकार किया क्योंकि वे किसी और झंझट में फँसना नहीं चाहते थे. पुलिस जब उनके डेरों पर छापा मारती है तब अनेक प्रकार के अत्याचार करती है. इसका विस्तृत वर्णन लेखिका ने उपन्यास में किया है. 'लाठी - कुल्हाड़ी चलाने में माहिर हमारे मर्द घायल ढोर से लाचार और हम जैसी औरतें नंगी गोपिका-सी लेकिन छिपने को बेबस.' ⁷ यही पुलिस जो छापा मारते समय अत्यधिक पाशविक होती है, वही उन्हें गलत काम करने के लिए उकसाती है. ' पांच का हफ्ता लगेगा, मौज से दारू भेजो. दस हजार दो, चोरी और लूटपाट करो. बीस हजार पर डकैती का सुभीता देती है'. ⁸

उपन्यास का केहरसिंह पात्र आदिवासी मंसाराम की जमीन पर शराब का ठेका खोलने का प्लान बनाता है. पैसा केहरसिंह लगाएगा और मद बेचने का काम कदमबाई तथा उसकी सहेलियां करेगी. ठेका अच्छा चलने लगा. पूरे कबूतरा जाति के लोगों को काम मिला. गेस्ट हाउस, सर्किट हाउस और डाक बंगलो पर उतरने वाले मुसाफिरों को शराब और लड़कियां पहुंचने लगी. यह सब काम पुलिस की दया से होने लगा. अल्मा को जिस व्यक्ति ने गिरवी रखा था. उसने उसे सूरजभान को बेच दिया. सूरजभान ने उसका बलात्कार करके उसे श्रीराम शास्त्री को बेच दिया. श्रीराम शास्त्री पहले डकैत था. वह अब मंत्री है. बाद में यही अल्मा श्रीराम शास्त्री के लिए 'परामर्श में मंत्री - सी, सेवा में दासी - सी और सेज पर रंभा - सी बन जाती है.' ⁹ किसी दुश्मन ने श्रीराम शास्त्री की गोली मारकर हत्या कर दी और अप्रतिम सुंदर अल्मा को बबीना की विधान सीट के उम्मीदवार के रूप में पार्टी ने खड़ा किया.

उपन्यास में लेखिका ने आदिवासी जातियों पर होने वाले अत्याचार खासकर महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के विभिन्न रूपोंका विस्तृत वर्णन किया है. आदिवासियों को स्वतंत्रता के बाद भी सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता नहीं मिली है. स्वतंत्रता के पूर्व ब्रिटिश सरकार ने घुमंतू आदिवासियों पर अलग-अलग कानून लगाकर उन्हें डकैत, लुटेरों के रूप में संबोधित करके उन्हें प्रताड़ित किया था. स्वतंत्रता के बाद भी उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया जा रहा है. स्वतंत्रता के बाद भी आज इन लोगों को आदमी के रूप में पहचाना नहीं जा रहा. उन्हें सामाजिक न्याय, समता, स्वतंत्रता और आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि कोई भी संवैधानिक मूल्य प्राप्त नहीं हुए. इसी का विस्तृत वर्णन लेखिका ने 'अल्मा कबूतरा' उपन्यास में किया है.

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास के सभी पात्र संवैधानिक मूल्यों की मांग करते हुए दिखाई देते हैं. अपने अधिकारों के लिए हर पात्र विशेषता महिला पात्र संघर्ष करता है और अपने अधिकारों की को हासिल करता है. कुल मिलाकर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में समता, स्वतंत्रता, बंधुता, सामाजिक न्याय और और आर्थिक आत्मनिर्भरता के तत्व मिलते हैं. जो संविधान में बताए गए हैं. डॉ.के.के. वेलायुधन के अनुसार मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यास कथाओं के माध्यम से महिलाओं को संदेश देती है, 'जागो, शक्ति संभालो और जीवन जियो.'¹⁰

संदर्भ:-

1. इंडियाज इकोनोमी इन द न्यू मिलेनियम - विमल जालान - पृ. 25
2. नागरीय समाज जीवन - रामबिहारी सिंह तोमर - पृ. 293
3. समकालीन हिंदी उपन्यास समय और संवेदना - अब्दुल जलील वी. के. - पृ. 127
4. नवम दशक के हिंदी उपन्यासों में व्यक्त स्त्री विमर्श - डॉ सुरेश मुंडे - पृ. 26
5. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 58
6. चाक - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 4407
7. अल्मा कबूतरा - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 47
8. अल्मा कबूतरा - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 55
9. अल्मा कबूतरा - मैत्रेयी पुष्पा - पृ. 373
10. समकालीन हिंदी उपन्यास समय और संवेदना - अब्दुल जलील वी. के. पृ. 127

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में चित्रित - संवैधानिक मूल्य

शोधार्थी - पूनम यादव

शोध निर्देशक - डॉ. अनिल ढवळे

के. जी. जोशी कला एवं एन. जी. बेडेकर वाणिज्य स्वायत्त महाविद्यालय ठाणे

सारांश :

वर्तमान समय में भी दलित वर्ग चतुर्थ वर्णव्यवस्था के फेरे में बुरी तरह पीस रहा है। भारत की स्वतंत्रता के दशकों पश्चात् भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण के इस समय में दलित व शोषित वर्ग निरीह, असहाय व दयनीय बना हुआ है। समाज की वास्तविक घटनाओं को ही साहित्य बयां करता है। समाज में जो उथल - पुथल व बदलाव हो रहे हैं, वही भोगी हुई कड़वी सच्चाई साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है। दलितों, शोषितों ने सदियों से जो दुःख - दर्द, पीड़ा व वेदना भोगी है, उन्हीं की करुणामूलक चीख - पुकार ही 'दलित - साहित्य' है। समकालीन दलित लेखकों में रत्नकुमार सांभरिया जी का शीर्ष स्थान है। सांभरिया जी ने भोगी हुई कड़वी सच्चाई को अपने साहित्य में पिरोया है। सांभरिया जी ने अपनी रचनों के माध्यम से दलितों की व्यथा को उजागर किया है। सांभरिया जी बाबासाहेब आंबेडकर की करुणामूलक विचारधारा, जीवन दर्शन, शैक्षिक सिद्धांतों का पूर्णतः अनुपालन किया है, जो इनकी हर विधाओं में झलकता है। सांभरिया जी के कहानियों के पात्र भी बाबासाहेब जी के द्वारा दिखाए रास्ते पे चलते हुए अपने हक और आत्मसम्मान के लिए हर नामुमकिन जंग को भी लड़ते हैं। सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में असमानता व विषमता के विरुद्ध विद्रोह, नैतिक चेतना पर बल, शिक्षा पर बल, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर दर्शन की प्रतिस्थापना (शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष), दया, करुणा व संवैधानिक मूल्यों पर बल तथा दलित चेतना को नया अर्थ प्रदान किया है।

बीज शब्द - मूल्य, एकता, संघर्ष, समानता ।

किसी भी देश का संविधान उस देश के अनेकों उद्देश्यों को पूरा करता है। यह कुछ ऐसे आदर्शों को निर्धारित करता है, जो ऐसे देश का आधार बनते हैं, जिनमें हम नागरिकों की तरह रहने की आकांक्षा रखते हैं। सामान्यतः एक देश लोगों के विभिन्न प्रकार के समुदायों से बनता है। इन्हीं लोगों द्वारा बने समाज में तथा देश को आगे बढ़ाने का कार्य संविधान द्वारा होता है। भारतीय संविधान में भी कुछ संवैधानिक मूल्य हैं, जो कि इसके विभिन्न अनुच्छेदों तथा प्रावधानों में विभक्त होते हैं। सत्य, अहिंसा, शांति, सहयोग, ईमानदारी केवल यही संवैधानिक मूल्य नहीं हो सकते अथवा संवैधानिक मूल्य ऐसी चीज है जो बहुत आवश्यक है तथा जिसका पालन करना मानव समाज के अस्तित्व के लिए वांछनीय है। भारतीय संविधान में ऐसे सभी सार्वभौम, मानवीय तथा लोकतांत्रिक मूल्य निहित हैं। इसके कारण हमें समाज में समानता तथा एकता लाने का श्रेय संविधान को प्रदान करना आवश्यक है। संविधान प्रकाश में आने के पहले की स्थिति से हमारा देश अवगत ही है। भारत में जाति के अस्तित्व ने शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक आदि जनजीवन को प्रभावित किया है। वह किसी से छिपा नहीं है। साहित्य भी उसके प्रभाव से नहीं बच पाया है। दलित साहित्य सदियों के शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार से उपजी 'साहित्यिक क्रांति' है। दलित साहित्य दबावों और संघर्षों से भरा हुआ है। दलित साहित्य में गरीबी उत्पीड़न और दलित मानव की चीख-पुकार है। इसी से समाज में बंधुत्व, समता, एकता व

मैत्री भावना को अत्यधिक बल मिला। दलित साहित्य भी समाज से केवल यही उम्मीद धारण किए हुए है कि, समाज में उन्हें भी सम्मान मिले, भाईचारा बढ़े, आपस में सभी प्रेम से समाज में रहें।

मोहनदास नैमिशराय का मानना है कि “शोषण वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।”¹ समानता, एकता, मित्रता, बंधुत्व समाज में स्थापित करेंगे, तभी एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सकती है। इसके विरोध में दलित साहित्य लड़कर दलितों के हक को समाज में स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। “बाबासाहेब आंबेडकर के शैक्षिक दर्शन, शिक्षाएं, सिद्धांत से प्रभावित होकर सुपरिचित दलित कथाकार रत्नकुमार सांभरिया जी ने भी नैतिक, मानवीय मूल्यों की स्थापना समाज में की है। आप भी डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर से प्रेरणा लेकर संघर्ष की आग में तप-तपकर आज दलित समाज को तो नई दिशा दे रहे हैं, साथ ही साथ दलित साहित्यकार के रूप में विख्यात हैं।”² सांभरिया जी का केवल दलित साहित्य-कारों में नहीं अपितु समकालीन साहित्यकारों में भी शीर्ष स्थान है। आंबेडकर जी के समान सांभरिया जी भी समाज में हो रहे दलितों पे अत्याचार तथा हक के प्रति चिंतित हैं। सांभरिया जी इन सभी रूढ़ियों के खिलाफ लड़ते हुए दलितों को समाज में मान सम्मान दिलाने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं एवं रत्नकुमार सांभरिया प्रसिद्ध कथाकार भी हैं। रत्नकुमार सांभरिया ने डॉ. धूलचंद मीणा को दिए गए साक्षात्कार में कहा है - “दलित साहित्य चेतना का नाम है। दलित साहित्य से आशय एक ऐसी रचनात्मकता से है, जो अपने सृजनात्मक ऊर्जा से उत्पीड़ित वर्ग और वंचित समाज में जागरूकता पैदा करता हो, उसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ता हो तथा प्रगति के पंख लगाने का आकांक्षी हो। फिर चाहे वह साहित्य दलित द्वारा लिखा गया हो या गैर दलित द्वारा यह बात मायने नहीं रखती है।”³ इस कथन से यह अवश्य समझा जा सकता है, की दलित साहित्य सत्य के अत्यधिक समीप होता है और दलितों की समस्या को, दुखों को समाज के सामने प्रत्यक्ष रूप से लाने में सहयोग देता है। दलित चिंतक यशवंत मनोहर के अनुसार “एक तरह से दलित साहित्य वह है, जो दलित संवेदनाओं से लिखा गया है।”⁴ इस आधार पर हम यह अवश्य कह सकते हैं की दलित साहित्य दलितों को समाज में उनके अधिकारों से अवगत करने तथा संवैधानिक मूल्यों का ज्ञान अवश्य प्रदान कर रहा है।

सांभरिया जी बचपन से ‘धार्मिक प्रवृत्ति’ के व्यक्ति थे तथा दलित समाज से होने के कारण उन्हें समाज द्वारा अत्यधिक दर्द झेलने पड़े थे। ‘बाबासाहेब आंबेडकर’ द्वारा कहे गए शब्द “दलितों को स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए और सामाजिक न्याय के लिए लड़ाई लड़े, क्योंकि संघर्ष ही जीत में बदलती है। कदम-कदम पर कठिनाइयों का सामना करने से ही सामाजिक स्थिति सुधरी है।”⁵ रत्नकुमार सांभरिया जी पर भी बाबासाहेब आंबेडकर के जीवन दर्शन का प्रमुख रूप से प्रभाव पड़ा है। यह हमें उनकी कहानियों में देखने मिलता है। किस प्रकार से सांभरिया जी ने दलितों के दर्द, पीड़ा, दुखों को अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। “सांभरिया जी के अनुसार ‘डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर’ के जीवन दर्शन व सिद्धांतों से प्रेरणा लेते हुए सुनहरे भविष्य के बारे में चिंतक मनन करते हैं। दलित समाज बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों एवं सिद्धांतों पर चलकर ही ब्राह्मणवाद एवं शोषण से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।”⁶ जिसके कारण सांभरिया जी के कहानियों में हमें संवैधानिक मूल्यों का प्रभाव देखने मिलता है।

सांभरिया जी की कहानी ‘आखेट’ पर हम प्रकाश डालेंगे। इस कहानी में नायिका ‘रेवती’ अपनी इज्जत बचाने के खातिर नानक सिंह की नाक को खुरपी से काट देती है, जिसके कारण रेवती को गाँव से निकाल दिया जाता है। अनेक प्रकार के कष्ट दिए जाते हैं, प्रताड़ित किया जाता है, परंतु रेवती कभी हार नहीं मानती है। अपनी इज्जत और हक लिए इस संवाद में डटकर खड़ी दिखाई देती है - “वासना से वशीभूत नानक सिंह

की एक नजर रेवती पर थी, दूसरी दूरी बनाती बुढ़िया पर दो तीन खेत चलकर ढलान में चली गई तो, नानक सिंह पशुता पर उतर आया था। उसने रेवती का हाथ पकड़ लिया था, रेवती चीखी चिल्लाई छुड़ाने के लिए छटपटाई। नानक सिंह उसे अपनी बांहों में भींचता चला गया था। निरीह और असहाय रेवती जैसे छिपकली के मुंह में फंसी तितली। रेवती लजा गई। रेवती ने ना आव देखा ना ताव, जिस खुरपी से वह घास छील रही थी, उसी को नानक सिंह के नाक में भोंक दिया। खुरपी लगते ही उसके नाक का अग्रभाग निबोरी की तरह लटक आया था।¹⁶ इसी प्रकार रत्नकुमार सांभरिया जी की कहानी 'आखेट' में हम देखते हैं की, रेवती किस प्रकार से अपने हक और आत्मसम्मान के खातिर पुरे गाँव के खिलाफ जाकर अपनी आवाज को बुलंद करती है और खुद पर हुए अत्याचार के खिलाफ जंग लड़ती है। इस कहानी की पात्र रेवती अपने मौलिक अधिकार के लिए लड़ती हुई नज़र आती है।

इसी प्रकार सांभरिया जी की कहानी 'चपडासन' कहानी में भी संवैधानिक मूल्यों प्रभाव को अछूता नहीं कहा जा सकता है। 'चपडासन' कहानी विधवाओं के यौन शोषण की महत्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में स्त्री विमर्श है, इस कहानी की नायिका 'मीता' है। तहसीलदार धर्मपाल मीता का हाथ पकड़ते हुए कहता है- "मीता तुम्हारे कारण अनिद्रा की बीमारी हो गई है मुझे।"¹⁷ यह शब्द सुनते ही मीता झटके से अपना हाथ छुड़ाकर तहसीलदार के खिलाफ रिपोर्ट लिखाने पुलिस स्टेशन जा पहुंचती है और रिपोर्ट लिखाने के बाद उसका जीवन आसान नहीं था। मीता बहादुर जीवट महिला है, वह किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानती और उसके साथ हुए अपराध के विरुद्ध आवाज उठाती है। इस प्रकार से हमें रत्न कुमार सांभरिया जी की कहानियों में दलितों के प्रति सम्मान, प्रेम भाव तथा उनको समाज में प्रतिष्ठित करने का कार्य किया है। सांभरिया जी आंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर ही इस दलित, निम्न, शोषित वर्गों को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए बाबासाहेब आंबेडकर के मार्ग पर प्रयत्नशील हैं।

सामाजिक परिस्थिति से इस बात का भान होता है कि, व्यक्ति का समाज में क्या स्थान है? तथा कितना महत्व रखता है? व्यक्ति समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। समाज में रहकर ही व्यक्ति अपने जीवन में लक्ष्य को प्राप्त करता है। "वह अपने नैतिक मूल्यों आदर्शों को समाज में रहकर ही स्थापित करता है। जिससे समाज में एकता, बंधुत्व, मैत्री, भाईचारा, प्रेम, सहानुभूति, समर सत्ता, समानता व समन्वय की भावना कायम रह सके। लेकिन उच्च ब्राह्मणवादी लोग आजादी के इतने वर्षों बाद भी निम्न दलित व्यक्तियों के साथ छुआछूत, शोषण, अत्याचार व अन्याय कर अपनी अनैतिकता का परिचय देने में तनिक भी नहीं चूकते। जिसके कारण दलित वर्ग समाज में अपना स्थान नहीं बना पाते हैं।"¹⁸ दलितों को भेदभाव के कारण समाज में प्रतिष्ठा तथा सम्मान प्राप्त नहीं हो पाता है। जिसके कारण हमारे समाज में 'एकता' कहीं नहीं है, केवल लोगों के मन में एक दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया है। आज वैश्वीकरण के दौर में भी इस प्रकार से दलितों के साथ भेदभाव कायम है। इससे समाज भी अछूता नहीं नजर आ रहा है।

कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में दलित वर्ग की सामाजिक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। दलितों ने जितने दुख, दर्द और अवहेलना को झेला है, उनको कहानियों के माध्यम से सांभरिया जी ने प्रस्तुत किया है। सांभरिया जी की कहानी 'फुलवा' में जमींदार की सामंती सोच का पर्दाफाश किया गया है। जमींदार रामेश्वर अपने बेटे की नौकरी के लिए फुलवा की बहू के पास जाता है और फुलवा की

इतनी बड़ी आलीशान कोठी को देखकर उसकी आँखें फटी की फटी रह जाती हैं। परंतु रामेश्वर के मन में फिर भी अपनी जात के लिए अभिमान बचा हुआ है, क्योंकि उसके सामने रखे पकवान बर्फी, लड्डू, कॉफी खाने का मन होने के बाद भी नहीं खाता और कहता है -“क्या बताऊं भाभी मैंने दाढ़ निकलवाई थी कल दर्द से दोहरा हुआ जा रहा हूं।”^{१०} फुलवा की बहू ने रामेश्वर को नमस्कार किया तो वह क्रोध से बिलबिला उठा। उसे लगा बहु आकर पैर छुएगी परंतु ऐसी निर्लज्जता शहरों में ही देखने मिलती है, गांव में होती तो बाल पकड़कर गांव से बाहर निकाल देते। जमींदार को लगा फुलवा की बहू उसका आदर सत्कार करेगी क्योंकि वह बड़े जात से है तथा जमींदार भी है, परंतु ऐसा नहीं होने के कारण उसे क्रोध आ गया। यहाँ एक कहावत चरितार्थ होती है “रस्सी जल गई लेकिन ऐंठ नहीं गई” अर्थात् जमींदारी प्रथा समाप्त हो गई लेकिन सामंती सोच जस की तस बनी हुई है।^{११} फुलवा की कोठी देखकर जमींदार की आँखें द्वेष से भरी हुई थी। जाति प्रथा का यह दंश समाज में दलित के साथ होने वाले अन्याय को खत्म होने नहीं दे रहा है और समाज बिखरता चला जा रहा है। छुआछूत, जाति-प्रथा, का आजादी के इतने वर्षों बाद भी खत्म होने का रास्ता नजर नहीं आ रहा है। परंतु हमारे समाज में आज दलित भी शिक्षित है और उसे भी अपने संवैधानिक मूल्यों का ज्ञान है, जिसके कारण दलित भी अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा रहे हैं।

उपर्युक्त विवेचन के बाद हमें यह कहना होगा कि, रत्नकुमार सांभरिया ने डॉ. आंबेडकर के मूल मंत्र से प्रेरणा लेकर अपने जीवन तथा अपनी कहानियों में पूर्ण रूप से उकेरा है। सांभरिया जी ने दलित चेतना के प्रतिमान गढ़ दिए। इनकी कहानियों में दलित चेतना और संवैधानिक मूल्यों के साथ-साथ विद्रोह, आक्रोश, संघर्ष और क्रांतिकारी बदलाव का यथार्थ चित्रण है। वर्ण व्यवस्था पर सांभरिया जी ने डॉ. आंबेडकर के बताए मार्ग पर चलते हुए करारी चोट की है।

संदर्भ ग्रंथ -

१. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि – पृष्ठ संख्या – २२
२. हिंदी दलित-लेखन एवं रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य – डॉ. धूलचन्द मीना, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या – ६७
३. वही, पृष्ठ संख्या – ३१
४. वही, पृष्ठ संख्या – ३१
५. वही, पृष्ठ संख्या – ६६
६. वही, पृष्ठ संख्या – ६७
७. दलित समाज की कहनियाँ – रत्नकुमार सांभरिया – प्रकाशन – अनामिका पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड - संस्करण – २०११, ‘आखेट’- पृष्ठ संख्या – ४४-४५
८. वही, पृष्ठ संख्या – १८०
९. हिन्दी दलित लेखन एवं रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य – डॉ. धूलचन्द मीना - पृष्ठ संख्या – ९३
१०. दलित समाज की कहनियाँ – रत्नकुमार सांभरिया – प्रकाशन – ‘फुलवा’ पृष्ठ संख्या – २४
११. हिन्दी दलित लेखन एवं रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य – डॉ. धूलचन्द मीना – पृष्ठ संख्या – ९५

रैदास और समतामूलक समाज

डॉ हणमंत पवार

शहीद भगतसिंह महाविद्यालय, किल्लारी

हमारे संविधान के लिए स्वातंत्र्य, समता, बंधुता यह मूल्य फ्रेंच राज्यक्रांति से मिली देन मानी जाती है परंतु सच तो यह है कि हमारे प्राचीन बौद्ध तत्त्वज्ञान में इसका लेखा-जोखा मिलता है। प्राचीनकाल में बुद्ध ने समतामूलक समाज के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। मध्यकाल में कबीर और रैदास भी इसी राह पर चलते हुए मानवता को बनाए रखने का कार्य किया। इन संत कवियों के काव्य का आधार बौद्ध धम्म की मानवीय करुणा और समता की विचारधारा रही है। साहित्यकार कंवल भारती के शब्दों में, " संत काव्य का वास्तविक आधार बौद्ध धर्म है। बौद्ध धर्म के पतन के बाद जो बुद्ध वचन परंपरा से जन-जीवन में संचित थे, संत काव्य में उन्हीं की अभिव्यंजना हुई है। इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि संतों का साहित्य जीवन की स्वीकृति का साहित्य है, उसमें पीड़ित जन का आक्रोश और आवेश, सुखी समाज की आकांक्षा और शोषक श्रेणी के प्रपंचों पर आघात है और सबसे बढ़कर समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।"

रैदास ने जो समतामूलक विचार प्रस्तुत किए हैं वे कालातीत हैं। जैसे उन्होंने जन्म के आधार पर श्रेष्ठता की अवधारणा को पूरी तरह खारिज कर दिया-

"रैदास बाभन मत पूजिए जो होवे गुन हीन,
पूजिए चरन चंडाल के जो हो गुन परवीन।"

एक ओर ब्राह्मणवादी परंपरा परजीवी, निठल्ली परंपरा रही है। द्विज जातियां दलित-बहुजनों के श्रम पर पलती रही हैं। वहीं, दलित-बहुजन परंपरा श्रम संस्कृति की वाहक रही है। रैदास स्वयं भी श्रम करके जीवन-यापन करते थे। वे चर्मकार का काम करते थे और श्रम करके जीने को सबसे बड़ा मूल्य मानते हैं। घर-बार छोड़कर वन जाने या सन्यास लेने को ढोंग-पाखण्ड मानते हैं-

"नेक कमाई जउ करइ

गृह तजि बन नहिं जाय।"

रैदास अभिमानी परजीवी ब्राह्मण की तुलना में श्रमिक को ज्यादा महत्व देते हैं-

"धरम करम जाने नहीं, मन मह जाति अभिमान,

ऐ सोउ ब्राह्मण सो भलो रविदास श्रमिकहु जान।"

बुद्ध की तरह रैदास ने भी ऊंच-नीच अवधारणा और पैमाने को पूरी तरह उलट दिया। वे कहते हैं कि जन्म के आधार पर कोई नीच नहीं होता है, बल्कि वह व्यक्ति नीच होता है, जिसके हृदय में संवेदना और करुणा नहीं है-

"दया धर्म जिन्ह में नहीं, हृदय पाप को कीच,

रविदास जिन्हहि जानि हो महा पातकी नीच"

उनका मानना है कि व्यक्ति का आदर और सम्मान उसके कर्म के आधार पर करना चाहिए, जन्म के आधार पर कोई पूज्यनीय नहीं होता है। बुद्ध, कबीर की तरह रैदास भी साफ कहते हैं कि कोई ऊंच या नीच अपने मानवीय कर्मों से होता है, जन्म के आधार पर नहीं। वे लिखते हैं-

"रैदास जन्म के कारने होत न कोई नीच,
नर कूं नीच कर डारि है, ओछे करम की नीच।"

रैदास का कहना है कि जाति एक ऐसा रोग है, जिसने भारतीयों की मनुष्यता का नाश कर दिया है। जाति इंसान को इंसान नहीं रहने देती। उसे ऊंच-नीच में बांट देती है। एक जाति का आदमी दूसरे जाति के आदमी को अपने ही तरह का इंसान मानने की जगह ऊंच या नीच मानता है। रैदास का कहना है कि जब तक जाति का खात्मा नहीं होता, तब तक लोगों में इंसानियत जन्म नहीं ले सकती-

"जात-पात के फेर मह उरझि रहे सब लोग,
मानुषता को खात है, रैदास जात का रोग।"

वे यह भी कहते हैं कि जाति एक ऐसी बाधा है, जो आदमी को आदमी से जुड़ने नहीं देती है। वे कहते हैं एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से तब तक नहीं जुड़ सकता, जब तक जाति का खात्मा नहीं हो जाता-

"रैदास ना मानुष जुड़े सके जब लौं जाय न जात

रैदास हिंदू-मुस्लिम के बीच कोई भेद नहीं करते। वे दोनों के पाखण्ड को उजागर करते हैं। वे साफ शब्दों में कहते हैं कि न मुझे मंदिर से कोई मतलब है, न मस्जिद से, क्योंकि दोनों में ईश्वर का वास नहीं है-

"मस्जिद सो कुछ घिन नहीं मन्दिर सो नहीं प्यार,
दोउ अल्ला हरि नहीं कह रविदास उचार।"

रैदास मंदिर-मस्जिद से अपने को दूर रखते हैं, लेकिन हिंदू-मुस्लिम दोनों से प्रेम करते हैं-

"मुसलमान से दोस्ती, हिन्दुवन से कर प्रीत,
रविदास ज्योति सभ हरि की, सभ हैं अपने मीत।"

रैदास बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों में कोई भेद नहीं है। जिन तत्वों से हिंदू बने हैं, उन्हीं तत्वों से मुसलमान। दोनों के जन्म का तरीका भी एक ही है-

"हिन्दू तुरूक महि नाहि कछु भेदा दुई आयो इक द्वार,
प्राण पिण्ड लौह मास एकहि रविदास विचार।"

ब्राह्मणवादी द्विज परंपरा के विपरीत दलित-बहुजन परंपरा के कवि श्रम की संस्कृति में विश्वास करते हैं। उनका मानना था कि हर व्यक्ति को श्रम करके ही खाना खाने का अधिकार है-

"रविदास श्रम कर खाइए है, जो-लौ-पार बसाय.
नेक कमाई जौ करई कबह न निष्फल जाय।"

रैदास एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जहां संपत्ति पर निजी हक्क नहीं होगा, समाज अमीर और गरीब में बंटा नहीं होगा, कोई दोगम दर्जे का नागरिक नहीं होगा और न ही वहां कोई छूत-अछूत होगा। अपने इस समाज को उन्होंने बेगमपुरा, बिना गम यानी बिना दुख का शहर, नाम दिया है-

"बेगमपुरा सहर को नाउ, दुखु-अंदोहु नहीं तिहि ठाउ.
ना तसवीस खिराजु न मालु, खउफु न खता न तरसु जुवालु।
अब मोहि खूब बतन गह पाई, ऊहां खैरि सदा मेरे भाई।
काइमु-दाइमु सदा पातिसाही, दोम न सोम एक सो आही।
आबादानु सदा मसहूर, ऊहाँ गनी बसहि मामूर।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै, महरम महल न को अटकावै।"

कह 'रविदास' खालस चमारा, जो हम सहरी सु मीतु हमारा।"

हिंदी के कुछ आलोचकों ने रैदास को सगुणमार्गी और सनातन धर्म का संत ठहराने की कोशिश किया और उन्हें वेदों-पुराणों का समर्थक बताने की कोशिश की। जबकि सच्चाई यह है कि उन्होंने चारों वेदों को खारिज किया है-

"चारो वेद किया खंडौति, ताकौ विप्र करे डंडौति।"

रैदास के मन में अपनी जाति और पेशे को लेकर कोई हीनताबोध का भाव नहीं है। वे यह कहते हैं-

"ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।"

सतगुरु रविदास जी भारत के उन विशेष महापुरुषों में से एक हैं जिन्होंने अपने आध्यात्मिक वचनों से सारे संसार को आत्मज्ञान, एकता, भाईचारा पर जोर दिया। जगत्गुरु रविदास जी की अनूप महिमा को देख कई राजा और रानियाँ इनकी शरण में आकर भक्ति मार्ग से जुड़े। जीवन भर समाज में फैली कुरीति जैसे जात-पात के अन्त के लिए काम किया।

कुल मिलाकर कहे तो रैदास समतामूलक समाज के अनुयायी रहे हैं। वैसे तो स्वातंत्र, समता, बंधुता, धर्मनिरपेक्षता यह हमारे संविधान के महत्वपूर्ण मूल्य हैं। इसे बनाए रखना हम सभी का कर्तव्य है क्योंकि अगर समाज में समता, बंधुता नहीं होगी तो स्वातंत्र खतरे में आ सकता है। इसी तरह संविधान में प्रस्तुत धर्मनिरपेक्षता अर्थात् सर्वधर्म समभाव की भावना भी समाज में अंकित होना भी अत्यावश्यक है। यह भावना अगर देश के लोगों में कम होती हुई दिखाई देगी तो वह राष्ट्रीय एकता के लिए ठीक नहीं होगा। इसलिए हमें संविधान के इस मूल्यों को हमारे संतो द्वारा प्रस्तुत विचारों के आधार पर और अधिक मजबूत करना होगा क्योंकि हमारे संत मानवता की अनुयायी थे और किसी भी देश को जनतंत्र बनाए रखने के लिए मानवता यह सर्वोपरि मूल्य हैं और रैदास से लेकर मध्ययुगीन सभी संतों ने इस मूल्य को बनाए रखने पर बल दिया है। हम सभी का भी कर्तव्य है कि हमें मानवता के पुजारी बनकर संतों की इन विचारों को आगे ले जाना आवश्यक है। आज भी संत रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिये अत्याधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता है। विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य, बंधुता तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. मध्ययुगीन हिंदी संत विचार और साधना, डॉ. केशरी प्रसाद चौरसिया, हिंदुस्तानी अकैडमी इलाहाबाद
2. संत रैदास, योगेंद्र सिंह अक्षर प्रकाशन दिल्ली
3. रैदास की सामाजिक चेतना-सीमा देवी
4. हिंदीकुंज. कॉम
5. संत काव्य की विशेषताएं-विद्याभूषण, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

आदिवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार

डॉ. वनिता बाबुराव कुलकर्णी

हिंदी विभागाध्यक्ष

कै.रमेश वरपुडकर महाविद्यालय, सोनपेठ.

ता.सोनपेठ जि. परभणी

पिन कोड -431516

प्रस्तावना –

भारतीय आदिवासी साहित्य लगभग 150 वर्ष पुराना है। इन्होंने अपने मूल आदिम स्वर, विचार और जीवनशैली को सुरक्षित रखा है। भारतवर्ष के नक्षे में पूर्व से पश्चिम में आदिवासियों का एक पट्टा मिजोरम, नागालैंड, मेघालय, असम, परगना, बंगाल, झारखंड छत्तीसगढ़ ओडिशा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और गुजरात के डांग तक उत्तर और दक्षिण में 300- 300 किलोमीटर के मध्य में मूल निवासियों की आबादी है। भारत के आदिवासियों की जो आबादी है वह भारत की संपूर्ण आदिवासियों की संख्या की 75% इन मूल निवासियों का क्षेत्र जिसे बेल्ट कहा जाता है। इस बेल्ट में छोटानागपुर और छत्तीसगढ़ के क्षेत्र देश की संपूर्ण खनिज संपदा लगभग 70% इस क्षेत्र में मिलती है। लेकिन कोयला, सोना, मैंगनीज, हीरा, लोहा, और कीमती पत्थरों के खनन पर पूरे भारत में एक षड्यंत्र विकसित हो रहा है। अभिजात्य साहित्य के बाहर एक बहुत बड़ा समाज है जो बरसों से अपने अधिकारों से वंचित है। आज साहित्य के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ खड़ी हैं कुछ समय पूर्व आदिवासी साहित्य हाशिए पर थे। क्रांतिकारी परिवर्तनवादी आंदोलनों के परिणाम स्वरूप आदिवासियों को अपने अस्तित्व और अधिकारों का एहसास हुआ है। जिससे हाशिए के जीवन में एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी बदलाव आता हुआ दिखाई दे रहा है। इस बदलाव की अभिव्यक्ति हिंदी साहित्य में हो रही है। अप्रगत, पिछड़ा, अज्ञानी, समान बोली बोलने वाला, अंधश्रद्धालु प्रकृति की गोद में जीवन यापन करने वाला, संस्कृति का रक्षक, भारत भू की संतान आदिवासी है।

शांति और संतुष्टि –

मनुष्य समाज में जीता है। समाज में जीने के तौर-तरीके नियम कानून होते हैं, जो प्रत्येक समाज के अपने होते हैं। मानवता के नाते हम में कुछ गुण हैं, जो हमें भाईचारा, सौहार्दता, बंधुत्व तथा समानता की सीख देते हैं। विभिन्न धर्मों की कई गरिमामय विरासत अर्थात् अच्छी बातें हैं, जो समाज के अनुकूल हैं। इन धर्मों के बीच समाजोंनुकूल विरासतों का संवाद वर्तमान में अनिवार्य हो गया है। विश्व के सभी धर्मों में मनुष्यता, मानवता की सीख दी जाती है। एवं आचरण में उतारने की बातें कहीं जाती हैं। बावजूद इसके आज हम चारों ओर विपरीत आचरण देख रहे हैं। "अपनी जाति, अपनी संस्कृति और अपने धर्म पर हर व्यक्ति को गर्व होना ही चाहिए, लेकिन इस गर्व या गौरव का तब कोई महत्व नहीं रह जाता जब उसका विचार ही खोखला हो।"1 हर व्यक्ति शांति, अमन, चैन चाहता है, परंतु उसे पाने की चेष्टा नहीं करता, अपितु जाने-अनजाने इसके विपरीत कार्य करता और अमन-चैन और शांति सब खो देता है।

हम सभी जनतांत्रिक भारत देश के नागरिक हैं। भारतीय संविधान ने हमें धार्मिक स्वतंत्रता दी है, वैमनस्य और अराजकता कि नहीं। सभी धर्म, चरित्र निर्माण की बातें करते हैं। अतः विभिन्न संगठनों, जातियों, वर्गों, समुदायों तथा उनके विश्वास और विचारों मूल्यों, मानको आदि के संयुक्त योगदान से हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को जी सकते हैं।

संविधान के अनुसार यहां सभी व्यक्तियों को समान अधिकार दिया गया है। "आजादी पाने के बाद भारत ने प्रजातंत्र, समता और सामाजिक न्याय के आदर्श अपनाए और उन्हें अपने संविधान में समाहित किया।"2 लेकिन भारतीय समाज में आधी न्यायिक व्यवस्था को भी धरातल पर सही तरीके से नहीं लाया गया है, ताकि सभी जातियों एवं वर्गों को न्याय मिल सके। प्रजातंत्र के सिद्धांत, समानता, स्वतंत्रता, भाईचारा, बंधुत्व न्याय की अनदेखी की जाती रही है। अर्थात् संविधान के विपरीत कार्यों के निष्पादन किए जा रहे हैं। इससे समाज अशांत है। संविधान सम्मत कार्य में सभी व्यक्तियों को न्याय मिलेगा और न्याय मिलने से सभी संतुष्ट होंगे तब शांतिपूर्ण तरीके से सभी जीवन यापन करेंगे समाज में मेल मिलाप सौहार्द एवं समझौता होगा। इससे पारस्परिक भाईचारा का भाव आएगा और अस्तित्व को बल मिलेगा।

अधिकारों की रक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान –

आदिवासी समाज व्यवस्था में जाति भेद, वर्ग भेद, कभी नहीं रहा। इसलिए झारखंड जैसे आदिवासी देश में कई आदिवासी जातियाँ, यथा उराँव, कुडुख, मुंडा, हो, संताल, खाडिया तथा साथ में कई आदिम आदिवासी जातियाँ बिरहोर कोरवा असुर, पहाड़िया इत्यादि युगों से साथ रहते आए हैं। उनके बीच आपसी मतभेद कभी नहीं हुआ। जब कभी बाहरी हस्तक्षेप एवं अन्याय हुआ सभी मिलकर इसका मुकाबला करते रहे। इन सबकी अपनी शासन व्यवस्था रही, जिसमें पुलिस की कभी कोई जरूरत नहीं पड़ी। समाज में समानता भाईचारा, बंधुत्व, मरईत, संगत एवं नेक्ता से आर्थिक सहयोग की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में स्त्री को कभी दूसरे दर्जे का नहीं रखा गया। लेकिन आज के राजनीतिक परिवेश में सब कुछ बदलते जा रहे हैं। अतः संविधान के तहत दी गई पांचवी एवं छठी अनुसूची का ईमानदारी से पालन किया जाए तो वह दिन दूर नहीं कि जिस सद्भावना शांति और अस्तित्व की खोज में हम भटक रहे हैं वह हमें निश्चित तौर पर मिलेगा। शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की खोज के लिए हमें संविधान सम्मत कार्य करना ही पड़ेगा।

देश के संविधान में आदिवासी तथा जनजातीय समुदायों के अधिकारों के लिए संविधान की पांचवी और छठी अनुसूची में अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन तथा नियंत्रण की बात कही है। "अनुच्छेद 342 (1) में संबंधित राज्य अथवा केंद्र शासित प्रदेश के संबंध में जनजातीय वह आदिवासी समुदायों को अनुसूचित जनजाति के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। इसके अलावा अनुच्छेद 15 तथा 16 उनके साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करने तथा लोक नियोजन के मामले में अवसर की समानता देने की बात कहते हैं। अनुच्छेद 46 के तहत अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को सुरक्षित किया गया है। अनुच्छेद 335 एवं 338 के तहत राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई है और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के सरकारी नौकरी पाने के अधिकार को सुरक्षित किया गया है।"3 नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 उनके साथ होने वाली अस्पृश्यता के विरुद्ध अधिकारों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 16 (4) जो की सुरक्षा से संबंधित है। इसके विषय में हरीशचंद्र

शाक्य लिखते हैं कि, "अनुच्छेद 16 के खंड 192 में उल्लिखित सरकारी रोजगार के मामलों में अवसर की समानता के अधिकार के प्रति अनुच्छेद 16 (4) एक अन्य अपवाद है।"4 आदिवासियों के अधिकारों के विषय में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी विशेष पहल की है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावित अधिकारों के बारे में डॉ. वी. पाकेम का कहना है कि "अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुसार आदिवासी लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त है, जिसके आधार पर वे अपनी राजनैतिक हैसियत तथा संस्थाओं को तय कर सकते हैं और साथ ही वे अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हेतु स्वतंत्रता पूर्वक प्रयास भी कर सकते हैं। स्वयत्तता तथा स्वशासन उनके इस अधिकार का अनिवार्य अंग है।"5

आदिवासी समस्याओं, बाधाओं को नियति मानकर उन्हें बदलने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। बदलाव की प्रत्येक राह पर चल पड़ते हैं। वह आत्म सम्मान का स्वनिर्णय, स्वायत्तता और प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार अपनी जीवनशैली को बरकरार रखते हुए अपना विकास करना चाहते हैं।

आदिवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार –

भारत में आदिवासी समुदाय के अधिकार क्षेत्र में एक वृहद क्षेत्र समाहित है। भारत विविध नस्लीय समूहों का देश है। भारत की अधिकांश जनसंख्या विविध धर्मों एवं मिश्रित नस्लीय संस्कृति का हिस्सा है। एक विशिष्ट भौगोलिक प्रथकता में विशिष्ट भाषा, अधिकार, क्षेत्र तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का संचालन करने वाला समूह मूलनिवासी समूह कहलाता है। इनकी अलग पहचान हेतु इन्हें जनजातिय एवं आदिवासी भी कहा जाता है। ये आदिवासी सदियों से जंगलों के संरक्षक के रूप में रहे हैं। इनकी जीवनचर्या का आधार जंगल रहे हैं। जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक की यात्रा में जंगल ही इनका सर्वोत्तम सत्य रहता है।

हमारे देश के संदर्भ में जब "आदिवासियों के अतीत वर्तमान पर गौर किया जाए तो सुदूर में आर्य अनार्य संग्राम श्रंखला से गुजरते हुए आदिवासियों ने किसी तरह स्वयं के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा करते हुए जंगल, पर्वतों में प्रकृति की शरण में जीते रहने की शैली को अपनाए रखा। अपनी अनूठी आदिम संस्कृति की अक्षुण्णता को बचाए रखा। वह मानवता के मूलभूत सरोकारों को तथाकथित मुख्य समाज की सभ्यता से प्रदूषित नहीं होने दिया।"6 किंतु आज विकास के नाम पर उन्हें उजाड़ा जा रहा है। " अंग्रेज सरकार ने भी रेलवे के निर्माण और युद्ध आदि के दौरान अपनी साम्राज्यवादी जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगलों का जबरदस्त दोहन किया। देश के कुल जंगल का 60% क्षेत्र आदिवासी बहुल जिलों के अंतर्गत आता है। नए वनों में भी आदिवासियों के अधिकारों को तय नहीं किया गया, इस कारण यह लोग जंगल में अतिक्रमण कारी बन गए । यानी यह माना गया कि यह लोग जंगल में गैरकानूनी रूप से कब्जा जमा रहे हैं ।"7 'गजलीठोरी' एक आदिवासी क्षेत्र है। कहने के लिए सरकार प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए आदिवासियों के कल्याण के लिए खर्च करती है। परंतु अफसरों के राजनीतिजों के साथ सांठ-गांठ और उनके भ्रष्ट आचरण के परिणाम स्वरूप यह योजनाएं धाराशाही हो जाती है। गजलीठोरी के प्रति संजीव की चिंता इसी प्रकार की है - "आजादी के बाद आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएं बनी हैं, पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ ? आवंटित राशि का 10% भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुंच रहा है। कई योजनाएं तो फाइलों की कब्र में ही दफन हो गईं... जैसे कि यह प्राथमिक विद्यालय गजलीठोरी...। इस विद्यालय की ही भाँति सड़कर मरते रहे हैं कई नेक वायदे। यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी

तरह अनपढ़, असंस्कृत, भूखा नंगा, शोषित उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा- कटा रहेगा।"8 आदिवासियों के मन में शिक्षा और स्कूल दोनों के संबंध में नकारात्मक अवधारणाएं पैदा की जाती रही हैं। जिसके परिणाम स्वरूप स्वयं आदिवासी भी शिक्षा प्राप्त करने से डरते हैं। " जंगल के फूल" में आदिवासियों के स्कूल खुलने का डर व्याप्त दिखाया गया है— " मैं एक नई बात कहने जा रहा हूँ। हमारे गांव में एक बड़ा घर बन रहा है। कहते हैं कि वह 'इस्कूल' है, उसमें लड़कों को पढ़ाया जाएगा।

— क्या पढ़ाया जाएगा ?

— मैं नहीं जानता

— पढ़ाना क्या चीज है गायता ?

— वह भी मुझे नहीं मालूम। पर इतना पता लगा है कि उस इस्कूल में हमारे लड़के भी जबरन भर्ती किए जाएंगे और उन्हें पढ़ाया जाएगा।" 9 भारत में आदिवासियों को मूल निवासी घोषित न करने के पीछे विभिन्न संगठनों द्वारा विशेष नीति तथा षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। इन्हें देश के आदिवासी नेता पढ़े- लिखे शिक्षित प्रबुद्ध वर्ग समझने में असफल हो रहे हैं। और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन करने के लिए आक्रमण किए जा रहे हैं। इन्हें कैसे आदिवासी से गैर- आदिवासी बनाया जाए षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। उनकी संस्कृति, भाषा, पंचायत विवाह- पद्धति, प्राकृतिक पूजा पद्धति, जमीन पर कितना उनका अधिकार है, इसे हथियाने की योजनाबद्ध तरीके से परिवर्तन कराने का काम चल रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में खनिज बहुलता को देखते हुए भारत के पूंजीपति वर्ग ने एक सूत्र निकाला है यह सूत्र है विदेशों से खनिज के लिए जापान, फ्रांस, चीन, अमेरिका, जर्मनी आदि देशों से ऊर्जा उत्पादन के लिए करार। साथ ही देश के पूंजीपति उद्योग स्थापित करने की योजनाओं में अरबों धन धन राशि व्यय करने की तैयारी में है, किंतु संवैधानिक अधिकार बीच में आड़े आ रहा है। आदिवासी बिना संस्कृति और संविधान के अपना अधिकार नहीं पा सकता आदिवासी की जमीन गैर आदिवासियों को नहीं दे सकते। खनिज पदार्थ निकालना हो तो आदिवासियों की अनुमति के बिना नहीं निकाला जा सकता। अतः संविधान को बदलना भी कठिन है। इसलिए आदिवासियों को गैर आदिवासी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। आदिवासी अपने को विस्थापित किए जाने के शड्यंत्रों से अवगत होकर समाज को आगाह करने में लगे हैं। हरिराम मीणा अंडमान निकोबार की खत्म होती नस्लों व जमीनों से उनकी बेदखली पर चिंतित हो उठते हैं।

कैसे करोगे साबित

सभ्यता की इस अदालत में

कि यह भौम... जमीन। तुम्हारी थी

आज हिंदी साहित्य में आदिवासियों की शौर्य गाथाएं- कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, और विद्रोही गीत आदि रूपों में रचे जा रहे हैं। आज आदिवासी विकास नीतियों का शिकार नहीं होना चाहता बल्कि विकास नीतियों का निर्माण करना चाहता है। हाथ में कलम पकड़ अपनी जड़ों की खोज करना चाहता है।

निष्कर्ष –

आदिवासियों के मानवीय स्वरूप को पुनः वापस लाने के लिए सरकार ने संविधान में विशेष प्रावधान किए हैं। उनकी सुरक्षा के लिए आदिवासी बहुल क्षेत्रों में जनजातीय कल्याण थाने व न्यायालयों की स्थापना की

गयी। उनकी समृद्ध सांस्कृतिक रीति-रिवाजों, मूल्यों एवं सामूहिक चेतना के संरक्षण के लिए आदिवासी क्षेत्रों में संग्रहालय व कार्यालय बनाए गए हैं। जिसमें संचित विरासत को भविष्य में इनकी आगे आने वाली पीढ़ी तक पहुंचाया जा सके। नीति निर्देशक तत्वों का संविधान में उल्लेख है जो संविधान में किसी भी व्यक्ति को लिंग, जाति, धर्म, संप्रदाय के आधार पर भेदभाव का विरोध करते हैं। विकास में समानता लाने के लिए पिछड़े लोगों के विकास के लिए विशेष प्रावधान किए गये। इतना ही नहीं आदिम समूहों की विकास योजनाओं में इनकी भौगोलिक स्थिति को भी ध्यान में रखा गया। आदिम समूहों का रहन-सहन आम नागरिकों से अलग है। जब उनके पूरे परिवेश में अंतर है तो विकास की एक जैसी नीतियाँ बनाने से उनका विकास नहीं होगा। इसलिए आदिवासियों को जब जमीन से बेदखल किया जा रहा है इसके लिए 5वीं अनुसूची में जो प्रक्रिया है अनुसूचित जनजाति परामर्श समिति, केंद्रीय परामर्श, असम परिषद, राज्यपाल और संवैधानिक अधिकार या संरक्षण प्राप्त है तब उसका उपयोग करना होगा एवं हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक अपनी मांगों को ले जाना होगा। साथ में अनुसूचित जनजाति आयोग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, संसदीय समिति और मानवाधिकार आयोग को भी साथ लेकर चलना होगा। यहां तक कि हमें ऐतिहासिक सच्चाई के लिए अंतरराष्ट्रीय कानून को लेकर संयुक्त राष्ट्र तक जाना पड़े तो पीछे नहीं हटना होगा। आज हम देखते हैं कि, चारों ओर स्वतंत्रता ही नजर आती है समाज कहीं नहीं दिखता। सर्वहित को सामने रखकर व्यक्ति को क्रियाशील बनाने की आवश्यकता है और समाज की अस्मिता की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष की आवश्यकता है। आज आवश्यकता इस बात की है उनके लिए कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण में उन समूहों के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व हो। शिक्षा में भी उनके लोगों को शामिल किया जाय। जिससे आदिम समूह मुख्यधारा में शामिल हो सके।

संदर्भ –

- (1) हिंदू संस्कृति -सं. राकेश नाथ - 2005 -विश्व बुक्स,बी-1 / ई-7, मोहन कॉपरेटिव बदरपुर, नई दिल्ली- 44- पृष्ठ 05
- (2) समय और संस्कृति- दुबे श्यामाचरण- 1996- वाणी प्रकाशन- 21- ए दरियागंज- नई दिल्ली- पृष्ठ 96
- (3) [https:// WWW.patrika.com>world-tri...](https://WWW.patrika.com>world-tri...)
- (4) आदिवासी और उनका इतिहास- प्रथम संस्करण- 2011- पृष्ठ- 103
- (5) आदिवासी कौन ?- रमणिका गुप्ता- राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड- अंसारी मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली- संस्करण- 2016- पृष्ठ- 84
- (6) अरावली उद्घोष आदिवासी संस्करण, सं. बी.पी.वर्मा- 'पथिक'- जून 2010 -अंक 88- पृष्ठ- 88
- (7) जनसत्ता- संपादकीय ' जंगल के दावेदार '- कमल नयन चौबे - 20 मई 2010 -
- (8) पठार पर कोहरा - राकेश कुमार सिंह - पृष्ठ 137- 138
- (9) जंगल के फूल - राजेंद्र अवस्थी- पृष्ठ -127

गिरिराज किशोर के उपन्यास में संवैधानिक मूल्य

प्रा.निर्मला लक्ष्मण जाधव

हिन्दी विभागाध्यक्ष

सौ.कमलाताई जामकर महिला महाविद्यालय परभणी।

देश को जोड़ने का काम भाषा करती है और वही काम अंग्रेज जाने के बाद भी राष्ट्रभाषा को उसका उचित स्थान न मिलने पर गिरिराज किशोर साक्षात्कार में देश कि प्रसिद्ध संस्था में हिन्दी कि स्थिती संबंध में मंतव्य व्यक्त करते हैं-“मेरे आने से पहले वहाँ हिंदी में कोई बात नहीं करता था।सब जगह अंग्रेजी में बोर्ड लगे थे।मैंने द्विभाषा कराये।लोगों में बदलाव आये।लोग बाग हिंदी में बात करने लगे।जब मैं जीतकर, बहाल होकर आया तो मैंने उनसे कहाँ देखिये आपको भी मुझसे असुविधा है,मुझे भी आपसे।मैं एक रचनात्मक लेखन केन्द्र खोलना चाहता हूँ।जिसे उन्होंने सहर्ष मान लिया।”¹ सामाजिक विषमता का बीज भारतीय समाज व्यवस्था में पाच हजार सालों से घुला है जो जातीप्रथा के रूप में समाज को बाँटने का काम कर रही थी उसे भी किशोरजी ने आयआयटी जैसी प्रतिष्ठीत संस्था में कैसे घिनोने रूप में जमी है।इस घटना को बड़े बेबाक ढंगसे अपनी रचना में उकेरा है जो संविधानिक मूल्य को अधोरेखित करती है- “सरकार का एक आदेश आया की एस.सी.एस.टी.छात्रों की भर्ती से की जाये।तो उसका कट प्वाइंट बहुत लो कर दिया गया। तब तक कम्टीशन नहीं लागू हुआ था।इसका वहाँ के अन्य छात्रों व फैकल्टी के लोगों ने बहुत विरोध किया।जिसके कारण इन छात्रों को बहुत सफर करना पड़ा।उनकी पढ़ाई में समस्या आयी।उनको लुक डाउन किया गया। लोग उनको सपोर्ट करना नहीं चाहते थे।पढ़ाना नहीं चाहते थे उनको। हयूमिलियेट करते थे।क्लास में ताने मारते थे उन पर कि आप लोग कहाँ से आ गये। इससे तंग आकर एक छात्र ने आत्महत्या कर ली। मैंने परिशिष्ट उपन्यास में इसका जिक्र किया है।” परिशिष्ट इस उपन्यास में अनुकूल इस पात्र की आत्महत्या हमारे लोकतंत्र मूल्यों पर ही सवाल खड़ा करती है।सामाजिक समता की लड़ाई समाज को कितने खतरनाक मोड़ पर लाकर खड़ा करती है इसका जिताजागता उदाहरण है चिट्ठी में वो लिखता है “मेरा जाना स्वेच्छा से है।गवेषणात्मक है।हालाँकि उसका प्रतिफल दूसरों को बाँट पाना सम्भव नहीं होगा...किसी घृणा या शिकायत के कारण नहीं,एक आत्मीयता और आत्मसन्तोष के कारण मेरा केवल यही प्रश्न है कि जब प्रकृति जिससे हम सब कुछ पाते हैं,घृणामुक्त है,तो मनुष्य मुक्त क्यों नहीं?”²

जब संविधान अंगिकृत किया गया तब उसके संविधानिक मूल्य और वास्तविक धरातल पर जमीन आसमान का फर्क था। शुरु से ही संविधानिक प्रवधानों और मूल्यों पर तत्कालिन सामाजिक रूढ़ी परंपरा मान्यता हावी दिखाई दी,जिसे राजनैतिक,प्रशासनिक व्यवस्था से धिरे धिरे लागु कर समाज कि सोच और स्थिती बदलने के प्रयास निरंतर चल रहे हैं और वह प्रक्रिया आज भी चल रही है। कुछ इसीतरह का साहित्य गिरिराज का रहा है जो जिवन में उभरती घटनाओं को साहित्य में संजोकर संवैधानिक मूल्य को प्रकट करते हैं जिसके बारे में वो कहते हैं-“अनुभव का विस्तार और प्रामाणिकता ही रचना का स्वरूपतय करती है जितनी बड़ी संवेदाना होगी उतनी ही बड़ी रचना होगी।”³ जो वाकई में उनके रचना संसार में वास्तविक होता नजर आता है।

मूल्य व्यक्ति एवं समाज का जीवन नियंत्रित करता है, लेकिन प्रत्येक समाज देश समुह के मूल्य अलग होने से बहुत बार संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। डॉ.नगेन्द्र मूल्य संदर्भ में लिखते हैं-“मानदण्ड एवं मूल्य आदि शब्द मूलतः साहित्य के शब्द नहीं हैं। पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में भी इसका समावेश अर्थशास्त्र अथवा वाणिज्यशास्त्र में किया जाता है।”⁴ आर.एल.निगम कहते हैं-“मूल्य जीवन तथा सामाजिक विकास से असंबद्ध नहीं होते। मूल्य जीने की कला तथा सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं, जीने की कला व सामाजिक विकास मूल्य को प्रभावित करते हैं।”⁵ भारतीय संविधान में मूल्य खोजने हो तो पुरे संविधान को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है मात्र उद्देश्यपत्रिका या प्रस्तावना का अध्ययन करने से ये सभी तत्व स्पष्ट होत हैं।

गिरिराज किशोर के साहित्य में संवैधानिक मूल्य बड़े ही सहजता से आयी है जिसका कारण वो तत्कालीन परिवेश को मानते हैं, जिसको उन्होंने बड़ी नजदीकी से अनुभव किया है-“जिस माहौल में, जिस संस्कृति और जिन स्थितियों से उपजे अनेक छोटे बड़े पात्रों को उनकी कुंठाओं, उनके छोटेपन या बड़प्पन को देखा, उनका एक बहुत बड़ा हिस्सा मेरे स्मृति कोष में अभी बाकी है। जब यह बात मेरे सामने आयी तो जैसे सब कुछ खुलता और फैलता चला गया। मेरे पास यही एक रास्ता रह गया था कि मैं उस माहौल को पुनः जीऊँ और उस पर लिखूँ। कई बार लेखक अपनी मुक्ति के लिए भी लिखता है और अपने नये पुराने समाज की पहचान के लिए भी। इसके दोनों ही पक्ष होते हैं नुकसान भी और सार्थकता भी। साहित्य में होनेवाले सबसे बड़ा नुकसान रचनाकार की रचना का अस्वीकार ही है। लेखक को उसके लिए हर समय तैयार रहना पड़ता है। क्योंकि रचना को सार्थक बनाना उसके पाठकों के हाथ में है। इस बारे में लेखक स्वयं कुछ नहीं कर सकता।”

गिरिराज किशोर सामाजिक बदलाव के प्रति सचेत रहे हैं जिसको साहित्य में विशद करना वो अपना कर्तव्य मानते हैं। इसलिए संवैधानिक मूल्य का सामाजिक चित्रण बड़े ही सहजता से करते हैं। “मुझे समाज और मनुष्य, मनुष्य और मनुष्य तथा व्यक्ति और प्रतिष्ठान के बदलते रिश्ते हमेशा से आकर्षित करते रहे हैं। कहानी हो या नाटक या उपन्यास या लेख मैं इन बदलते रिश्तों निरन्तर सामने लाने की कोशिश करता रहा हूँ। मेरी इच्छा हमेशा उन बदलते रिश्तों का गायक बने रहने की रहा है। एक वक्त और एक समाज में जो कुछ बदलता है वह अगले समाज में बननेवाले रिश्तों का आधार होता है।” बा इस उपन्यास में किशोरजी व्यक्ति की प्रतिष्ठा करते हुये सामाजिक जीवन के भिषण वास्तव को चित्रण करते हैं जब बापू जी सभी आश्रम सदस्यों को व्यक्तिगत शुचिता का पाठ पढ़ाते हुये सुचना करते हैं कि सभी को रोज नहाधोकर साफसुथरे कपड़े पहने का आदेश देते हैं जिससे आश्रम की महिला बा को कहती है-“महात्मा जी ने हमें हर दिन नहाने और धुले कपड़े बदलने की सलाह दी है, हम कैसे करें? जो कपड़े हम पहने हैं, वही कपड़े हमारे पास हैं।”⁶ अपनी स्थिति समझाने के लिये आश्रम की महिला बा को झोपड़े में ले जाती है जिसे देख बा जीवन का सबसे कटु अनुभव का सामना करना पड़ता है। सास बहू के पास एक ही जोड़ी धोती है और जो भी बाहर जाती है वह उसे पहनती है ऐसी अमानवीय और चिन्ताजनक स्थिति देख समाज कितनी शर्मनाक गरीबी में जीवनयापन कर रहा है इसे अनुभूत करती है।

गिरिराज किशोर उपन्यास या कहानी को मनोरंजन का माध्यम नहीं मानते “मैं उपन्यास को एक समाजशास्त्री अध्ययन भी मानता हूँ, अनेक प्रकार के संबंधों को, जो रहे हैं, या हैं या आगे बनेंगे, व्याख्यायित

करने वाले मानवीय समीकरण। मेरी दृष्टि में उपन्यास और कहानियाँ बल्कि नाटक भी, जीवन के प्रति वैज्ञानिक और अर्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाने में मदद करते हैं और उन्हें ऐसा करना चाहिए।”

ढाई घर उपन्यास में समाज के उच्चवर्ग वर्ग जमींदार व्यवस्था में तत्कालिन परीवेश किस तरह बदलाव हो रहा है इसे दर्शाने का प्रयास किया गया है। “मेरा नाम भास्कर राय है। मैं उत्तर प्रदेश के पश्चिमी इलाके के एक पुराने खाते पीते राय खानदान का अन्तिम राय हूँ। अब मेरे बाद कोई राय नहीं होगा। मेरे बच्चे हैं पर जिस आधार पर हम लोग राय हुआ करते थे वह एक बड़ी जमींदारी थी। वह कभी खत्म हो गयी। विरासत और रियासत दोनों ही नहीं रहे। मैं जब तक यूँ राय नाम को वहन कर रहा हूँ क्योंकि मैं उसी रियासत का एक हिस्सा हूँ। बचा हुआ।”⁷ गिरिराज किशोर ढाई घर उपन्यास में मात्र पिछड़े समाज की विपन्न अवस्था का वर्णन नहीं करते सवर्ण समाज भी बदलते सामाजिक परिवेश से अछूता नहीं है ये बतलाने का प्रयास करते हैं, साथ ही शिक्षा के संबंध में मनुवादी मानसिकता किस तरह उच्चवर्ग में भी उदासीनता पैदा करती है इसे भी दर्शाया है। “मेरी पढाई लिखाई कम हुई थी। ज्यादा हो भी जाती हो जाती पर कैसे कैक्टस का पौधा कम जल पीता है बड़े आदमी का बच्चा कम पढता है। कुछ पढ भी लेते हैं। उनके दिमाग में इसकी बू नहीं होती। यही तब भी था। ऐसे घरों के लड़के कम पढते थे। पढना गुलामी का निशाना माना जाता था। हालाँकि वही लोग सबसे ज्यादा गुलाम होते थे। जब मेरे बच्चे यानी सोना, रघुबर, गिरवर वगैरह पढते नहीं थे और मैं उन्हें कौचता रहता था तो मुझे अदकबा कर अपना जमाना याद आ जाता था। जो बात मेरे लिए बेइज्जीती की थी उसी के लिए मैं अपने बच्चों को क्यों कहता हूँ।”

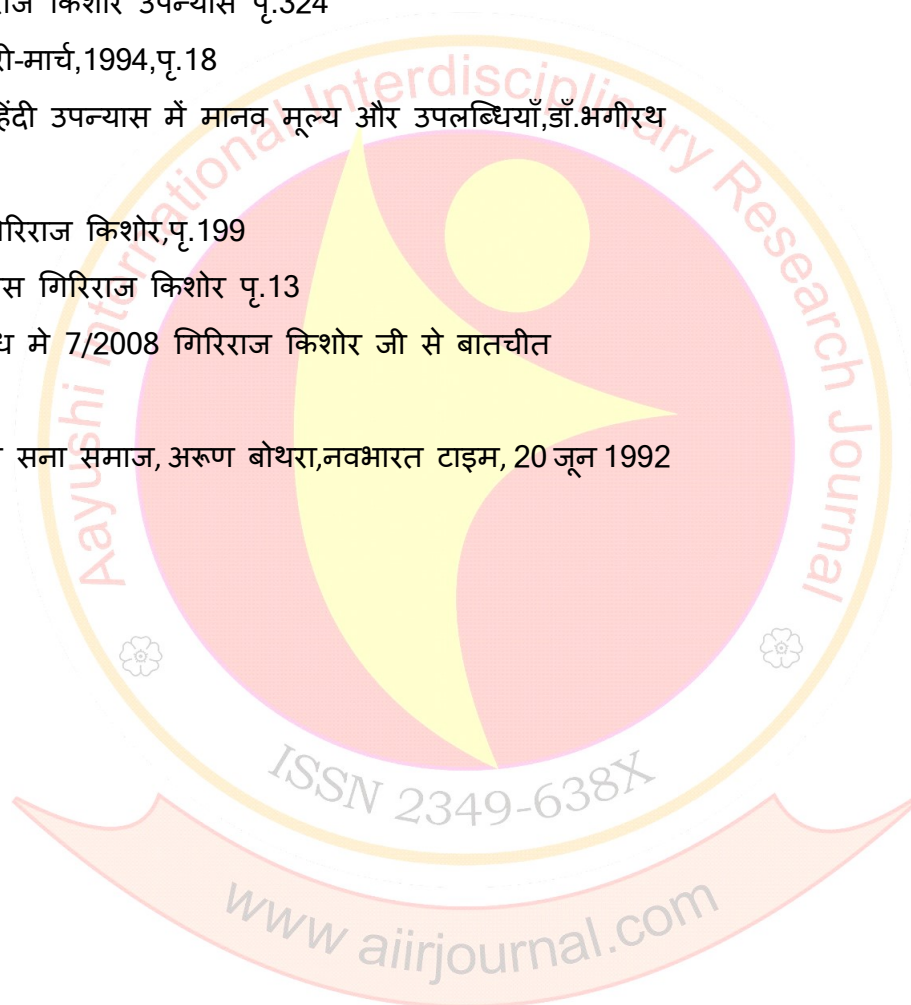
गिरिराज किशोर की रचना पहला गिरमिटिया लिखने से पहले वो जब गांधीजी के बारे में तथ्य खोज रहे थे तब उन्हें ऐहसास हुआ कि किस तथ्य को रचना का केन्द्रबिन्दु होना चाहिए “मैंने पहले भारत के गांधी के बारे में लिखना शुरू किया था। जब मैं दक्षिण अफ्रिका गया तो वहाँ हसिम सौदात नाम के एक सज्जन ने मुझसे कहा—“ देखिये गांधी हमारे यहाँ तो जैसे खान से निकले अनगढ़ हीरे की तरह आया था जिसे हमने तराशकर आपको दिया। आपको तो हमारा शुक्रिया अदा करना चाहिये। अगर आपको लिखना है तो इस गांधी पर लिखिये। उनकी बात ने मुझे अपील किया तथा मैंने उस पर लिखा।”⁸

कोई भी रचना और पात्र यँही निर्मित नहीं होते वो लेखक के अवचेतन मन पर सामाजिक परिवेश से अंकीत होते हैं जिसे लेखक रचना निर्मिती करते समय अनायास ही पाठको के सामने प्रस्तुत करता है जिसकी अनुभूती हमें गिरिराज की रचनाओं में उभरे पात्र, परिवेश और प्रसंगों से पता चलता है इसलिए गिरिराजजी कहते हैं “लेखक अपने अनुभव, दुखों और सुखों को अपने पाठकों के साथ बाँटता है, उनसे हिस्सेदारी करता है, उसके अलावा उन्हें देने के लिए लेखक के पास कुछ और है ही नहीं। उसकी अन्तरंग से अन्तरंग बातों में उसके पाठक ही हिस्सेदार होते हैं। कई बार वे बातें स्वीकार्य होती हैं, कई बार नहीं होती और कई बार स्वीकृति या अस्वीकृति में ही कई दशक लग जाते हैं।” अबतक भारतीय साहित्य में स्त्री की पतिव्रता को ही महत्व दिया जाता था, लेकिन गिरिराज की उपन्यास दो में स्त्री की स्वतंत्रता को चित्रित करते हुये, सामाजिक बदलाव को दर्शाते हैं। जो उपन्यास की नायिका अपने पति का घर छोड़कर दूसरे पति के घर चली जाती हैं। जिस संबंधों में साक्षात्कार में अपने परिवेश को दर्शाते हुये कहते हैं “मेरे यहाँ की कई औरतों ने ऐसा किया है।”⁹

अंततः हम कह सकते हैं कि गिरिराज किशोर अपने साहित्य में लोकतंत्रिक मूल्यों का पुरजोर समर्थन किया है, लेकिन ये चेतावनी भी देना नहीं भूलते की सामन्तवादी मूल्य मिटे नहीं हैं वो हमारे में ही छिपकर सही समय का इंतजार कर रही हैं। “सामन्ती मानसिकता मिटी नहीं बल्कि हममें और गहरें पैठ गयी है।हाँ उनसे कुछ शकल और अन्दाज जरूर बदल दिये हैं।खासकर नव धनाढ्य उच्च मध्यम वर्ग के तौर तरीकों में ये प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं। कम तो निम्न वर्ग और निम्न मध्य की भी नहीं परन्तु आर्थिक विवशता के चलते ये चोचले कर नहीं पाते।”¹⁰

संदर्भसूची-

1. विकिपीडिया गिरिराज किशोरजी से बातचीत कानपुरनामा
2. परिशिष्ट गिरिराज किशोर उपन्यास पृ.324
3. दस्तावेज, जनवरी-मार्च, 1994, पृ. 18
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ, डॉ. भगीरथ
5. वही पृ. 16
6. बा उपन्यास गिरिराज किशोर, पृ. 199
7. ढाई घर उपन्यास गिरिराज किशोर पृ. 13
8. कानपुरनामा बुध मे 7/2008 गिरिराज किशोर जी से बातचीत
9. वही, पृ. 33
10. सामन्तवाद से सना समाज, अरूण बोथरा, नवभारत टाइम, 20 जून 1992



स्वातंत्र्योत्तर हिंदी दलित कविता में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति

डॉ. शिवाजी नागोबा भदरगे

सहायक प्राध्यापक एवं हिंदी विभाग प्रमुख,
हुतात्मा जयवंतराव पाटील महाविद्यालय,
हिमायत नगर जिला नांदेड़ पिन- 431802

प्रस्तावना:

व्यवस्था और समाज के स्वभाव में, उनकी कार्यशैली में न्याय, बंधुत्व, समानता, सहभागिता, स्वतंत्रता और करुणा के मूल्य कैसे प्रवाहित हों, इसके जतन आज़ाद भारत में हों, यह सबसे बड़ी कसौटी है। आज का वक्त मानवीय और संवैधानिक मूल्यों को अपने व्यवहार के केंद्र में लाने का है। कितनी विचित्र बात है कि जो संविधान देश को संचालित करने के लिए मूल्य आधारित व्यवस्था बनती है, देश का समाज उसी संविधान में दर्ज मूल्यों को हर कदम पर चुनौती देता है। सरकार कैसे काम करेगी, कैसे चुनाव होगा, न्याय व्यवस्था और समाज के स्वभाव में, उनकी कार्यशैली में न्याय, बंधुत्व, समानता, सहभागिता, स्वतंत्रता और करुणा के मूल्य कैसे प्रवाहित हों, इसके जतन आज़ाद भारत में हुए हों, ऐसा कम ही दिखाई देता है। हमारे समाज की खूबसूरती का एक अहम पैमाना है विविधता। इसमें अलग-अलग समुदाय हैं, उनकी अपनी-अपनी संस्कृति है। उनकी अपनी-अपनी भाषाएं हैं। अपने-अपने त्यौहार और उत्सव हैं। कोई साकार को अपना आराध्य मानता है और निराकार को।

वर्तमान में हमारी आर्थिक नीतियां मुनाफे के लिए विविधता के ठीक विपरीत व्यवहार करना सिखाती हैं। हम मानते हैं कि हजारों सालों के इतिहास में भांति-भांति की चुनौतियों से जूझते हुए, चुनौतियों से निपटने के तरीके गढ़ते हुए मानव समाज ने खुद अपनी संस्कृति रची है। भूगोल ने भी संस्कृति को एक रूप देने में अहम भूमिका निभाई है और पारिस्थिति ने भी। एक समय आता है, जब सत्ता और नियंत्रण का राजनीतिक विचार संस्कृति के विकास की प्रक्रिया को अपने नियंत्रण में लेने को आतुर दिखता है। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि जब विविधता का सम्मान करते हुए सामाजिक व्यवहार को संगठित रूप दिया जाता है और जब मूल्यों से उनका श्रृंगार किया जाता है, तब ही संस्कृति और समाज की आभा निखर कर आती है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने भारतीय नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को भारतीय संविधान में समा कर उन्होंने सबसे बड़ी मौलिक तहसील की है। भारतीय नागरिकों के न्याय समता, स्वतंत्रता, बंधुता के संदर्भ में उन्होंने जो कहना था। वह सब संविधान में किया इसके साथ उन्होंने यह भी देखा था कि सामान्य लोग ठीक तरह से इस प्रणाली में अपना जीवन यापन सुलभ कैसे कर सके इस पर भी उन्होंने ध्यान देते हुए भारतीय नागरिकों को स्वतंत्रता समानता संस्कृति और सभ्यता तथा शिक्षा का समान अधिकार देकर उनका जीवन मान ऊंचा किया है लोकतंत्र के समर्थन में डॉ. आंबेडकर ने अनेक बातों को प्रस्तुत किया। समतामूलक समाज की स्थापना और देश की स्वतंत्रता आदि विषय डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को अधिक महत्वपूर्ण लगते थे। इस पर प्रकाश डालते हुए हिंदी के प्रसिद्ध कवि रामदास जी अपनी कविता में लिखते हैं -

"प्रतिनिधि मिलकर राज चलाएं। प्रजातंत्र गणतंत्र कहाए।
जनता का जनता के हित में। जन शासन गणतंत्र के हित में।
लिंग भेद ना यहां सताए। नारी ऊंची शिक्षा पाए।
नहीं अदम नर नारी कहाए। निर्धन नारी सभ्य कहाए।
मेरी मांग पूर्ण आजादी। देश विभाजन वह बर्बादी।
कोई प्रांत विशेष ना होवे। बहुत फारसी सिख ईसाई।
सब के प्रतिनिधि हो संसद में। विधानसभा में या परिषद।"

डॉ बाबासाहेब आंबेडकर जी ने इस तरह से समानता का अधिकार भारतीय संविधान के माध्यम से सभी को दिया है। प्रजातंत्र को बनाए रखने के लिए सांप्रदायिकता और सद्भावना को अबाधित रखना होगा। इस बात को भी उन्होंने उल्लेखित करते हुए अपने संविधान के अंदर प्रस्तुत किया और इसका आज हम देखते हैं कि, सभी लोग अपने जीवन यापन करते समय उपयोग कर रहे हैं। इस बात को लेकर हिंदी के महाकवि निर्मल जी अपनी कविता में लिखते हैं-

"संपूर्ण शासन शक्ति। एक दल को ना देनी चाहिए।
हिंदू हो या मुसलमान। पक्षपात ना होना चाहिए।
है भारत में दल और। संप्रदाय जितने सभी।
संख्या अनुपात से ही होगी। बांटने राजशक्ति भी।
कह आंबेडकर ने इस तरह। स्पष्ट था सब कर दिया।
राजनीति और कूटनीति को। सब तरह समझ लिया।
तब सोचकर दलों में। था बाद में निर्णय लिया।
हो पृथक गांधी से था। मिल सब ने समझौता किया।"

इस तरह स्वाधीनता में सार्वभौम होना आवश्यक है। इसलिए स्वातंत्र्य पूर्व भारत में राज्यों के विभिन्न संस्थानों में भारत बट चुका था। इन संस्थानों को भारत में विलीनीकरण करने के लिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने सरदार पटेल को मौलिक सलाह दी थी। इस पर प्रकाश डालते हुए रामदास निवेश लिखते हैं-

"राजा और नवाब पुकारे। हम स्वतंत्र अनुराग हमारे।
भारत के ना अंग कहावे। हो स्वतंत्र निज राज चलाएं।
आंबेडकर ने राय बताई। भारत एक बनाओ भाई।
सब राज्यों का विलय कराओ। सार्वभौम एक राष्ट्र बनाओ।"

डॉ बाबासाहेब आंबेडकर को अपना समाज और अपने समाज में हिस्सेदारी अधिक महत्वपूर्ण लगती थी। समाज के बारे में राजनीतिक चिंतन को लेकर उन्होंने विशेष प्रतिनिधि की मांग करके दलितों को विशेष अधिकार दिलाना चाहते थे। परंतु तत्कालीन राजनीतिक नेताओं के कलह के कारण वह नहीं हो सका। इस राजनीतिक चिंतन धारा को हिंदी कवि माता प्रसाद मिश्र ने अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि,

"कहे आंबेडकर भारत हमारा देश।
करते इसे हम हृदय से प्यार है।"

देश को स्वतंत्र नहीं मतभेद और अंश मात्र।
लेकिन अच्युत यहां बहुतै लाचार है।
इसलिए पहले समान अधिकार मांग।
फिर हो स्वतंत्र देश रहा यह विचार।"

सारांश:

हिंदी साहित्य में संवैधानिक मूल्यों का चिंतन करते समय डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर भारतीय संविधान में लोकतांत्रिक विचारों को ध्यान में रखते हुए हमें अध्ययन करना होगा। उन्होंने तानाशाही शासन का पुरजोर विरोध किया। उनका राजनैतिक क्रांति में विश्वास था। उनका विचार था कि अस्पृश्य लोगों को शैक्षणिक सुविधाएं और आर्थिक सहायता दी जाए तो उनमें निश्चित रूप से परिवर्तन होगा। प्रजातंत्र में संपूर्ण समाज और राष्ट्र का हित है। भारत में लोकतांत्रिक शासन में अराजकता को लेकर भी उन्होंने चेतावनी दी थी। लोकतंत्र में समता, स्वतंत्र, बंधुता तथा न्याय मूल्यों के पक्ष में शासन व्यवस्था को चलाना आवश्यक होता है। परंतु शासन व्यवस्था कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में हमेशा होगी तो लोकतंत्र पर बहुत बड़ा धोखा मंडराने लगेगा। भारतीय नागरिकों के लिए आधारभूत अधिकारों की घोषणा भारतीय संविधान के माध्यम से उन्होंने की। उन्होंने राज्यों के विभाजन की मांग को लेकर भी अपनी बात रखी राष्ट्र के लिए एक भाषा होनी चाहिए इस पर भी बल दिया। उन्होंने भारतीय राजनीति में पाए जाने वाला संप्रदायवाद और जातिवाद का घोर विरोध किया। प्रजातंत्र की सफलता के लिए बता देना आवश्यक होगा। उन्होंने जो बात मूल्यों को लेकर की है वह मूल्य हिंदी साहित्य के दलित कवियों की कविताओं में दिखाई देती है। हिंदी के महत्वपूर्ण कवियों में रामदास निवेश तथा आर. के. निर्मल और माता प्रसाद मिश्र आदि के कविता में दिखाई देते हैं। भारतीय प्रजातंत्र को किस तरह से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर अपने देश हित के लिए महत्वपूर्ण बनाया हैं। इस बात को भी कविता में उद्धृत किया है। लोकतांत्रिक समतामूलक समाज व्यवस्था के मौलिक मूल्यों की अभिव्यक्ति स्वातंत्रोत्तर हिंदी दलित कविताओं में देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ:

- 1) भारत का संविधान।
- 2) रामदास निवेश,- भीम कथा अमृतम।
- 3) के. आर. निर्मल,- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर।
- 4) माता प्रसाद मिश्र,- भीम शतक।

मनीषा कुलश्रेष्ठ रचित उपन्यास 'शिगाफ' में चित्रित संवैधानिक मूल्य

डॉ. विनोदकुमार विलासराव वायचळ 'वेदार्थ'

अध्यक्ष हिंदी विभाग, व्यंकटेश महाजन वरिष्ठ महाविद्यालय, उस्मानाबाद
शोध निर्देशक एवं, निमंत्रित सदस्य, हिंदी अध्ययन मंडल,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

कश्मीर में हो चुके संवैधानिक मूल्यों के क्षरण को लेकर वहाँ के पंडितों के विस्थापन को लेकर मनीषा कुलश्रेष्ठ जी ने एक अनोखा उपन्यास लिखा है - 'शिगाफ' ! हम पहले लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ के बारे में थोड़ा-सा परिचय पाने का प्रयास करेंगे।

मनीषा कुलश्रेष्ठ जी के पिता का नाम सुमतेदुदयुम्न कुलश्रेष्ठ और माता का नाम सुधा कुलश्रेष्ठ हैं। मनीषा का जन्म राजस्थान के जोधपुर में दि. २६ अगस्त १९६७ में हुआ। आपका बचपन पाली जिले के एक छोटे से गाँव घाणेराव में बीता। आपने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा चित्तौड़गढ़ से प्राप्त की। आपने विज्ञान स्नातक उपाधि उदयपुर के मीराँ कन्या महाविद्यालय से प्राप्त की तथा सुखाडिया विश्वविद्यालय से हिंदी में एम्. ए. और एम्. फिल. की उपाधियाँ अर्जित की। आप कथक नृत्य में विशारद भी हैं। आपने अंशकुमार कुलश्रेष्ठ जी से विवाह किया। आपके कनुप्रिया और अवनी नामक दो बेटियाँ हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ जी ने तीन उपन्यास - शिगाफ (२०१०), शालभंजिका (२०१२) और पंचकन्या (२०१४) लिखे हैं। आपके पाँच कहानी संग्रहों में 'बौनी होती परछाई', 'कठपुतलियाँ', 'कुछ भी तो रूमानी नहीं', 'केयर ऑफ स्वात घाटी' और 'गन्धर्वगाथा' हैं।

आपने अनुवादक के रूप में 'माया एन्जलू की आत्मकथा', 'वाय केज्ड बर्ड सिंग' के अंश तथा लैटिन अमरीकी लेखक मामाडे के उपन्यास 'हाऊस मेड ऑफ डॉन' और बोर्हेस के कहानियों का अनुवाद किया है। आपने अत्याधुनिक तकनीकी का प्रयोग कर हिंदी नेस्ट, हिंदी समय डॉट कॉम और संगमन डॉट कॉम जैसी वेब पत्रिकाओं की निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ को उनके इस साहित्यिक योगदान के लिए चंद्रदेव शर्मा नवोदित प्रतिभा पुरस्कार, कृष्ण बलदेव वैद फेलोशिप, डॉ. घासीराम वर्मा सम्मान, रांगेय राघव पुरस्कार, कृष्ण प्रताप कथा सम्मान, गीतांजली इंडो-फ्रेंच लिटररी प्राइज, ज्यूरी अवार्ड, रज़ा फौंडेशन फेलोशिप आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान की प्रस्तावना अथवा उद्देशिका को संविधान का मूल ढाँचा माना है। इस प्रस्तावना में ही संवैधानिक मूल्यों का उल्लेख किया है। जिनमें प्रभुत्व-सम्पन्नता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र, गणराज्य, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बंधुता यह नौ प्रमुख संवैधानिक मूल्य हैं। वैसे सही मायने में देखा जाये तो भारतीय संविधान में प्रस्तावना का विचार अमेरिका के संविधान से लिया गया है। यद्यपि संविधान के ४२ वें संशोधन (१९७६) के अनुसार मूल प्रस्तावना में 'समाजवादी' और 'पन्थनिरपेक्ष' यह दो शब्द जोड़े गए। तथापि पर्याप्त वाद-विवाद के उपरांत इन शब्दों को भी आम लोगों ने स्वीकार किया है।

स्वतन्त्रता के अमृत महोत्सव को मनाते हुए हम सभी बहुत आनंदित हो रहे हैं। इस बात में कोई किन्तु नहीं है। फिर भी क्या हमारा राष्ट्र प्रभुत्व सम्पन्न है? हमारी राजनैतिक व्यवस्था समाजवादी व्यवस्था है? अपने इस स्वतंत्र राष्ट्र में सचमुच स्वतंत्र हैं? क्या हम सचमुच पंथ निरपेक्ष हैं? क्या भारत में सबकुछ लोकतंत्रात्मक रीति से होता है? क्या हम सचमुच गणतंत्रात्मक रीति से चुनाव सम्पन्न करते हैं? क्या भारतीय नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय मिलता है? क्या हमें विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और धर्म की स्वतन्त्रता है? क्या हमें प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त है? क्या हम में व्यक्ति की गरीमा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ रही है?

आत्मवास्तवीकरण की प्रक्रिया से गुजरने के बाद इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' ही मिलेगा। संविधान बनाते समय ही धार्मिक आधार पर भारत का विभाजन हो गया। हिन्दू बहुल भूभाग 'भारत' (हिन्दुस्तान) और मुस्लिम बहुल भूभाग 'पाकिस्तान' बन गया। पाकिस्तान को हमेशा से कश्मीर की चाह रही है। इस कारण आतंकवाद के जरिये कश्मीर के मूल निवासियों का विस्थापन होता रहा। कभी कम मात्रा में तो कभी अधिक मात्रा में।

हमारे विचार में हमारे संवैधानिक मूल्यों का सर्वाधिक हनन या क्षरण कश्मीर में हुआ है। जम्मू-कश्मीर में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 360 और 35 (अ) के प्रावधान दि. 16 नवम्बर 1952 से लागू हुए थे। ये अनुच्छेद जम्मू-कश्मीर और यहाँ के नागरिकों को कुछ अधिकार और सुविधाएँ देते थे, जो देश के अन्य हिस्सों से अलग हैं। इतना ही नहीं कश्मीर वह प्रदेश है जिसमें भारत की संप्रभुता को सर्वाधिक खतरा रहा है। भारत के संविधान से अलग कश्मीर का संविधान रहा है, भारत के राष्ट्रध्वज से अलग कश्मीर का झंडा रहा है, इतना ही नहीं भारत के प्रधानमंत्री से अलग उनका वजीर रहा है। इस विरोधाभास के खिलाफ डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को 'एक देश में दो निशान, दो विधान और दो प्रधान नहीं चलेंगे।' का नारा लगाते हुए सर्वोच्च बलिदान भी दिया। कश्मीर के मूल निवासी पंडितों को अपनी ही मातृभूमि को छोड़ कर भागना पड़ा। अंततः हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री आदरणीय नरेंद्र मोदी जी ने संविधान में संशोधन कर के 9 अगस्त 2019 के दिन अनुच्छेद 360 और 35 (अ) को हटा दिया और अब कश्मीर की समस्या का कुछ अंशों में समाधान हो गया है।

इस परिचयात्मक विवरण के पश्चात हम मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शिगाफ' पर विचार करेंगे। 'शिगाफ' शब्द का अर्थ है - 'दरार'। 'शिगाफ' से तात्पर्य है, जो दरार कश्मीरियों की रूह में, दिल में स्थायी तौर से पड़ी है, जिसमें पंथनिरपेक्षता एक हद तक रिस चुकी है। इस शिगाफ के लिए प्रयत्नरत है। उपन्यास की नायिका अमिता पाश्चात्य देशों में रहकर भी भारत की धार्मिक समस्याओं को और धार्मिक आधार पर हुए विभाजन की समस्याओं को भली भाँति पहचानती है। जिसमें अमिता लिखती है - "मैं भारतीय हूँ। एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू परिवार से हूँ।" ¹ इसीलिए भारत वापिस आने से पहले वह बहुत सोचती है कि, "एक ऐसा देश जहाँ धर्म और आस्था के नाम पर किसी को भी वरगलाया जा सकता है। फिलहाल मैं वहीं नौकरी करने की फ़िक्र में हूँ।" ² अमिता की भटकावों तथा असमंजस भरी इस यात्रा में अद्भूत तरीके से समेटा है। आतंकवाद और विस्थापन का समाधान प्रस्तुत करने का छोटा-सा प्रयत्न है। उपन्यास का नायक जमान, जो एक पत्रकार है और जिसका लक्ष्य भी नायिका अमिता की तरह ही है। किन्तु दोनों दो विपरीत और विषम अतीत से उपजे जीवन मूल्यों को सहजते हुए कई बार आपस में टकराते हैं।

यास्मीन के पिता इस्लाम की बुरखा परम्परा का विरोध करते हुए कहते हैं - “कफन कैसा भी हो, लाश को क्या फर्क पड़ता है।”³ कश्मीर के कालीनों का व्यवसाय बहुत प्रसिद्ध था पर दहशत के संकट के कारण यास्मीन के पिता कहते हैं - “कालीनों का कारखाना महीनों बंद पड़ा रहा है और उनकी बेटी को घर का वह हिस्सा बेचना पड़ा, जिसमें हम रहते थे।”⁴

यास्मिन वसीम को समझाते हुए कहती है - “तुम जानते हो...तुम्हें पहले भी समझाए हैं आज़ादी के मायने। मैं जड़ दिमाग हूँ, नहीं समझ पाती। इसे सुनकर मेरे हाथ-पैर सुन्न हो जाते हैं। मुझे ये खुली कब्रें महसूस होती हैं। क्या तुम ‘आज़ाद कश्मीर’ के नारे को तमाम दुनिया की दूसरी सच्चाइयों से ज्यादा तवज्जोह नहीं दे रहे?”⁵ कश्मीर के अधिकतर युवा दहशतगर्द बनाकर या तो पुलिस के हाथों मारे जा चुके हैं या जो दहशतगर्द नहीं बने वे दहशतगर्दों के हाथों मारे गए हैं। घर में कामनेवाले सिर्फ बूढ़े ही बचे हैं। डॉ. जुबेर कहते हैं - “वहाँ बूढ़े ही अकेले कमाने वाले मर्द बचे हैं।”⁶ अमिता मिलिट्री अफसर शांतनु के साथ वजीर के निकाह में शामिल होने के लिए जाती है पर निकाह के एक दिन दहशतगर्द बम विस्फोट कर देते हैं। “शादी के एक दिन सुबह दस बजे लाल चौक से कुछ आगे एक सरकारी बिल्डिंग में हुए बम विस्फोट और आगजनी से शहर का माहौल तनावग्रस्त हो गया था।”⁷

वजीर के निकाह के बाद अमिता उसे लेकर वसीम के घर जाती है, जहाँ उसे सादगी और किताबें ही किताबें दिखाई देती हैं। लेखिका संवेदनशील पाठक के घर वर्णन करते हुए लिखती है - “रूमी, इकबाल, फैज की शायरी से लेकर यासर अराफात, जिन्ना और नेल्सन मंडेला की बायोग्राफी। भारतीय इतिहास से लेकर भारतीय संविधान। लेनिन, चेग्वेर। रूसो क्या-क्या वहाँ नहीं था! दो बड़े टायटल गाँधी दर्शन के भी थे।”⁸

पर वही वसीम जब बम विस्फोट जैसा समाज-विघातक काम करता है और स्वयं घायल हो जाता है। तब लेखिका वसीम जैसे युवाओं की याथार्थ स्थिति को संकेतित करती हैं कि कश्मीर के युवाओं को केवल आज़ाद कश्मीर के सपने दिखाए जाते हैं, जिसके लिए बम विस्फोट से लेकर आत्मघाती हमले तक किये जाते हैं। “इस लड़ाई से हमें क्या मिला? वह अपने घाव को और पीड़ा को महसूस करता है।”⁹

आस्था-अनास्था की बर्बर लड़ाइयों के बीच, कुचले जानेवाले मनुष्य को केंद्र में रखते हुए लेखिका ने उपन्यास लिखने का उद्देश्य को बताते हुए लिखा है कि “भाई मेरे अमन का रास्ता इधर से भी गुजरता है।”¹⁰

उपन्यास में अनेक ऐसी घटनाएँ और प्रसंग चित्रित हैं जो सांकेतिक करते हैं कि विभाजन के बाद कश्मीर का असली हकदार या अधिकारी कौन है? स्थानीय समाज के विचार एक ओर तो और दूसरी ओर अलगाववादी गुटों की भूमिका है। इन सभी घटनाओं को अमिता के ब्लॉग, यास्मीन की डायरी, मानवी बम बनी जुलेखा का मिथकीय कोलाज, अलगाववादी नेता वसीम के आत्मालाप आदि के माध्यम से कश्मीर और कश्मीरियत की विदीर्ण व्यथा कथा के पृथक कोण, नए शैलीगत प्रयोग और ताजगी भरी भाषा के साथ अनोखे शिल्प से प्रस्तुत करती है।

संक्षेप में कहा जाये तो मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास ‘शिगाफ’ में सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में, व्यक्ति की गरीमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता आदि सभी संवैधानिक मूल्यों का चित्रण प्राप्त होता है।

सन्दर्भ :-

१. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. १३
२. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. १६
३. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. ११०
४. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. १६३
५. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. १६३
६. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. १६७
७. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. २०८
८. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. २११
९. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. २१६
१०. शिगाफ - मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २१०, पृ. २२३



श्यामनारायण पांडेय के काव्य में सांस्कृतिक तत्व

प्रा. के.एच. वाघमारे,

हिंदी विभाग

कालिकादेवी महाविद्यालय शिरूर(का.)

प्रस्तावना :-

श्यामनारायण पांडेय द्विवेदी युगीन संस्कारों में पले थे । भले ही उनके काव्यलेखन का समय छायावाद-प्रगतिवाद-प्रयोगवाद से गुजरा हो मगर उन्होंने अपना एक अलग काव्यपथ बनाया, जिसमें सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतनाएँ निखर उठीं । पांडेय जी ने अपनी हर काव्यकृति में अतीत की गौरवगाथा को प्रस्तुत करते हुए उसका वर्तमान जीवन से बड़ा अनोखा संबंध जोड़ दिया है । 'हल्दीघाटी' अपने समय के अनेक संघर्षों से प्रभावित आर्य संस्कृति की उपासिका है । सम्राट अकबर जैसे शूरवीर तथा कूटनीतिज्ञ बादशाह के सामने महाराणा प्रताप ही एक ऐसा अक्षय नक्षत्र राजा खड़ा रहा, जिसने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इन्कार किया। जिस महान स्वाभिमान के साथ महाराणा ने 'हल्दीघाटी' में युद्ध खेला तथा मेवाड़ की आन-बान-शान बचाई ऐसा दूसरा कोई नहीं कर सका । इतिहास इस बाद का साक्षी है। महाराणा प्रताप, स्वाभिमानी महारानी, स्वामिभक्त झालामान्ना तथा दानशूर भामाशाह इनके चारित्रिक गुणों में आदर्श भारतीय संस्कृति प्रतिबिंबित है । 'शिवाजी' महाकाव्य की रचना पांडेय जी ने धर्म, संस्कृति और वीरत्व की अर्चना के लिए की है । छत्रपति शिवाजी में आर्य संस्कृति, आर्य संस्कार, आर्य धर्म तथा दर्शन स्पष्ट रूप से छलकते हैं । अपनी सोद्देश्य कृति के बारे में कवि लिखते हैं- "मैं लिखते समय से ही आश्वस्त हूँ कि 'शिवाजी' महाकाव्य सभी वर्गों का मार्गदर्शन करेगा, स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति के प्रति आस्था बढ़ेगी, भारतीय कहलाने में संकोच नहीं होगा और अपनी भाषा गौरवन्वित होगी । लोग सच्चारित्र, अनुशासित, साहसी, नीति, निपुण, विवेकशील, संगठित और विजयोन्मुख होकर भारतीय राष्ट्रजीवन की प्रतिष्ठा बढ़ाएँगे ।"1

श्यामनारायण पांडेय ने 'जौहर' महाकाव्य में महारानी पद्मिनी के पावन सतीत्व की गौरवगाथा कही गई है । अनिर्दय सुंदरी पद्मिनी के द्वारा कवि ने संदेश दिया है कि स्त्री जाति का सौंदर्य साना-चांदी-हीरे-मोती के गहनों और पारदर्शी कपड़ों से आकर्षक एवं वंदनीय नहीं होता, वह तो संस्कृति के सतीत्व के पवित्र तेज से प्रशंसनीय होता है । 'जौहर' महाकाव्य का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा कि, सृष्टी का दूसरा नाम ही नारी है । यदि नारी परम पावन है, तो उसकी संतान भी पवित्र होगी, समाज विभ्र होगा, वंश की मर्यादा बढ़ेगी और साथ ही देश का गौरव भी जीवित रहेगा इसी लिए मैंने कीर्ति की तरह पवित्र, सीता-सावित्री की तरह पतिव्रता और दुर्गा की तरह वीरांगा महारानी पद्मिनी के चरित्र को अक्षरों में बाँधने का प्रयत्न किया है । ताकि देश की भटकती हुई नारियाँ पद्मिनी को समझें, उसकी पवित्रता अपने जीवन में उतारें और शौर्य-साहस को नस-नस में भर लें । अन्य देशों के लिए भारतीय परिवार की पवित्रता उदारण बन जाए । कवि ने 'जौहर' की भूमिका 'अग्निकण' में लिखा है - "जौहर लिखकर मैंने अपनी संस्कृति की पूजा की है ।"2

श्रीराम के अनुज लक्ष्मण और शूरवीर मेघनाद इन दो श्रेष्ठ योद्धाओं का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध वर्णन 'तुमुल' नामक खंडकाव्य में चित्रित किया गया है । इस कृति के माध्यम से कवि ने धर्म तथा कर्तव्य संबंधी

स्पष्ट सांस्कृतिक संकेत दिए हैं। उनके अनुसार जिस कार्य का परिणाम लोकंगल हो, वही धर्म है और शांति की बाढ़ें युद्ध काल के बाद ही उचित हैं। कवि ने 'तुमुल' द्वारा सांस्कृतिक संदेश दिया है कि राष्ट्र रक्षा के लिए युद्ध भी अनिवार्य एकमात्र उपाय हो जाता है। कवि ने 'गोरा वध' खंडकाव्य के माध्यम से भारतवासियों में स्वामिभक्ति, राष्ट्रप्रेम, कर्तव्य परायणता, अबला रक्षा के बलिदान आदि संस्कृतिक भाव जगाए हैं, जो समय आने पर मातृभूमि की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने को तैयार हो जाए। पांडेय जी ने 'आरती' स्फुट काव्य संकलन में आध्यात्म दर्शन, जीवन-जगत्-सृष्टी, ब्रह्म, माया, जप-तप-व्रत, गुरु महत्ता, व्यक्तिगत सुख-दुख, मातृभूमि प्रेम, बलिदान, स्वाभिमान आदि विविध सांस्कृतिक विषयों का सुंदर विवेचन किया है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के अनेक पहलुओं का विस्तृत विवेचन किया है। श्यामनारायण पांडेय जी की कृतियाँ सांस्कृतिक चेतना से युक्त हैं। उनके सामने भारत की एक परम पुनीत संस्कृति का अपार भंडार पड़ा था। हिमालय की कंदराओं में से गंगा, यमुना के पावन जल में से तथा ऐतिहासिक खंडहारों में से भारत की संस्कृति उन्हें सदा से प्रेरणा देती रही है। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व काव्य में विद्यमान हैं। उनका समस्त काव्य उत्साह, बल, ओज तथा तेज को बढ़ाता हुआ आगे बढ़ता है।

पांडेय जी के काव्य में सांस्कृतिक तत्व :

कवि श्यामनारायण पांडेय जी के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्वों का विवेचन निम्न स्वरूप किया है,

चिंतन-दर्शन : आध्यात्मिकता :

भारतीय संस्कृति चिंतन-दर्शन प्रधान अर्थात् आध्यात्मिकता से युक्त है। कवि पांडेय स्वयं आध्यात्मिकता के प्रेमी हैं। उनके विचारानुसार अपने आराध्य को यदि वह सगुण है, तो दर्शन से और निर्गुण ब्रह्म है तो आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है। यही जीवन का वास्तविक आनंद है। इसी में मानवजीवन की सफलता है। आस्तिकता, आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। कवि सर्वव्यापक ईश्वर का संकेत 'हल्दीघाटी' में कहते हैं -

“ जो अक्षर, अमर, अव्यक्त रूप, अविकार, अनघ, अक्षर, अनुप।

जो नभ समान है निराकार, उस विविध वेश को नमस्कार ।।”³

आत्मा : जीव :

आत्मा ब्रह्म का रूप है, अतः आत्मा अजर-अमर अविनाशी है। आत्मा सर्व समर्थ अपराजित, स्वतंत्र स्वयं ही विश्व-स्रष्टा स्वरूप है। आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर 'जीव' कहलाता है। यह जीव मोह माया और अज्ञान के कारण अपनी शक्ति और स्वरूप को भूल जाता है। 'यह जीव अपने रूप को भूलाकर अज्ञान के आवरण को भेदकर आत्मसाक्षात्कार करना ही ईश्वर की प्राप्ति है। कवि कहते हैं कि “ जिस दिन स्वयं को जान लेगा फिर वही बन जाएगा ।”⁴

आत्मा उस प्रियतम ब्रह्म के ध्यान में इतनी तन्मय हो जाती है कि 'सब में तू', 'तू में सब' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही पर वह जीवन की विजय-पराजय, आशा-निराशा, सुख-दुख का परित्याग करके अपने प्रिय के साथ मिलकर एकाकार हो जाती है -

“ पथ में बिछी है प्रीति-पलकें तुम्हारे लिए

आओ समा जाओ तुम प्राण, मेरे मन में ।”⁵

तप :

‘तप’ भारतीय दर्शन की आत्मा है। तप के कारण मनःशांति और आत्मिक सुख प्राप्त होता है। दैहिक पीडाएँ खत्म होती हैं। तप के बल पर मनुष्य इप्सित मनोरथ पूर्ण कर सकता है। पांडेय जी तप करके ब्रह्म आराधना में एकाकार हुए तो वे ब्रह्म के सामिप्य का अनुभव करने लगे। तपस्वी सदाचारी होते हैं। सत्कर्म करने वाले तपस्वी को ही तप का लाभ होता है। कभी-कभी बुरे कार्यों में ही रत रहने वाले तपस्वी भी मिलते हैं। उनकी आलोचना करते हुए पांडेय जी कहते हैं -

“ तप से हुआ क्या लाभ, जब दुष्कर्म में ही लीन हो,
वह तप करेगा क्या भला, जिसका विचार सही न हो ।”6

धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था :-

भारत धर्म-प्राण देश है। यहाँ धर्म पर श्रद्धा, विश्वास तथा भक्ति कण-कण में व्याप्त हैं। धार्मिक व्यक्ति सर्वव्यापक, सृजन-सिंचन-संहार करने वाली सत्ता में विश्वास रखता है। जब-जब संसार में धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब वह अपने रूप की रचना करता है, अथवा किसी-स-किसी रूप में अवतीर्ण होता है। इस धरती पर अवतार लेकर वह सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश करके धर्म की स्थापना करता है।

पांडेय जी धार्मिक वृत्ति के हैं। इसी कारण उनकी काव्यकृतियों में धार्मिक विचारों का बाहुल्य है। इन सब में मानव मात्र के जीवन को समुन्नत बनाने वाले सभी तत्व निहित हैं। इनको अपनाकर मानव दानवत्व का परित्याग करके देवत्व को प्राप्त कर सकता है और मानवता का अनन्य पुजारी हो सकता है। भारतीय संस्कृति भक्ति तथा उपासना प्रधान है, इसलिए उसमें हुदेववाद भी प्रचलित है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक देवी-देवताओं की पूजा, अर्चना, विनय, वंदना आदि प्रचलित है। पांडेय जी गणेश, सरस्वती, चंडी, दुर्गा और काली की भी वंदना करते हैं -

“ गणपति के पावन पाँव पूज, वाणीपद को कर नमस्कार ।
उस चंडी को, उस दुर्गा को, कालीपद को कर नमस्कार ।”7

प्राचीन भारतीय संस्कृति में नाना प्रकार के विधि-विधानों में यज्ञ का बड़ा महत्व है। धर्मप्रिय भारतीयों का विश्वास है कि इससे वातावरण शुद्ध होता है। वर्षा होती है, पृथ्वी हरी-भरी होती है, दुष्टों का संहार होता है, तथा अरिष्ट टल जाता है। भारतीय धर्मग्रंथों में मंत्रों का महत्व बड़ा माना गया है। धार्मिक व्यक्तियों का यह दृढ़ विश्वास है कि मंत्रोच्चार से मनःशांति, दिव्य अनुभूति प्राप्त होती है। मनुष्य के सारे संकुचित राग-द्वेष-छल-कपट दूर होकर उनकी आत्मा शुद्ध होती है और चित में चेतना व्याप्त होती है। परिणामतः धर्म के प्रति विश्वास और दृढ़ हो जाता है। कवि कहते हैं कि, -

“ श्रुति मंत्रों से ही जगती का , राग-द्वेष मिट सकता है ।
आत्मा का दर्शन होगा, चित में चेतन टिक सकता है ।”8

समन्वयशीलता :

भारतीय संस्कृति समन्वय प्रधान है। भारत में विभिन्न धर्म, जातियाँ, आजरनिष्ठा, विचारपद्धति प्रचलित रही हैं। यहाँ के ऋषि-मुनि-मनीषि-महर्षि तथा समाज सुधारकों ने सदैव समन्वय के प्रयत्न किए हैं।

यहाँ के धार्मिक सांस्कृतिक पवित्र ग्रंथ, वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि में समन्वय भावना विद्यमान है। भारत की इसी समन्वय शिलता के कारण बहुविध देवी-देवताओं को एक परमात्मा का, परब्रह्म का रूप कहा गया है। भारत ने सभी धर्मों में निहित सत्य को स्वीकार करके, सभी के प्रति आदर के भाव अभिव्यक्त किए हैं। उनकी रचनाओं में त्याग और भोग, ज्ञान और भक्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति, भावुकता और कर्तव्य परायणता, मृदुता एवं कठोरता, कर्म तथा तप, काम और मोक्ष आदि कितनी ही परस्पर विरोधी भावनाओं का समन्वय मिलता है। उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, नेताजी सुभाषचंद्र बोस आदि के जीवन चरित्रों द्वारा समन्वय भावना को व्यक्त किया है। पांडेय जी भारत की विविधता में एकता और अखंडता देखते हैं-

“क्या फर्क है इन्सान में, क्या फर्क वेद-कुरान में।

दो राह मंजिल एक है, कुछ भी उसे न विवेक है॥” 9

उदारता :

भारतीय संस्कृति अत्यंत उदार एवं करुणामयी है। यहाँ संकीर्णता तथा संकुचितता को कभी महत्व नहीं दिया गया। यहाँ हमेशा विशाल अंतःकरण तथा महान विचारों को श्रेयस्कर बताया गया है और सभी प्राणियों के कल्याण की कामना की गई है। सबको अपने ही कुटुंब का व्यक्ति माना गया है। यहाँ के पुनीत पावन वातावरण में हमेशा जगत के समस्त प्राणियों के सुख, आनंद, कल्याण, मंगल तथा आरोग्य की कामना गूँजती रहती है और विश्व के किसी भी प्राणी को दुखी तथा अपमानित करना उचित नहीं समझा जाता है। कवि लिखते हैं कि, -

“भइया तुम्हारे राज में, कोई न डूबे लाज में।

सबका ईमान बना रहे, कहना न कुछ करना रहे॥” 10

सहिष्णुता :

सहिष्णुता भी भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। भारतीय संस्कृति की प्रवृत्ति विग्रह, विवाद और वैमनस्य की ओर न होकर, संधि, संवाद और समन्वय की ओर है। इसलिए यहाँ अनेक धर्मों, विश्वासों, संप्रदायों और भाषाओं का सहअस्तित्व है। भारतीय प्रतिभा अनेकत्व में एकत्व का संधान करती है। भारतीय संस्कृति सभी को अपने रंग में रंग लेती है। इन सबके मूल में है उसकी अक्षय सहिष्णुता। प्राचिन काल से हिंदु और मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की भावना विद्यमान है, जो समय-समय पर आँधी की तरह उभरकर आती है। हमारे महापुरुषों ने सदैव वैमनस्य की भावना को दूर करके भारत में एकता स्थापित करने एवं सुसंगठित होकर स्वातंत्र्य संग्राम करने के लिए पारस्परिक मेल-जोल पर अधिक बल दिया। पांडेय जी ने अपनी काव्य कृतियों में सांप्रदायिक तथा धार्मिक सहिष्णुता का प्रसार किया। कवि अपने महाकाव्य में लिखते हैं कि, -

“सब लोग सजग स्वधर्म में, स्वच्छंद कुल के कर्म में।

मंदिर न मस्जिद से लड़ें, गिरजा न आँखों में गड़ें॥” 11

इस तरह से पांडेय जी के काव्यकृतियों में भारतीय संस्कृति की एक विशेषता सहिष्णुता का सफल विवेचन हुआ है।

नैतिकता और मानव मूल्य :

भारतीय संस्कृति में नैतिकता का बड़ा मूल्य है। इस नैतिकता का पालन करने के लिए शिष्टाचार एवं लोकमर्यादा का पालन करना सर्वथा अपेक्षित है। समाज में सुख-शांति-स्थापित करने और मानव तथा मानव जाति के प्रति मंगल विधायक दृष्टीकोण रखने के कारण नैतिकता और मानवमूल्यों को बड़ा महत्व माना गया है। नैतिकता और उच्च मानवीय मूल्यों को समाहित करने के कारण ही 'धर्म' को सर्वोच्च जीवन मूल्य माना गया है। 'धर्म' ने पाप का भय दिखाकर एक ओर तो अनैतिक आचरणों पर अंकुश लगाने का कार्य किया है, तो दूसरी ओर 'पुण्य' का लोभ दिखाकर उच्च मानवमूल्यों को अपने जीवन का अंग बनाने के लिए असंख्य लोगों को हजारों वर्षों तक प्रोत्साहित किया है।

अद्भुत सौंदर्यमयी महारानी पद्मिनी की अभिलाषा रखने वाला कामातुर अलाउद्दीन खिलजी अंत में जौहर की ज्वाला का ढेर पाता है। उसकी अनैतिक कामपिपासा वृत्ति के कारण सभी रिश्तेदार उससे दूर हटे, आज भी जग उसपर थूकता है।

“ दिल्ली में था शोर, कर्म का, खिलजी ने फल पाया है ,
हिंदु-मुसलमान ही क्या, सब , थूक-थूक उसपर बोले,
परनारी को गया छेड़ने, धिक्, पापी सेना को ले ॥”¹²

इस तरह से पांडेय जी ने अपनी काव्यकृतियों में मानवी मूल्य और नैतिकता का विवेचन किया है।

निष्कर्ष :

इस तरह से कवि पांडेय जी ने अपने काव्य में स्वर्णिम अतीत के श्रेष्ठ पौराणिक-ऐतिहासिक स्थलों और चरित्रों द्वारा भारतीयों के मन में एक जाज्वल्यमान आदर्श को प्रस्तुत करके अपने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक अनुराग का परिचय दिया। उन्होंने स्वतंत्रता-पूर्व काल में भारतीय जनता को स्वाधीनता संग्राम के लिए उत्तेजित करने तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में स्वराज्य को सुराज्य में बदलने के लिए काव्यसर्जना की। उन्होंने काव्य में सांस्कृतिक तत्वों का सफल चित्रण हुआ है। इससे उन्हें सांस्कृतिक कवि भी कह सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. शामनारायण पांडेय - आधुनिक कवि-17 पृ.क्र. 12-13
2. शामनारायण पांडेय - जौहर, अग्निकण , पृ.क्र. 23
3. शामनारायण पांडेय - हल्दीघाटी, मंगलचरण , पृ.क्र. 02
4. शामनारायण पांडेय - आधुनिक कवि-17, पृ.क्र. 16
5. शामनारायण पांडेय - आरती पृ.क्र. 14
6. शामनारायण पांडेय - वसिष्ठ , पृ.क्र. 66
7. शामनारायण पांडेय - आधुनिक कवि-17, पृ.क्र. 22
8. शामनारायण पांडेय - परशुराम , पृ.क्र. 121
9. शामनारायण पांडेय - शिवाजी , पृ.क्र. 312
10. शामनारायण पांडेय - शिवाजी , पृ.क्र. 208
11. शामनारायण पांडेय - शिवाजी , पृ.क्र. 307

स्वतंत्रता पूर्व हिंदी काव्य में संवैधानिक मूल्य

डॉ.सचिन कदम

हिंदी विभाग,संगमनेर नगरपालिका कला ,
दा. ज.मालपाणी वाणिज्य ,
ब. ना .सारडा विज्ञान महाविद्यालय,
संगमनेर ,जि अहमदनगर (महाराष्ट्र)

सहयोगी प्रा.परमेश्वर माणिकराव वाकडे

डॉ.एस.एस.एम.पी.कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
अहमदपुर

युगों से मानव मूल्यों का मानव जीवन में महत्व रहा है। मूल्यों की दृष्टि से सबसे बड़ी क्रांति तब आई जब डॉक्टर बाबा साहब ने इन मूल्यों को संविधान में स्थान देकर उनकी प्रतिष्ठापना की। मनुष्य को मनुष्य के तौर पर जीने का अधिकार इन मूल्यों के कारण ही हमारे देश की नस्ल को मिला है। भारतीय संविधान में सभी वर्गों के हितों के मद्देनजर विस्तृत प्रावधानों का समावेश किया गया है, साथ ही सर्वोच्च न्यायालय की विभिन्न व्याख्याओं के माध्यम से भी बदलती परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अधिकारों को सम्मिलित किया गया। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के 70 वर्षों पश्चात् भी भारतीय संविधान अक्षुण्ण, जीवंत और क्रियाशील बना हुआ है। हमारे समाज की खूबसूरती का एक अहम पैमाना है विविधता। इसमें अलग-अलग समुदाय हैं, उनकी अपनी-अपनी संस्कृति है। उनकी अपनी-अपनी भाषाएं हैं। अपने-अपने त्यौहार और उत्सव हैं। कोई साकार को अपना आराध्य मानता है और कोई निराकार को। आदिवासी समाज प्रकृति को अपना आराध्य मानता है और प्राकृतिक जीवन जीता है। ऐसी स्थिति में अलग-अलग समुदायों को उनके खान-पान, रहन-सहन के तरीकों के साथ सहजता से स्वीकार करना, उनसे बराबरी और गरिमा का व्यवहार करना, उनसे भेदभाव न करना; यानी विविधता का सम्मान करते हुए बंधुता का व्यवहार करना एक अहम मूल्य है।

जहां तक साहित्य का सवाल है मूल्यों की परंपरा सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य तथा मध्य काल में कबीर आदि संत तथा आधुनिक युग में प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, नागार्जुन आदि अनगिनत रचनाकारों का साहित्य मूल्य निर्वाह के संदर्भ में असंदिग्ध है। प्राचीन काल से ही साहित्य की विधाओं में काव्य विधा में विविध कवियों ने जीवन मूल्यों को लेकर समय-समय पर लिखा है। सिद्ध कवियों ने जाति-पांति की प्रथा, ऊंच-नीच का भेद, बाह्याडंबर का विरोध किया है। वे निःसन्देह प्रगतिशील हैं। बाद में यह स्वर नाथों से होते हुए कबीर में और भी जोरदार ढंग से प्रतिबिंबित हुआ। सिद्धों में सभी जाति के लोग थे। कोई कारीगर था तो कोई खेतिहर- मछुआरा कोई तेल निकलता था तो कोई भांडे गढ़ता था। इस समय की सामंती व्यवस्था में खेती का काम शूद्रों के हाथ में आ गया था। हीनता की भावना कम हो गई थी। जाति-पांति की भीड़ भी एक प्रकार का वर्ग भी रही है उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों का भांति - भांति से शोषण करते थे। गोरखनाथ ने इसका विरोध किया। इस प्रकार से हिंदुओं- मुसलमानों के बीच के भेदभाव को दूर करने का सिलसिला इसी समय से शुरू हो गया। जैन साहित्य का आधार भी यही नीति मूल्य ही रहे हैं।

भक्तिकालीन कवियों ने मानव-मूल्यों की स्थापना के लिए कटिबद्ध होकर काव्य-प्रणयन किया। इन कवियों में मुख्य रूप से कबीर, दादू, नानक, रविदास, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रसखान का स्थान

प्रमुख हैं। ये कवि तत्कालीन जनता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं तथा सभी ने अपने काव्य में मानवीय गुणों का समावेश किया है। विचारधारा में सभी अलग-अलग हैं पर उनके काव्य में समतापरक मानवीय जागरूकता और जीवन की अशेष संभावनाएं दिखाई पड़ती हैं। बच्चन सिंह कहते हैं- “भक्ति काव्य का मूल स्वर उस सामान्य मनुष्य का पक्षधर था जो ब्राह्मणवाद के सरमायादारों और संरक्षक सामंतों द्वारा पीड़ित और इस्लाम के कट्टर अनुयायियों मुल्ला-मौलवीयों द्वारा अपमानित और शोषित था।” रामानुजाचार्य ने स्त्रियों और शूद्रों के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। रामानंद का कबीर को शिष्य बनाना मामूली साहस का काम नहीं था। समूचे भक्ति काल में कबीर की तरह जाती पाती विरोध, मूर्तिभंजक तेवर किसी का न था। उनके काव्य में मानवतावादी मूल्य दिखाई पड़ते हैं। वह गरीब शोषित अपमानित निम्न वर्ग की ओर से खड़े हो गए और उच्च वर्ग और वर्ण की सामंती शक्तियों पर कसकर चोटें कीं। निम्न वर्ग में आत्म सम्मान का भाव जागा। उन्होंने ऐसा समाज चाहा जहां कोई भेदभाव न हो। कबीर ने डंके की चोट पर कहा है- ‘तू बाम्हन में काशी का जुलाहा’ वे दुःखी मानव की पीड़ा को स्वयं भोग रहे थे -

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोए ।

दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोए ॥

अबुलफजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि “कबीर ने समाज के सड़े-गले रीति रिवाजों को नकार दिया। कबीर ने समाज सुधार के लिए कोड़े खाए तो व्यंग्य तथा हँसी-ठिठौली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की।”

संत तुलसीदास जी का ‘रामचरितमानस’ मानवीय मूल्यों की धरोहर है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम ऐसा समाज चाहा जो आदर्शवत हो। धर्म में अराजकता फैल चुकी थी वह लोगों को कल्याण की जगह लोगों में वैमनस्व फैला रहा था। ऐसे समय ‘मानवता’, ‘प्रेम’, ‘समन्वय’ के उच्च आदर्शों को लेकर भक्ति आन्दोलन आगे बढ़ा। ‘मानुष प्रेम भयउ बैकुण्ठी। नाहिं ते काह छार एक मूँठी’ कह कर मानवीय प्रेम को केन्द्र में स्थापित किया। उन्होंने मानवीय पीड़ा से खुद को एकाकार किया और मानवीय मूल्यों के एक उच्च धरातल को तैयार किया, एक यूटोपिया का निर्माण किया ‘रामराज्य’ का; जहाँ-

‘अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।
सब निर्दम्भ धम्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।’

उनकी भक्ति का घनिष्ठ संबंध मानवीय सहानुभूति और करुणा से है। इसीलिए वे उसके द्वारा उच्चकोटि के मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हैं।

भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा-

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,

जिससे जमा हजम कर जाए।

मैथिलीशरण गुप्त जी मानवतावाद के पोषक और समर्थक थे. इनकी भगवत भावना महान थी. इनके काव्य में निर्गुण नारायण ही पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए भूतल पर आते हैं.

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया.
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को स्वर्ग बनाने आया।

मानवतावाद छायावादी कवियों की उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। इस काव्य पर रामकृष्ण परमहंस,विवेकानंद,गांधी,टैगोर तथा अरविंद के दर्शन का भी काफी प्रभाव रहा। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के कारण छायावादी कवि को साहित्य के समान धर्म,दर्शन आदि में भी रुढ़ियों एवं मिथ्या परम्पराएं मान्य नहीं हैं। रविंद्रनाथ ठाकुर,जो बंगला साहित्य में मानवतावाद का उद्घोष पहले ही कर चुके थे, का प्रभाव छायावादी कवियों पर भी रहा। छायावादी कवि सारे संसार से प्रेम करता है। उसके लिए भारतीय और अभारतीय में कोई भेद नहीं क्योंकि सर्वत्र एक ही आत्मा व्याप्त है। विश्वमानवता की प्रतिष्ठा उसका आदर्श है। अनेक स्थलों पर कवि राष्ट्रीयता की भावना से ऊपर उठकर मानव कल्याण की चर्चा करता हुआ दिखाई देता है। प्रसाद जी के काव्य में शास्वत मानवीय भावों और मानवतावाद को प्रचुर बल मिला है। कामायनी में कवि ने मनुष्य के प्रतीकों के माध्यम से मानवता के विकास की कहानी कही है। मनु श्रद्धा की सहायता से कैलाश पर समरसतावाद की स्थापना करते हैं। इड़ा जब मानव एवं अन्यो के साथ मनु से मिलने कैलाश पर आती है वह कहती है: हम एक कुटुम्ब बनाकर यात्रा करने हैं आये। मनु जबाब देता है-

शापित न यहाँ कोई तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है।

यह है मनु का समरसतावाद। मनु कहते हैं- 'देखो कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया'। मनु का समरसतावाद समन्वयवाद है। यह मानवता की उच्च भूमि है।

निराला के काव्य में सामाजिक परिवेश का वर्णन अत्यंत विशद है। उन्हें सामाजिक सरोकारों का जनकवि भी कह सकते हैं। निराला के काव्य में उनका सामाजिक सरोकार एक विद्रोही कवि के रूप में देखने को मिलता है जिसका स्वर प्रतिवादात्मक है। छायावादी काव्य में निराला ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने साधारण मनुष्य को बहुत करीब से देखा और अपनी रचनाओं द्वारा तत्कालीन विदेशी सत्ता के खिलाफ विद्रोह करने को भी प्रोत्साहित किया। निराला का विद्रोही व्यक्तित्व सृजनात्मक था अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रों की गलित मान्यताओं, रूढ़िगत संस्कारों एवं मूल धारणाओं के प्रति उन्होंने विद्रोह किया। उनकी कई कविताएँ यथा- 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा' आदि इसी लोक संवेदना से परिपूर्ण हैं। एक कविता में वे समाज को संबोधित करते हुए कहते हैं -

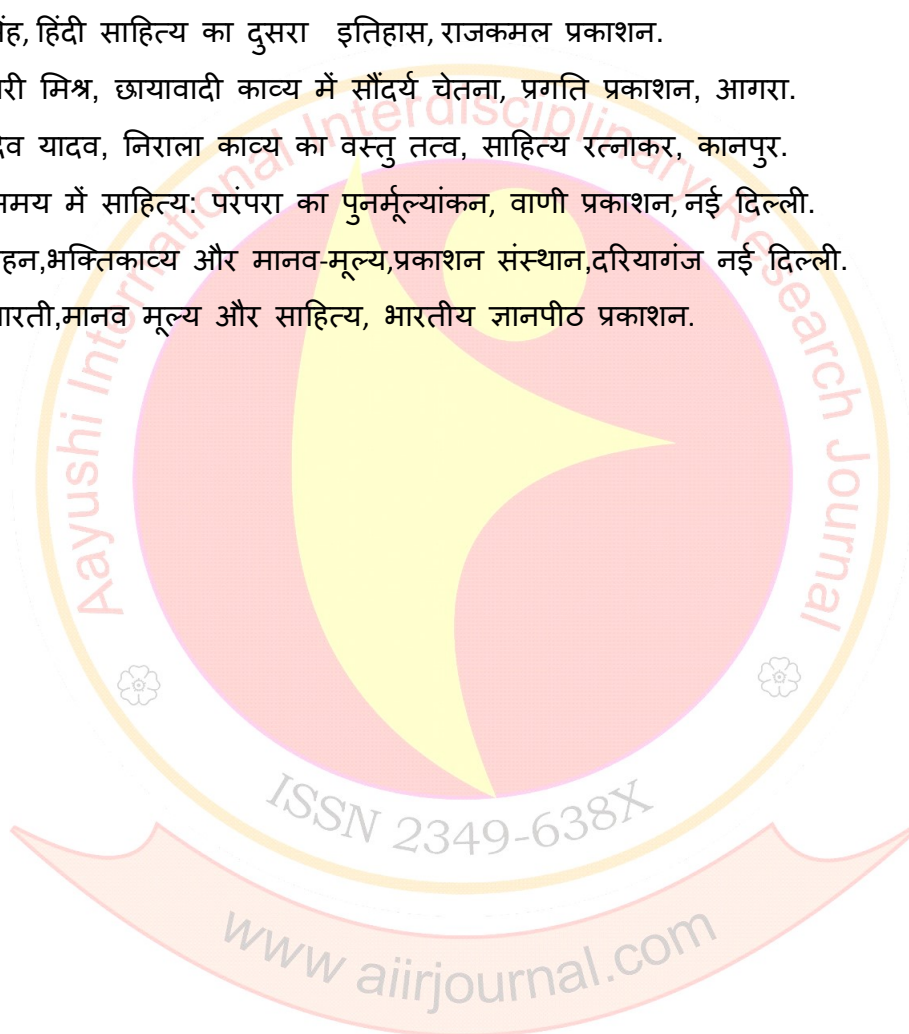
'छोड़ दो जीवन यों न मलो।
यह भी तुम जैसा ही सुन्दर।
तुम भी अपनी ही डालों पर फूलो और फलों।'

महादेवी ने स्वतन्त्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनका काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे।

इस प्रकार से संवैधानिक मूल्यों की बात हम भले ही स्वतन्त्रता के बाद के साहित्य में खोजते हैं बल्कि इन मूल्यों का अन्तर्भाव शुरू से ही हिन्दी साहित्य में भारतीय दर्शन एवं मूल्यों के रूप में होता आया है। जो मनुष्य के स्वातंत्र्य से जुड़ा है, समानता, बंधुता, न्याय पर टिका हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ-

- १) डॉ.बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राजकमल प्रकाशन.
- २) डॉ.कृष्ण मुरारी मिश्र, छायावादी काव्य में सौंदर्य चेतना, प्रगति प्रकाशन, आगरा.
- ३) डॉ.भगवान देव यादव, निराला काव्य का वस्तु तत्व, साहित्य रत्नाकर, कानपुर.
- ४) शंभुनाथ, दुस्समय में साहित्य: परंपरा का पुनर्मूल्यांकन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
- ५) डॉ.विरेन्द्र मोहन, भक्तिकाव्य और मानव-मूल्य, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज नई दिल्ली.
- ६) डॉ.धर्मविर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन.



संवैधानिक मूल्यों से ओतप्रोत : भुवनेश्वर उपाध्याय की कविताएं

प्रो. महेबूब मंगरूले

हिंदी विभाग

आजाद महाविद्यालय, औसा,

जिला- लातूर (महाराष्ट्र)

आज का समय मानवीय और संवैधानिक मूल्यों को अपने व्यवहार के केंद्र में लाने का है। कितनी विचित्र बात है कि जो संविधान देश को संचालित करने के लिए मूल्य आधारित व्यवस्था बनाता है, देश का समाज उसी संविधान में दर्ज मूल्यों को हर कदम पर चुनौती देता हुआ दिखाई देता है। सरकार किस प्रकार से काम करेगी?, चुनाव कैसे होगा?, न्यायाधीश या चुनाव आयुक्त की नियुक्ति कैसे होगी? इन सब प्रावधानों का तो थोड़ा बहुत ख्याल रखा भी जाता है; किन्तु व्यवस्था और समाज के स्वभाव में, उनकी कार्यशैली में न्याय, बंधुत्व, समानता, सहभागिता, स्वतंत्रता और करुणा के मूल्य कैसे प्रवाहित हों, इसके जतन आजाद भारत में हुए हों, ऐसा कम ही दिखाई देता है। जब सरकार यह मान ले कि एक शहर की सुन्दरता के लिए शहर के सभी बेघरबार बुजुर्गों को शहर से दूर सुनसान इलाके में छोड़ दिया जाना चाहिए, तब दिल तो यही कहता है कि इस व्यवस्था में मानवीय मूल्यों का अंकुरण भी नहीं हो पाया है। जब एक सम्प्रदाय यह मानने लगे कि दूसरे सम्प्रदाय और उसके मानने वालों को बस्ती या प्रदेश में रहने नहीं दिया जाना चाहिए, तब यह अहसास पैदा होता है कि सम्प्रदाय में भी बुनियादी मानवीय मूल्य नहीं हैं।

हमारे समाज की खूबसूरती का एक अहम पैमाना है विविधता। इसमें अलग-अलग समुदाय हैं, उनकी अपनी-अपनी संस्कृति है। उनकी अपनी-अपनी भाषाएं हैं। अपने-अपने त्यौहार और उत्सव हैं। कोई साकार को अपना आराध्य मानता है और कोई निराकार को आराध्य मानकर अपना जीवन यापन करता है। आदिवासी समाज प्रकृति को अपना आराध्य मानता है और प्राकृतिक जीवन जीता है। वर्तमान समय में यह प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है कि आर्थिक विकास का मानव समाज में मौजूद विविधता के साथ क्या रिश्ता है? हमारी आर्थिक नीतियां मुनाफे के लिए विविधता के ठीक विपरीत व्यवहार करना सिखाती हैं।

आधुनिक साहित्यकारों ने अपने साहित्य में संवैधानिक मूल्यों से ओतप्रोत साहित्य सर्जना की है। वैसे देखा जाए तो साहित्य का मूल आधार यही है कि समाज में समता, समानता एवं बंधुत्व स्थापित हो। किंतु ऊपर वर्णित प्रस्तावना के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि हमारा समाज ही संवैधानिक मूल्यों को अपने पैरों तले रौंद रहा है, तो यह गलत नहीं होगा। इसीलिए साहित्यकारों ने इस आधार पर अपनी कलम चलाई। लक्ष्मी नारायण लाल ने अपने नाटकों के माध्यम से संवैधानिक मूल्यों पर अपनी कलम चलाई है। शंकर शेष भी 'पोस्टर' के माध्यम से वर्ग विहीन समाज की मांग करते हैं, कवि निराला भी 'वह तोड़ती पत्थर' के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था की धज्जियां उड़ाते हैं और समता, समानता, बंधुत्व की बात प्रखरता से करते हैं। ठीक इसी प्रकार से अधुनातन कवि, लेखक भुवनेश्वर उपाध्याय ने भी अपने साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की मांग बड़ी प्रखरता से की है। कवि बेचैन है अपने इर्द-गिर्द की समाज व्यवस्था को देखकर। कवि समाज का हितैषी है। इसीलिए उसे समाज में दंगा, फसाद, दहशतगर्दी लोग एवं मनमुटाव पसंद नहीं है। समाज में वह केवल भाईचारा चाहता है। अपनी कविताओं के माध्यम से कवि ने समाज की सच्चाई को लोगों के सामने प्रस्तुत की है। आज का

जनजीवन आतंकी घटनाओं से भरा हुआ है। आम आदमी चैन से जीवन यापन में नहीं कर पा रहा। हर दिन मारपीट, हाथापाई, बम विस्फोट जैसी घटनाएं घटित होती हैं। उक्त घटनाओं में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि, जिसका कोई दोष नहीं है, वही मारा जाता है। इसलिए कवि को ऐसी जमीन चाहिए जो भाईचारे से परिपूर्ण हो। 'संघर्ष के बाद' नामक कविता में कवि ने संघर्ष के उपरांत की स्थिति का वर्णन किया है। संघर्ष के उपरांत किस प्रकार से लाशें पड़ी थी, खून से लथपथ हर पथ की अवस्था इस प्रकार की थी। यह देख कवि किसी का विरोध नहीं कर रहा बस केवल याचना कर रहा है। और उसकी याचना केवल इतनी ही है कि समाज में भाईचारा बना रहे-

“रह रह कर उठती सिसकियां
किसी अनहोनी का एहसास
लाशों की पथराई आंखें
दे रही थीं, उलाहना
भाईचारे को, अपनत्व को।”¹

कवि को समाज में समता, समानता एवं बंधुत्व चाहिए। इसीलिए उसकी दृष्टि आज के परिवेश पर है। आज का परिवेश इतना बिगड़ चुका है कि लगता है मानव समाज ने संवैधानिक मूल्य तो दूर बल्कि मानवीय मूल्यों को भी दरकिनार कर दिया है। आधुनिक जीवन इतना जटिल हो चुका है कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के खून का प्यासा बन गया है। इसके पीछे अनेक कारण हो सकते हैं, किंतु एक कारण स्वार्थ भी है। फिर उसके पश्चात धर्म, जाति, भाषा आदि अनेक कारण हो सकते हैं। कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से आधुनिक समाज का यथार्थ पाठकों के सम्मुख रखा है। संघर्ष के उपरांत या बम धमाके के उपरांत स्थितियां कितनी विदारक बनती हैं, इसका चित्रण कर कवि ने प्रताड़ित लोगों को आधार बनाकर भाईचारे की और अपनत्व की मांग की है-

“धरती से आसमां तक
केवल खुशबूओं का पहरा हो
आदमी का आदमी से
जुड़ाव गहरा हो
स्वयं ही मिट जाएं
आतंकवाद के साए
और बादल
महज बहार के लिए छाएं
समय के साथ,
समय के लिए
गढ़ दे जो
आदमीयत से भरी दुनिया
सभी के लिए।”²

समाज में बढ़ता और फैलता विद्वेष और इसी विद्वेष के कारण होते दंगे, बम धमाके आदि से आधुनिक जनजीवन त्रस्त है। व्यक्ति दो जून की रोटी कमाने के लिए घर से बाहर निकलता है किंतु उक्त प्रकार की स्थितियां उसे अंदर से तोड़

देती हैं। इसीलिए कभी यहां पर समय के माध्यम से समूचे समाज से मांग करता है कि इस प्रकार की द्वेषात्मक परिस्थितियां समाप्त होकर आदमी का आदमी से गहरा जुड़ाव होना चाहिए, अर्थात् प्रेम एवं समानता के बीज प्रत्येक व्यक्ति में बोए जाने चाहिए

दो समय की रोटी के लिए कितनी यातनाएं मजदूर और गरीब वर्ग को झेलनी पड़ती हैं, इसका अनुमान हम नहीं कर सकते। कचरा बीनने वाले लोगों को समाज किस प्रकार की हिकारत की नजरों से देखता है। उसका इस हिकारत भरी दृष्टि से देखना कवि को खटकता नहीं बल्कि खटकता है उसका संघर्ष क्योंकि वह उपेक्षित है। सत्ता और संपत्ति का यदि समान बटवारा होगा तो संभवतः इस प्रकार की स्थितियां नहीं बनेगी-

“थैला टांगे, एक लड़का
चुनता है उपयोगी वस्तुएं
ढेर से कचरे के
सृजन के लिए, पुनः
नित्य कर्म है यही
या है मजबूरी
जीवन यापन के लिए
निकलता है घर से हर रोज
व्याकुल होकर भूख से
होता है प्रेरित
जाने के लिए गंदगी में
समाज से उपेक्षित, शोषित
रोटी के लिए दो वक्त की
चुनता है वह,
उपयोगी वस्तुएं
समाज द्वारा फेंकी गई गंदगी से।”³

स्पष्ट है कि आज के आधुनिक समाज में हम कई ऐसे लड़के देखते हैं जो कचरा बीन कर अपना तथा अपने परिवार का गुजर बसर करते हैं। कवि भुवनेश्वर उपाध्याय इस प्रकार की स्थितियों और घटनाओं को देखकर स्तब्ध हो जाते हैं। किस प्रकार की घोर स्थितियां बनी हैं। समाज ने फेंकी हुई गंदगी से अपने लिए जो उपयोगी है उसको चुना जा रहा है, और उसी के माध्यम से अपनी गुजर-बसर की जा रही है। किंतु कचरा फेंकने वाले उन परिवारों के बच्चों की ओर भी हमारी दृष्टि जानी चाहिए। क्योंकि उनके बच्चे एसी कमरों में रहते हैं। गाड़ियों में यात्रा करते हैं। बड़े-बड़े होटलों में अधिक पैसा देकर भोजन करते हैं किंतु उसी आयु के बच्चे इनके द्वारा फेंके गए कचरे के माध्यम से अपने परिवार का और अपना पेट पालते हैं। इस प्रकार से कवि ने सामाजिक समता और समानता की आवश्यकता को महसूस किया है। और कवि का यह मानना है कि समता, समानता एवं बंधुत्व की भावना सामाजिक मूल्यों से ही बनती है। इसलिए परिवारों में मूल्यों का बिजारोपण होना आवश्यक है, इसी संदर्भ में सचिन कुमार जैन कहते हैं-“सामाजिक चरित्र को गढ़ने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं मूल्य; मसलन समाज में निर्णय कैसे लिए जायेंगे - कोई एक व्यक्ति या परिवार निर्णय लेगा या निर्णय लेने की प्रक्रिया में सबकी भूमिका और सहभागिता होगी। यानी सहभागिता एक मूल्य है। कोई लोगों और कई परिवारों से मिलकर एक समुदाय बनता है। लोगों और परिवारों के बीच आपसी व्यवहार किस तरह का

होगा, यह भी तो “मूल्यों” से ही तय होता है। यानी क्या हम मानवीय व्यवहार करेंगे या नहीं! हो सकता है कि कुछ परिवार विपन्न होंगे और उनके पास संसाधन नहीं होंगे. क्या ऐसे में वे अपने जीवन में गरिमामय व्यवहार और बुनियादी सेवाओं को हासिल करने या बुनियादी जरूरतों को पूर्ण करने से वंचित रहेंगे या फिर शासन और समाज मिलकर उनकी देखरेख करेंगे; यही है इंसानियत का मूल्य।”⁴ स्पष्ट है कि विपन्नता मनुष्य के जीवन पर उसके चरित्र पर प्रभाव डालती है। यदि घर का कोई सदस्य बीमार है, और दवाइयों के लिए परिवार के पास पैसा ना हो। ऐसी स्थिति में बाहर किसी से उधार के रूप में पैसा मांगने की साख भी उनके पास नहीं होती। फिर हम उनसे इस स्थिति में बेहतर चरित्र की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? बेहतर चरित्र के लिए परिवार की आय भी अच्छी होनी चाहिए-

“यही होता है आए दिन

सुबह होती है

आस बंधती है

आज भरपेट खाना मिलेगा

और उन्हें नहीं सोना पड़ेगा

भूखे पेट।”⁵

विषमता कवि को मान्य नहीं है। मजदूरों, किसानों एवं विकास की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले उस समाज के प्रति कवि के मन में संवेदना है। जिसका जीवन केवल और केवल आशाओं पर निर्भर होता है। खेत खलिहान में लहराती फसल को देखकर किसान का मन आनंदित हो जाता है किंतु दूसरे ही पल निसर्ग चक्र में हंसकर उसकी फसल तबाह हो जाती है। किसान का मन कराहा उठता है। आखिर कब तक यह उसी तबके के साथ चलता रहेगा, जो पूरे समाज को अपने पसीने से पालता है। खेतों में किसान ही मेहनत करता है आना जरूर आता है और पूरा समाज उन पर निर्भर होता है। किंतु यही वह वर्ग है जो सबको भोजन देने के पश्चात भी भूखा है क्योंकि उसके श्रम के मूल्य हो ना तो समाज जानता है और ना ही सरकार जानने की कोशिश कर रही है। और इसी कारण व हाशिए के बाहर जा रहा है। इस प्रकार की खीझ कवि ने अपनी कविताओं में साधारण जन के प्रति व्यक्त की है। कवि को लिंगभेद भी मान्य नहीं। नारी पुरुष समानता के पक्षधर हैं। समाज में यदि नारी का कोई दुश्मन है तो वह नारी ही है। नारी को यदि अपना विकास करना है तो सबसे पहले उसकी इस दकियानूसी मानसिकता को बदलना पड़ेगा। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि कवि भुवनेश्वर पाल है की कविताएं सामाजिक मूल्यों से भरी पड़ी है और साथ ही साथ संवैधानिक मूल्यों से भी ओतप्रोत हैं। कवि की दृष्टि में जिस प्रकार उन्होंने समाज की कल्पना की है यदि उस प्रकार का समाज बन जाएगा तो निश्चित ही संविधान में जिसकी कल्पना की गई है वह साकार होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1) समझ के दायरे में भुवनेश्वर उपाध्याय पृ. क्र. 66
- 2) दायरे में सिमटती धूप भुवनेश्वर उपाध्याय पृ. क्र. 118 -119
- 3) समझ के दायरे में भुवनेश्वर उपाध्याय पृ. क्र. 66
- 4) हिंदी न्यूज 18. ब्लॉग-फरवरी 2021 सचिन कुमार जैन
- 5) समझ के दायरे में भुवनेश्वर उपाध्याय पृ. क्र. 67

समकालीन हिंदी ग़ज़ल और संवैधानिक मूल्य
(विनय मिश्र का ग़ज़ल संग्रह 'सच और है' के विशेष संदर्भ में)

प्रा. डॉ. जयराम श्री. सूर्यवंशी

हिंदी विभाग

श्री संत गाडगे महाराज महाविद्यालय, लांहा जि.नांदेड.

समकालीन हिंदी ग़ज़ल को समृद्ध करने में अपनी विशेष भूमिका निभानेवाले ग़ज़लकारों में विनय मिश्र का स्थान विशेष रहा है। उन्होंने अपने रचनात्मक जीवन में 'जहीर कुरेशी महत्व और मूल्यांकन', 'बनारस की हिंदी ग़ज़लें' इन ग़ज़ल विषयक महत्वपूर्ण संपादित ग्रंथों के अलावा 'सच और है' तथा 'तेरा होना तलाशु' यह दो मौलिक ग़ज़ल संग्रह भी लिखे हैं। विनय मिश्र का समकालीन हिंदी ग़ज़ल में महत्व इस दृष्टि से भी है कि वरिष्ठ आलोचक जीवन सिंह ने अपनी रचना 'दसखत' में तथा नचिकेता जी ने 'अष्टछाप' रचना में हिंदी के चंद प्रतिनिधि ग़ज़लकारों में उन्हें विशेष स्थान दिया है।

सन् 2015 में मेधा बुक्स दिल्ली से प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'सच और है' में कुल 102 ग़ज़लें हैं जो भारतीय समाज, संस्कृति के साथ ही संवैधानिक मूल्यों के पतन पर सूक्ष्मता से चर्चा करती हैं। समकालीन साम्राज्यवादी अपसंस्कृति के दौर में संवैधानिक आदर्श मूल्यों स्वातंत्र्य, समानता, भाईचारा, न्याय का पतन बड़ी तेजी से हो रहा है जिसपर प्रस्तुत ग़ज़ल में विस्तृत चर्चा मिलती है। ग़ज़ल संकलन की भूमिका लिखनेवाले वरिष्ठ ग़ज़ल आलोचक नचिकेता जी ग़ज़ल संग्रह के उद्देश्यों पर चर्चा करते हुए कहते हैं, 'विनय मिश्र अपनी ग़ज़लों के जरिए आज के बहुत ही अमानवीय, नृशंस और असंवेदनशील समय, समाज और व्यवस्था में उम्मीद की गर्माहट बचाकर रखना चाहते हैं, क्योंकि परिस्थितियां सारी मानवीय उम्मीदों का गला घोट देने के लिए तरह-तरह के प्रपंच कर रही हैं।'1 नचिकेता जी की उपरोक्त मान्यता के अनुसार प्रस्तुत ग़ज़ल संकलन में परिस्थितियों की मार से दबे-कुचले मनुष्य समुदाय को इस भयावहता से निकालने के लिए गहन चिंतन किया गया है। क्योंकि स्वयं ग़ज़लकार विनय मिश्र की मान्यता यह है कि, 'इस विडंबना, भेद और विषमता भरे दौर से गुजर रहे आवाम की समस्या की ओर ध्यान देना हमारा दायित्व है और इस दायित्व को मैं अपनी ग़ज़लों के माध्यम से पूरा कर रहा हूँ।'2 पिछले कुछ दिनों से इस देश की समाजव्यवस्था में बहुत बड़ा बदलाव आया है परिणामस्वरूप संवैधानिक मूल्यों का निर्वहन करने की कसम खानेवाले कथित नेतागण जनता के उत्थाण का काम करने की अपेक्षा बेमतलब की बातों पर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं। धर्म और सियासत जो एक दूसरे से दूर होने चाहिए, किंतु यहां धर्म और सियासत की सांठगांठ करके अपनी कटु नीतियां पूरी की जा रही हैं। ऐसे हालात में निश्चित ही आम आदमी, उसका स्वास्थ्य, विकास, रोजगार, महिला उत्थान, दलित-आदिवासियों की समस्याएं इन विषयों को कोसों दूर रखा जा रहा है। इसलिए ग़ज़लकार विनय मिश्र अपनी एक ग़ज़ल में कहते हैं,

ढोल सियासत पूछ रही है, जो दिन रात विकास का,

पेट भर का झूठ यही है, भूखों का सच और है।

यही सियासतदां मंचों से तो बड़ी खूबी से शांति, अमन की बातें करते हैं किंतु इनके ही नुमाइंदे सांप्रदायिकता के आधार पर, प्रादेशिक-भाषाई, अस्मिता के बहाने एक दूसरे का कत्ल करने पर उतारू हो रहे हैं। इस सच्चाई को विनय जी सांकेतिक भाषा में व्यक्त करते हैं,

मंच के ऊपर कबूतर उड़ रहे,
और नीचे लाशों का अंबार है।

बाजारवादी ताकतों ने आम आदमी के जीवन पर कब्जा किए कई साल हुए हैं। दिन-ब-दिन बाजारवादी अपसंस्कृति हमारी भावनाओं संवेदनाओं के साथ खेल रही है। बाजारवादी सांचे के अनुसार इंसान महज एक वस्तु है जिस की कुछ कीमत है वह चुकाई तो उसका सब कुछ नियंत्रण में रखा जा सकता है। यह स्थिति बहुत खतरनाक है। बाजारवादी ताकतें इतनी खूबी से हमारी संवेदना पर कब्जा कर रही है कि हमें पता भी नहीं चल रहा है। गज़लकार विनय मिश्र समग्र गज़ल संग्रह में जगह-जगह बाजारवादी अपसंस्कृति का विरोध करके मानवता की बात करते हैं इस संदर्भ में एक गज़ल देखिए-

हमारा काम है बाजार में भी आदमी गढ़ना,
तुम्हारा काम घर आंगण को भी बाजार करना है।

एक वक्त था राजनीति साधन और समाज सुधार साध्य था किंतु आज हालात ऐसे हो गए हैं कि राजनीति ही साधन बन गई है और राजनीति ही साध्य। सामाजिक कार्य तो केवल बहकावा है। सभी कथित नेताओं का मुख्य उद्देश्य राजनीति में अपनी धाक जमाना उसके बलबूते अपने गलत काम निपटा लेना और भ्रष्टाचार के जरिए मालामाल हो कर लोगों को लूटना। ऐसी कुटिल राजनीति की राह सामान्य आदमी के बस की बात नहीं है। वह इस राह पर दो-चार कदम चल कर ही थक जाता है, या किसी झूठे मुकदमें में फंसाकर इस राह से बाहर फेंक दिया जाता है। आम आदमी के लिए राजनीति बहुत दूर की कौड़ी है। वहां सफल होना है तो तुम्हारे पास जाति, वंश या संपत्ति का कार्ड होना चाहिए। इसलिए गज़लकार आम आदमी को सचेत करते हुए कहते हैं,

बहुत गहरी सुरंगें हैं सियासत में सम्हल जाओ,
कदम दा-चार पड़ते ही न पाओगे निशानी भी।

ऐसी कुटिल राजनीति में सत्ता के लिए स्वार्थ के लिए यह कथित नेता कुछ भी करने के लिए तैयार है। कल तक जो दुश्मन थे वे आज गले मिल रहे हैं। कल तक जो संविधान विरोधी थे वह आज संविधान के रक्षक बनने का ढोंग रच रहे हैं। इसलिए शायर कहते हैं,

ये सियासत का करिश्मा है हमारे दौर में,
तख्त पर बैठा हुआ विश्वास गद्दारी के साथ।

आज सोशल मीडिया ने हमारे रोजमर्रा के जीवन को काफी प्रभावित किया है। बिना व्हाट्सएप, फेसबुक देखें हमारे दिन की शुरुआत नहीं हो रही है। इस सोशल मीडिया से सच्चाई की अपेक्षा आफवाओं का बड़ी मात्रा में प्रचार-प्रसार हो रहा है परिणामस्वरूप बेगुनाहों को गुनहगार कहा जा रहा है। पिछले कई दिनों से इस प्रकार की कई समस्याएं हमने देखी हैं। इस गंभीर समस्या का मुख्य कारण हमारी आफवाओं को फैलाने की प्रवृत्ति है। इस गंभीर समस्या की ओर ध्यान देते हुए विनय मिश्र जी आफवाओं को बम की उपमा देते हैं, जो कुछ पलों में ही हजारों की जिंदगियां तबाह कर सकती है। गज़लकार के शब्दों में देखिए-

अफवाहों के बम हैं जिंदा,
बातें भोली-भाली गायब।

समकालीन दौर में भिन्न-भिन्न आपदाओं में फंसे आम आदमी की स्थिति बहुत भयावह बन चुकी है उसे हर स्तर पर, हर तरीके से, हर दिन समझौता करना पड़ रहा है। अपना विचार, वैचारिक भूमिका यह बातें खूंटी पर टांग कर उसे व्यवस्था से उपजी विडंबना का शिकार होकर झूठे बदमाशों की हां में हां मिलाना पड़ रहा है। उसकी लाचारी, मजबूरी,

विवशता दिन-ब-दिन बढ़ रही है। गज़लकार दुष्यंत कुमार ने भी आम आदमी की लाचारी को रेखांकित किया था। विनय मिश्र भी परिस्थितियों का शिकार हुए आम आदमी की विवशता को रेखांकित करते हुए कहते हैं,

अपने घर में ही किराएदार हूँ,
सोचिए मैं किस कदर लाचार हूँ।

आज साहित्य की उपादेयता पर चर्चा चल रही है, इस चर्चा में कई लोग साहित्य की आरंभिक नकारात्मक दृष्टि से देख कर उसकी उपयोगिता पर सवाल खड़े कर रहे हैं। किंतु इस संदर्भ में गज़लकार विनय मिश्र बड़े सकारात्मक हैं। उनकी दृष्टि से साहित्य समाज परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। यह बात उन्होंने गज़ल संकलन की भूमिका में भी लिखी है। साहित्य के माध्यम से होनेवाले परिवर्तन पर उनको विश्वास है और सच्चाई भी यही है। आज तक जितनी भी सामाजिक, राजनीतिक क्रांतियां हुई हैं उसमें साहित्य की बड़ी भूमिका रही है। आपातकाल के भयावह इतिहास को दुष्यंत कुमार के 'साए में धूप' इस गज़ल संग्रह में अच्छी तरह से पढ़ा जा सकता है। शायर विनय मिश्र की गज़लों की इस ताकत को रेखांकित करते हैं साथ ही समकालीन कवियों को हिदायत देते हुए कहते हैं।

कविताएं भी लड़ सकती हैं दुनिया की चालों से,
ये कवि पर है अब वह कैसा किरदार निभाते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि विनय मिश्र का प्रस्तुत गज़ल संकलन समसामयिक जीवन संघर्षों के साथ ही संवैधानिक मूल्यों के पतन को भी बड़ी सूक्ष्मता से रेखांकित करता है। प्रस्तुत गज़ल संग्रह पढ़ते समय कहीं पर भी ऐसा नहीं लगता कि हम कोई किताब पढ़ रहे हैं बल्कि यह एहसास होता है कि हम संवेदना के साथ समाज में सफर कर रहे हैं। खुद शायर मानते हैं उनकी दृष्टि से यह दिल की हलचलें हैं। गज़लकार के शब्दों में-

दिल की हर हलचल को,
मैंने इन गज़लों में आम किया है।

संदर्भ सूची:

- 1) नचिकेता, सच आरंभ है भूमिका से
- 2) विनय मिश्र, सच आरंभ है भूमिका से

सामाजिक न्याय की धरोहर निर्मला पुतुल की कविता

डॉ. मनोहर भंडारे

हिंदी विभाग,

श्री हावगीस्वामी महाविद्यालय, उदगीर

जिला लातूर

आदिवासी साहित्य में निर्मला पुतुल का विशिष्ट स्थान है क्योंकि वह अपनी जमीन से जुड़ी संधालसमूह की प्रतिबद्ध लेखिका है. उन्होंने अपनी कविता से आदिवासी समाज की जमीनी हकीकत से केवल परिचय नहीं कराया बल्कि अपने समाज के कई प्रश्न भी उपस्थित किए हैं .उन्होंने अपने समाज में अस्मिता का एहसास निर्माण किया है .वह जानती है कि वैश्वीकरण से आदिवासी समाज पर कैसा नकारात्मक परिणाम हुआ है. 14जुलाई,1991 को भारत ने मुक्त अर्थव्यवस्था को स्वीकारा,जिससे अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में स्थापित हुई . भारत का जीडीपी 1991 से लेकर 2008 तक दस तक गया लेकिन वह केवल शहरी व मध्यवर्गीय केंद्रित भौतिक विकास रहा है.किंतु इन्हीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदिवासी समाज को सबसे अधिक ध्वस्त किया है.वह अपने जमीन से मुक्त गया .जिस आदिवासी की दिनचर्या जंगल पर निर्भर थी वह जंगल कोयला खदान, बाँध परियोजना ,बिजली निर्माण से विनाश के कगार पर है,जिससे पर्यावरण का संतुलन बिगड़ा.नदियाँ सुख गई हैं.वहाँ अब कोका कोला मिलेगा लेकिन शुद्ध जल नहीं . लेकिन आज

आदिवासी रोजी- रोटी के लिए गाँव छोड़कर बिहार, पश्चिम बंगाल में ईट भट्टी,पंजाब में खेती करने,असम में चाय बागान में मजदूरी,दिल्ली -नोयडा में बर्तनमांजने का कार्य अत्यल्प दर पर करने लगे हैं. वहाँ उनका आर्थिक, मानसिक और शारीरिक शोषण बड़ी मात्रा में हो रहा है ,जिसका बेबाक चित्रण निर्मला पुतुल की कविता में मिलता है.

हम भारत की प्राचीन सभ्यता आदिवासी समाज में ढूँढते हैं किंतु इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदिवासी संपदा को विपदा में तब्दील कर दिया . जमीन से उखड़े आदिवासी समाज का शहरीवासियों ने बड़ी मात्रा में शोषण किया है जिस ओर निर्मला पुतुल ने ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि शहरी स्वयं को सभ्य और पढ़े-लिखे समझते हैं लेकिन उनकी लपलपाती जिह्वा की शिकार हुई आदिवासी स्त्री की दर्दनाक कहानी जहाँ एक ओर चित्रित होती है तो दूसरी ओर स्त्री अस्मिता स्थापित है . निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री को स्त्रीवादी दृष्टि से देखती है. उनकी अधिकतर कविताएँ स्त्री जीवन से जुड़ी हुई हैं.निर्मला पुतुल ने अपनी कविता में लोक कथा ,लोक संस्कृति ,लोक भाषा को अधिक महत्व दिया है. संधाल परगना संस्कृति का रूपांतर शहरी सभ्य लोगों ने लोकसंग्रहालय में कैसा कर दिया है उस ओर दिशा निर्देशित किया है. निर्मला पुतुल की कविताएँ प्रश्न उपस्थित करती है .निर्मला पुतुल की कविता में कहानी चलती है.उस कहानी के द्वारा आदिवासी कथा चलती है.कई कविताओं में आदिवासी लोककथा पच्चीकारी भाँति एकरूप है जिनके द्वारा इतिहास और संस्कृतिसंदर्भों का गौरवगान है,जिससे कविता की बुनावट विशिष्ट लगती है.

निर्मला पुतुल अपनी कविता में पुरुषसत्ता को प्रश्न करती है कि क्या तुम स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करते हो ? जैसे- घर पुरुष का ,बच्चे पुरुष के ,खेत पुरुष का .इसलिए सदियों से बेचन स्त्री अपने घर की तलाश में है - " बता सकते हो/सदियों से अपना घर तलाशती/एक बेचैन स्त्री को/उसके घर का पता?"¹ पुरुष को स्त्री के तन का तो भूगोल दिखाई देता है किंतु क्या उनके मन के भीतर के इतिहास को कभी उसने समझ लिया है ? इसलिए निर्मला पुतुल कहती है ना कभी पुरुष ने स्त्री के रिश्ते के व्याकरण को समझा न कभी स्त्री को स्त्री के दृष्टि से देखा .उसे बस रसोई और बिस्तर तक सीमित रखा है उससे अधिक नहीं. कवयित्री के शब्दों में- "अगर नहीं!तो फिर जानते क्या हो तुम/ रसोई और बिस्तर के गणित से परे/ एक स्त्री के बारे में..."² निर्मला पुतुल की स्त्री अपनी खुद की जमीन तलाशना चाहती है. वह अपने घर की तलाश में है .वह इन बंधनों से मुक्त होना चाहती है .उसे एक उन्मुक्त आकाश चाहिए .वह स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखना चाहती है . पिता के संपत्ति में बहन को अधिकार न मिले इसलिए भाई कहता है - " हक की बात न करो मेरी बहन/ मत माँगो पिता की सम्पत्ति पर अधिकार "³ वैसे स्त्री अपने परिवार के लिए स्वाहा करती है .बिखर जाती है लेकिन उसका अपना घर नहीं होता है .घर के बाहर जो नेम प्लेट लगती है वह पति के नाम से होती है .लेकिन वह स्त्री कहती है कि मैं इतनी विशाल हूँ कि धरती मेरे अंदर समा जाती है. गर्भ से लेकर जीवन के अंतिम क्षण तक मैं पुरुषों के साथ कई रूपों में होती हूँ .लेकिन मुझे आज भी अपना घर नहीं मिला .सदियों से मैं अपने घर की तलाश में हूँ. अपने होने की अस्मिता और अस्तित्व के वजूद को ढूँढ रही हूँ "तलाश रही हूँ सदियों से निरन्तर/अपनी जमीन, अपना घर/ अपने होने का अर्थ!! " ⁴

वह बेचैन स्त्री पुरुष से प्रश्न करती है कि क्या मैं केवल मात्र तुम्हारे थके होने पर तकिया हूँ ? क्या मैं मात्र तुम्हारे कपड़े रखने की मात्र खूँटी हूँ ? क्या तुम्हारे लेखन की डायरी हूँ ? क्या आपके खेल की गेंद हूँ ? या आपके बिछाने की चादर हूँ ?लेकिन तुम समझते हो वैसी मैं मात्र वस्तु नहीं हूँ .मैं भी मनुष्य हूँ. मेरा भी अपना अस्तित्व है. मेरा भी अपना वजूद है .मेरी अपनी पीड़ा है .मेरी अपनी वेदना है. क्या मैं मात्र तुम्हारे लिए हूँ? अर्थात् निर्मला पुतुल संत कबीर की भाँति प्रश्नांकुल प्रवृत्ति की है.

वैश्वीकरण के परिणाम से जंगल की कटाई ,कोयला खदान और बारिश के अभाव से आदिवासी अपनी जमीन से उखड़ गया है .वह अपने रोजी- रोटी के लिए शहर की ओर आकर्षित हो रहा है . इसमें पुरुष की तुलना में स्त्रियों का शोषण बड़ा भयावह और दर्दनाक है.कवयित्री वैश्वीकरण और शहरी पुरुष की मानसिकता से आदिवासीजन को सचेत करना चाहती है .दिल्ली, नोएडा जैसी कई जगह पर आदिवासी लड़कियाँ घर के कामकाज के लिए , ईंट बनाने हेतु बिहार तथा पश्चिम बंगाल में चली जाती है .साथ ही असम में चाय बागान में काम करने हेतु चली जाती है लेकिन वहाँ आदिवासी स्त्री का शारीरिक शोषण बड़ी मात्रा में हो रहा है. कई बार इन लड़कियों को बलात्कार जैसी घटना से भी गुजारना पड़ता है . जहाँ एक ओर इन बातों से कवयित्री आदिवासी लड़कियों को सचेत करना चाहती है तो दूसरी ओर शहरी लोगों की पाखंडी भद्रपन का भंडाफोड़ करती हैं ,जैसे चुड़का सोरेन से कवयित्री कहती है- " बाजार ले जाकर बेचते हुए तुम्हारी माँ को भी/हजार हजार कामुक आंखों और सिपाहियों के पंजे झेलती"⁵ xxxxxxxxxxxxxxxx "सुनहरी जिन्दगी का खवाब दिखाकर/दिल्ली की आया बनानेवाली फैक्ट्रियों में/ कर रही है कच्चे माल की तरह सप्लाई/ उन सपनों की हकीकत जानो चुड़का सोरेन"⁶

जंगल उजड़ जाने से रोजी-रोटी के लिए घर में स्त्री को अकेली छोड़कर पुरुष जब शहर जाते हैं तब आस-पड़ोस के लोग उनके साथ किस तरह का व्यवहार करते हैं उसकी व्यथा 'ढेपचा के बापू' कविता में व्यक्त हुई है। वह स्त्री कहती है कि ढेपचा के बापू तुम मुझे छोड़कर कमाने के लिए कश्मीर चले गए और बेटा ढेपचा भी अपने साथियों के साथ असम चला गया, सुगिया बिटिया अपनी सहेलियों के साथ गाड़ी में बैठ कर बंगाल चली गई, अब घर में छोटका पाँच साल का हुआ है। चितकबरी बछिया अब गाय बन गई है। जंगल में कंद फल नहीं हैं। महुआ टपकता नहीं है। आस पड़ोस के लोग भी अलग-सा व्यवहार कर रहे हैं, जैसे लखना के बेटे को सांप ने काटा था किंतु लोग मुझे ही डायन कह कर इल्जाम लगा रहे थे लेकिन अच्छा हो गया चरबतिया ने अपनी आंखों से सांप देखा था। अन्यथा मुझे भी पकलू बुढ़िया की तरह पंचायत के सामने सिर मुंडवा कर नचवा दिया होता। ढेपचा की माँ ने इंदिरा आवास के लिए भाग दौड़ कर पंचायत सेवक को मुर्गा खिलाया। प्रधान को पचास रुपये दिए लेकिन पूरा डेढ़ साल हो गया अभी भी सरकारी योजना का घर नहीं मिला - " इन्दिरा -आवास के लिए बहुत दौड़- भाग की/ पंचायत सेवक को मुर्गा भी दिया/ प्रधान को भी दिया पचास टका/ पर अभी तक कुछ नहीं हुआ/ पूरा डेढ़ साल हो गया"⁷ वैश्वीकरण के प्रभाव से न केवल प्रकृति का नुकसान हुआ है बल्कि आदिवासी भाषा और संस्कृति पर भी गहरा परिणाम हुआ है। निर्मला पुतुल को अपनी संस्कृति की अधिक चिंता है उसे लगता है कि इस कंक्रीट के जंगल में हमारी असली पहचान हम भूलते जा रहे हैं। अब पहले जैसा सन्थाल परगना नहीं रह गया है। निर्मला पुतुल के शब्दों में- " सन्थाल परगना/ अब नहीं रह गया है सन्थाल परगना! बहुत कम बचे रह गये हैं/ अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग "⁸

शहरी एनजीओ जैसी तथाकथित संस्थाओं ने तीर, धनुष, नगाडा, बांसुरी जैसे आदिवासी संस्कृति के अभिन्न अंग को लोकसंग्रहालय का रूप बना दिया है, जिसकी पीड़ा 'सन्थाल परगना' जैसी कविता में व्यक्त हुई है। निर्मला पुतुल को लगता है कि अब हमारे सन्थाल परगना के माटी का रंग बदल गया है। झारखंडीपन गायब होता जा रहा है। बाहरी भाषा का प्रभाव हो रहा है। हमारी जंगल की ताजी हवा, नदियों का निर्मल पानी, पहाड़ों का मौन गान, गीतों की धुन, मिट्टी का सौंधापन, फसलों की लहलहाट, नाचने के लिए खुला आँगन, गाने के लिए गीत सब कुछ चला गया है। फिर भी निर्मला पुतुल को लगता है कि हम सब मिलकर अपने झारखंडीपन को बचाएँ। वही हमारी असली संस्कृति है। उसीमें मानव जीवन के कल्याण की आस है। इसलिए कवयित्री सभी आदिवासियों से आवाहन करते हुए कहती है - " आओ, मिलकर बचाएँ/ कि इस दौर में भी बचाने को/ बहुत कुछ बचा है, अभी हमारे पास!"⁹ निर्मला पुतुल ने जहाँ एक ओर आदिवासी समाज की व्यथा-वेदना को अपनी कविता के द्वारा व्यक्त किया है तो दूसरी ओर वह अपने समाज के अस्मिता-अस्तित्व को स्थापित करना चाहती है। वह आदिवासी समाज में चेतना भरना चाहती है। उन्हीं के शब्दों में- " मैं चाहती हूँ/ मेरे शब्दों की जमीन से / उगें कई-कई बिरसा मुंडा"¹⁰ जिस व्यवस्था ने आदिवासी समाज का शोषण किया है उस व्यवस्था के खिलाफ निर्मला पुतुल की कविता विद्रोह करती है। उन्हीं के शब्दों में- " इसलिए चुप नहीं रहूँगी अब/ ऊगलूँगी तुम्हारे विरुद्ध आग/ तुम मना करोगे जितना/ उतनी ही जोर से चीखूँगी मैं"¹¹ 'उतनी ही जनमेगी निर्मला पुतुल !' नामक कविता में कवयित्री अपने जीवन की चिंता किये बिना अत्यंत प्रखर रूप में कि व्यवस्था से प्रतिकार करते हुए कहती है कि मेरे लहू का कतरा जमीन पर गिरते ही पुरानी शोषण व्यवस्था का प्रतिशोध लेने हजारों निर्मला पुतुल निर्माण होगी। उनकी आवाज संगठित रूप

में आंदोलन का रूप धारण कर लेगी- "गिरेंगी जितनी बूँदे लहू की धरती पर/ उतनी ही जनमेगी निर्मला पुतुल/ हवा में मुट्ठी बँधे हाथ लहराते हुए!"¹²

कवयित्री कहती है कि मेरे कविता के शब्द बिना लाग लपेट के हैं . उसमें चिकनी- चुपड़ी भाषा नहीं है . उबड़ -खाबड़ रास्ते जैसी रुखड़ी भाषा है ,जो आंखों देखा हाल वर्णित करती है. जो भाषा सच को सच और झूठ को झूठ साबित करने की ताकत रखती है. जमीनी हकीकत का बयान है. निर्मला पुतुल की कविता स्वर्ग-नरक की कल्पना को नकारती है. यमदूत की कल्पना को झूठा साबित करती है. कवयित्री कहती हैं कि मेरे एकांत में देवता नहीं होते बल्कि स्वप्न और संघर्ष का संवाद होता है जिससे मैं अपनी कविता रचती हूँ. कवयित्री कहती है कि आपको लगता होगा आदिवासी समाज सोया है, जैसे थे मानसिकता में है लेकिन अक्सर चुप रहने वाला आदिवासी आदमी जरूर सिर उठाकर बोलेगा. अपनी चुप्पी तोड़ेगा .व्यवस्था के खिलाफ अपनी मुठ्ठियाँ तान कर अपने खतरनाक शस्त्र का परिचय करा देगा-" -और तनेगी मुठ्ठियाँ आकाश में व्यवस्था के खिलाफ/ भीतर ईजाद करते कई-कई खतरनाक शस्त्र "¹³

कवयित्री को लगता है कि आदिवासी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए ऊर्जा के साथ उठेंगे. कदमों से दूरियाँ नाप कर अपने गंतव्य तक पहुंचेंगे . न थकनेवाली कोशिश से व्यवस्था का बंद दरवाजा खुलेगा .पर्दे हटेंगे .कवयित्री सचेत करते हुए कहती है - हम सोए हैं इस मानसिकता में मत रहो .कोई भी विद्रोह एकाएक नहीं होता .हमारे भीतर विद्रोह रूपी शिशुने जन्म लिया है. वह व्यवस्था को सुरंग लगाने के लिए समय की कोख में पल रहा है. उसे समझो.कवयित्री शब्दों में- "कुछ भी एकाएक नहीं होता/ जन्म लेने से पहले/ गर्भ में पलते शिशु की तरह / सब कुछ पल रहा है समय की कोख में "¹⁴

कवयित्री कहती है कि आप हमारा मजाक उड़ाते हो. हमारे काले रंगों से घृणा करते हो. हमारे अनगढ़पन पर तुम फट्टियाँ कसते हो. हमारी भाषा का भी मजाक उड़ाते हो .हमारी परंपरा को पसंद नहीं करते हो. हमें जंगली ,असभ्य,पिछड़ा कहकर हिकारत से देखते हो और अपने आप को श्रेष्ठ समझते हो . मेरा सब कुछ आपके नजर में अप्रिय है .हमने बनाए पत्तल पर तुम सब खाते हो किंतु हम भूखे रहते हैं .हमने बनाए झाड़ू से साफ -सफाई करते हो किंतु सारी गंदगी हमारी ओर फेंकते हो. क्या यही तुम्हारी सभ्यता है? इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित करते हुए कवयित्री कहती है कि हमारे बीच आकर हमें समझो तब हमारी भाषा ,हमारी सभ्यता समझ आयेगी - "वे नहीं चाहते सीखना/ हमारे बीच रहते, हमारी भाषा/ चाहते हैं ,उनकी भाषा सीखें हम/ उन्हीं की भाषा में बात करें उनसे "¹⁵ धरती को माता समझनेवाली आदिवासी संस्कृति .भील तो धरती का दर्शन लेकर ही सुबह का पहला पैर जमीन पर रखते हैं. इसलिए कवयित्री कहती है कि आज हम जंगल की सुरक्षा नहीं करेंगे तो कल की पीढ़ी जवाब पुछेगी तो उत्तर क्या देंगे?जंगल की कटाई रोकनी होगी.कुल्हाड़ी के सामने पेड़ असहाय हैं - "देखो! अपनी बस्ती के सीमान्त पर / जहाँ धराशायी हो रहे हैं पेड़/ कुल्हाड़ियों के सामने असहाय/ रोज नंगी होती बस्तियां/ एक रोज माँगेगी तुमसे / तुम्हारी खामोशी का जवाब "¹⁶

अतः निर्मला पुतुल की कविता कालसम्पृक्त और लोकसम्पृक्त है .उनकी कविता वेदना की दाहकता जमीनी सच्चाई से रूबरू कराती है.वैश्वीकरण ने आदिवासी भाषा और संस्कृति पर गहरा आघात किया है . वे अपने जमीन से उखड़ गये हैं.भूमंडीकरण ने उनके जीवन को मंडी में तब्दील किया है.जंगल की संपदा विपदा

में बदल गई है.जहाँ एक ओर जल ,जंगल और जमीन से कटने का भयावह दर्द कविता में अंकित है तो दूसरी ओर कवयित्री आदिवासी मनुष्य को सचेत कर विद्रोह के लिए प्रेरित कर सामाजिक न्याय की मांग करती है।.अपनी अस्मिता का अहसास कराकर अपने विस्थापित जीवन को स्थापित करने का सपना देखती है.

संदर्भ:

- 1)निर्मला पुतुल-'नगाडे की तरह बजते हैं शब्द ',पृष्ठ-07
- 2)वही,पृष्ठ-08
- 3)वही,पृष्ठ-24
- 4)वही,पृष्ठ-30
- 5)वही,पृष्ठ-19
- 6)वही,पृष्ठ-21
- 7)वही,पृष्ठ-43
- 8)वही,पृष्ठ-26
- 9)वही,पृष्ठ-77
- 10)वही,पृष्ठ-92
- 11)वही,पृष्ठ-90
- 12)वही,पृष्ठ-91
- 13)वही,पृष्ठ-85
- 14)वही,पृष्ठ-85
- 15)वही,पृष्ठ-73
- 16)वही,पृष्ठ-14



सामाजिक समरसता के संवाहक : संत रविदास

प्रा.डॉ. शेख मुख्त्यार शेख वहाब

(अध्यक्ष, हिंदी विभाग)

ए.शि.प्र.मं. कला महाविद्यालय, बिडकीन।

तह.पैठण, जिला-औरंगाबाद।

संत कुलभूषण महाकवि रविदास ने सामाजिक समरसता के लिए समाज के बीच अतुलनीय योगदान देकर समाज को गति प्रदान करके मुख्यधारा में लाने का जो सदप्रयास किया है उसके कारण संत रविदास हमेशा याद किए जाते रहेंगे उन्हें समाज के संत कवि ही नहीं युग प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया है। संत रैदास उन महान संतों में से एक थे जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रविदास जी के भक्ति गीतों एवं दोहों ने भारतीय समाज में समरसता एवं प्रेम भाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है।

रविदास की वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गए। एक किवंदंती के अनुसार मीराबाई भी उनकी भक्ति भावना से बहुत प्रभावित हुईं और उनकी शिष्या बन गई थीं। हिंदू और मुस्लिम में सौहार्द एवं सहिष्णुता उत्पन्न करने हेतु रविदास जी ने अथक प्रयास किए थे और इस तथ्य का प्रमाण उनके गीतों में देखा जा सकता है। वह कहते हैं कि तीर्थ यात्राएं न भी करो तो भी ईश्वर को अपने हृदय में पास रखते हैं। जैसे- "का मथुरा द्वारिका का काशी हरिद्वार / रैदास खोजा दिल अपना शहर मिलिया दिलदार।" (उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.140)

आज के युग में संत रविदास के व्यक्तित्व और कृतित्व को फिर से समझने की आवश्यकता है क्योंकि रविदास की वाणी पतन मुक्त समाज को प्रगति की राह दिखा सकती है। उनकी वाणी मानवता के उत्कर्ष के लिए प्रेरणा की अक्षय स्रोत है। समस्याओं का युग है। आज मानव विनाश के कगार पर खड़ा एक धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है। नैतिकता का पतन हो गया है व्यक्तिगत चरित्र की मूल्य बता घटती जा रही है विभिन्न समस्याओं में आज जाति पाति एक बड़ी समस्या है विभिन्न समस्याओं में आज जाति-पाति एक बड़ी समस्या है। जातीयता भारतीय समाज के लिए अभिशाप है। प्रतिभा को इस देश में जातीयता का अभिशाप सदा मिलता रहा है। निर्भीक संत रविदास ने जाति-पाति की व्यवस्था का विरोध किया है निर्भीक संत रविदास ने जाति-पाति की व्यवस्था का विरोध किया है। जैसे - "जाति-पाति के फेर महि / उरझि रहयो सम लोग / मानुषता कूं खात हुई / रैदास जात कर लोग।" (उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.168)

उक्त पद में संत रैदास लोगों को बता रहे हैं कि जाति-पाति की व्यवस्था के कारण लोग दुखी हैं मानवता पीड़ित हैं वह इन बातों पर कुशल योद्धा की तरह प्रहार करते हैं। वे कहते हैं कि सभी लोग जाति-पाति के चक्कर में परेशान हुए हैं। जाति की इस बीमारी ने मानवता को कुंठित कर दिया है। संत कवि

रविदास संपूर्ण मानवता के उत्थान के लिए जाति-पाति का जबरदस्त विरोध करते हैं और जाति-विहीन समाज के लिए संघर्ष करते हैं। वे मानवता के पक्ष में अपना स्वर मुखर करते हुए कहते हैं - "सामाजिक प्रबंधन केले के वृक्ष की तरह है। जिस प्रकार केले के पेड़ में पत्ते के बाद पत्ता और उसके बाद पत्ता। इस प्रकार अंत तक पत्ता ही पाया जाता है। यही स्थिति भारतीय समाज प्रबंधन की है जिसमें जाति के बाद जाति और फिर उसके बाद जाति फिर इस प्रकार अंत तक जाति के बाद जाति दिखाई पड़ती है। रैदास के दृष्टिकोण में इंसान का इंसान से जुड़ना तब तक संभव नहीं है जब तक भारत से जाति विषमता समाप्त नहीं होगी। संत रैदास का उदार विचार है की जाति या वर्ण में जन्म लेने से कोई इंसान श्रेष्ठ या अधम नहीं हो सकता। उनकी समाप्ति में मानव जीवन में कर्म का महत्व सर्वाधिक है। सारा प्राप्तव्य कर्म के बल पर प्राप्त किया जा सकता है। रविदास भारतीय समाज में समरसता का स्वर मुखर करते हैं। उनका मानना है कि जब तक कमजोर वर्ग का उत्थान नहीं होगा, तब तक राष्ट्र सबल नहीं हो सकता। वही समाज सर्वोत्तम माना जा सकता है जो समाज जाति विहीन है। वही समाज खुशहाल है जिसमें पिछड़ी जाति के लोगों का भी मान-सम्मान होता है। संत रैदास समतामूलक समाज में समरस होने की बात करते हैं। इस संदर्भ में संत रैदास की बहुमूल्य वाणी अवलोक्य है -

" रैदास जन्म के कारणै, होत न कोऊ निच। / नर कूं करि डारि है ओछे करत को बीचा।" (संत रैदास की मूल विचारधारा - श्याम सिंह, पृ.सं.63)

हिंदी साहित्य के विद्वान डॉ. बच्चन सिंह ने हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास में तत्कालीन व्यवस्था का उल्लेख करते हुए रविदास के सामाजिक अवदान को निम्नांकित शब्दों में रेखांकित किया है - "हजारों वर्षों से दबाई हुई शोषित जाति का अहम किसी आवेग से फूटता है। रैदास को आचार निष्ट का दंडवत करना भक्ति-आंदोलन की उस धारा की ओर संकेत करता है जिसके प्रखर प्रवाह में जाति-पाति के बांध एक सीमा तक टूट फूट गए थे। राजस्थान में रैदास का विशेष प्रभाव था। कहां जाता है कि मेवाड़ की झालारानी इनकी शिष्य थी। मीराबाई ने भी गुरु-रूप में रैदास का उल्लेख किया है। रैदास के बहुत-से पद 'आदिग्रंथ' में संग्रहित हैं।" (आदिग्रंथ, पृ.सं.99)

वर्तमान युग में श्रेष्ठ साधु विरले ही पाए जाते हैं रैदास की वाणी में श्रेष्ठ साधु वही है जो मनुष्य को सार असार का ज्ञान करा देते हैं। जिस प्रकार दूध मथकर मक्खन तैयार किया जाता है। उसी प्रकार साधु सद्ग्रंथों का अवगाहन करके सार तत्वों को ग्रहण कर मानवता को समरस भक्ति का भेद बताते हैं। संत कहते हैं कि भक्ति त्रिदेवा की भक्ति नहीं है। यह भक्ति तो अज्ञान पर आधारित है। सच्ची भक्ति अंतरात्मा में निहित होती है। असीम भक्ति का रहस्य बताने वाले संत के स्वभाव का वर्णन करते हुए रैदास कहते हैं -

"साधु ऐसा चाहिए जैसा सुप सुभाय / सार वस्तु अहि लेत है थोथा देय उड़ाय

थोथा देत अज जतन कुछ ऐसा कीजे / जितने बुरे ऐमाल छोड़ तू उनको दीजे

कहते संत रविदास वही साधु कहलाते / कहे जो पर कार सदा ईश्वर गुण गाते।"

(सर्वोत्तम सूक्तियों एवं संतों की वाणी - साधना पॉकेट बुक्स रोशननारा रोड, दिल्ली, पृ.सं.195)

उक्त पद में वे कहते हैं कि सारतत्व को ग्रहण करना तथा असार तत्व को त्यागना ही सच्चे साधु का लक्षण है। साधु का स्वभाव सूप की तरह ही होना चाहिए। रैदास की वाणी का अभिप्राय यह है कि वर्तमान

समाज विविध बुराइयों से ग्रस्त है। बुराइयों को छोड़ने पर ही नेक इंसान साधना के सोपान पर चढ़कर समरस हो सकता है। रविदास की वाणी वर्तमान संदर्भ में भी प्रेरणादायक और निराश मन में आशा की ज्योति जगाती है। इस भौतिक युग में हम विलासिता की सरिता में गोते लगा रहे हैं। हम कर्तव्यच्युत होकर निराशा अंधकार में भटक रहे हैं। इस संकट की घड़ी में रैदास की वाणी कर्तव्यनिष्ठता से समरस कराती है। उनकी वाणी में ज्ञान और अनुभव का सागर समाया हुआ है। हमारे मन के कोने-कोने को उनकी वाणी झंकृत कर देती है। जैसे

"आया किस काम को किया कौन-सा काम / भूल गए भगवान को कमा रहे धन-धाम कमा रहे धन-धाम रोज उठ करत लवारी झूठ कपट कर जोड़ बने तुम मायाधारी / कहत रविदास भगवान की सूरत विसारी मालिक के दरबार मिलै तुमको दुख भारी।" (सर्वोत्तम सूक्तियां एवं संतों की वाणी - साधना पॉकेट बुक्स, रोशनारा रोड दिल्ली, पृ.सं.195)

अर्थात् संत महा कवि रैदास कहते हैं कि जिस कार्य के लिए संसार में तुम्हारा पदार्पण हुआ था वह कार्य तुमने नहीं किया। परमात्मा को भूलकर यह अज्ञानी जीव धन और मकान को ही कमाने में व्यस्त रहा और इसके लिए प्रतिदिन दुष्कर्म करने लगा एवं कपटी बन गया। संत रैदास के अनुसार परमात्मा को भूलने से उनके दरबार में जीव को भारी दुख भोगना पड़ता है।

हिंदी साहित्य के प्रखर आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन भारत की सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं - "आडंबरहीन सहज शैली और निरीह आत्मसमर्पण के क्षेत्र में रैदास के साथ कम संतों की तुलना की जा सकती है। यदि हार्दिक भावों की प्रेषणीयता काव्य का उत्तम गुरु हो तो निःसंदेह रैदास के भजन इस गुण से संबंध है यदि हार्दिक भाव की कृष्ण इयत्ता काव्य का उत्तम गुरु हो तो निःसंदेह रैदास के भजन इस गुण से समृद्ध हैं।" (हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ.सं.158) रविदास की कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है - "तीरथ बरत न करौ अंदेश। तुम्हारे चरण कमल भरोसा। जहां-तहां जाओ तुम्हारी पूजा। तुमसा देव और नाही दूजा।" (वही, पृ.सं.158)

तत्कालीन समाज में मंदिर और मस्जिद को लेकर अज्ञानी हिंदू-मुस्लिम आपस में लड़ रहे थे, सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ रहे थे और आज भी यदा-कदा इसकी पुनरावृत्ति हो रही है। जिसकी चिंता गुरु रविदास पहले ही व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने कहा कि दोनों एक ही परमपिता परमात्मा की संतान हैं और उनका उपासना स्थल एक ही है चाहे उसे मंदिर कहें या मस्जिद। अतः उन्होंने इन दोनों भाइयों को आपस में लड़ने की सलाह नहीं दी है और भाईचारा कायम रख एक दूसरे से समरस होने का सुझाव दिया है जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। उनके संदेश और उपदेश की जनमानस को आज भी आवश्यकता है। यदि यह दोनों संप्रदाय मुल्क में अमन चैन कायम करना चाहते हैं तो रविदास के विचारों को आत्मसात करना ही होगा। इस संदर्भ में वे कहते हैं - "मंदिर-मस्जिद एक हैं, इन में अंतर नाही रैदास राम रहमान का, झगड़ऊ कोऊ नाही, रैदास हमारा राम जोई, सोई है रहमान, काबा-काशी जानि यहि, दोऊ एक समान।" (आदिग्रंथ, पृ.सं.1293)

संत रविदास व्यक्ति-व्यक्ति की समानता के पक्षधर थे। उन्होंने 'कंगन' और 'कनक' के रूपक के द्वारा हिंदू और मुसलमानों में एकरूपता या समरसता कायम करने की वकालत की है - "रविदास कंगन और कनक

मंही जिमि अंतर कुछ नहीं। / तैसउ ही अंतर नहीं, हिंदुअन तुरकन मांही।" (उत्तर प्रदेश - (डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.140)

रविदास देख रहे हैं कि समाज के ठेकेदारों ने समाज को धर्म, जात और वर्ण में बांट कर भारत को कमजोर करने की कोशिश की है। समाज में कड़वाहट पैदा कर रही है। अतः समाज को सजग करते हुए कहते हैं कि बुनियादी तथ्य और सत्य को समझो - "हिंदू तुरक नहीं कुछ भेदा सभ मह एक रक्त और मांसा / दोऊ एक दूजा कोऊ नहीं, परख्यों सोध रैदासा।" (उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138)

संत रविदास जी के अनुसार समस्त मानव का परमात्मा एक है वे इस सिद्धांत के समर्थक थे। उनका समता, समानता और समरसता पर आधारित धर्म है। वे सबके लिए सुख, शांति और समृद्धि की कामना करते हैं। उनकी कविता में लोकमंगल की भावना परिलक्षित होती है - "ऐसा चाहौं राज मैं जहां मिले सबन को अन्न। / छोटा बड़ा सब सम बसे रविदास रहे प्रसन्न।" (उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138) संत रविदास जी समाज में समरसता के पक्षधर हैं वे हिंदू-मुसलमान दोनों को सलाह देते हैं कि आपस में मित्रवत व्यवहार रखें और भाईचारे के संबंध को सशक्त बनाओ। जैसे - "मुसलमान सौ दोस्ती, हिंदूअन सौ कर प्रीत / रैदास जोति सभ राम की सभ हैं अपने मीत।" (उत्तर प्रदेश - (डॉ.संतोषकुमार यशवंतकर के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.132)

संत रविदास ने स्पष्ट शब्दों में समाज को आगाह किया है कि पैतृक पेशे को कर्म योगी की भांति करना चाहिए। उन्होंने अपने लोगों को समझाते हुए कहा है मैं अपने पैतृक काम को करते हुए भी सम्मान को अर्जित कर रहा हूं और आप भी अपना काम करके सम्मान की प्राप्ति कर सकते हैं। इसलिए रविदास जी ने अपनी जाति के लिए हीनता की अनुभूति कहीं व्यक्त नहीं की है, बल्कि एक पद में उन्होंने बड़े संतुष्ट भाव से कहा है कि मरे हुए पशुओं को ढोने वाले कुटुंब में पैदा होने वाले मुझ दासानूदास को बड़े-बड़े आचारवान दंडवत प्रणाम करते हैं। इसीलिए संत रविदास जी कहते हैं कि ईमानदारी से किया गया पैतृक धंधा समाज के लिए कल्याणकारी है उस पैतृक धंधे से समाज की सेवा होती है। समाज की आवश्यकता की पूर्ति होती है यह संतुलित एवं लोकोपयोगी दृष्टिकोण संत रविदास के बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचायक हैं। स्वयं रविदास जी कहते हैं - "रविदास है निज हत्थहिं राखौ रांवी आर। / कुकिरित ही मम् धर्म है, तारैगा भव पार।" (उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138)

दलित परिवार में जन्म लेने के कारण रविदास जी आजीवन मृत पशुओं की खाल निकालने चमड़ा कूटने, जूते बनाने तथा जूतों की मरम्मत करने का श्रम साध्य कार्य करते रहे श्रम को उन्होंने जीवन पर ईश्वर के समान महत्व दिया है। श्रम की महत्ता को स्वीकार करते हुए समाज को उससे समरस कराना चाहते हैं। उन्होंने स्वयं इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किये हैं - "श्रम कऊ ईस के जानि के जउ पुजति दिन रैन / रविदास तिन्हहिं संसार में, सदा मिलहिं सुख चैन।" (उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से, जनवरी-अप्रैल 2012) सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138)

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संत रविदास ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में समरसता स्थापितना तथा मानवीय मूल्यों के विकास में उनका अद्वितीय योगदान है। रविदास जी ने समाज को उन्नत

और विकासशील बनाने का हर संभव प्रयास किया। उनका यह प्रयास निश्चय ही समाज के दलित, पिछड़े और राष्ट्र की मूलधारा से कटे हुए लोगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। इनके साहित्य में सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ शाश्वत मूल्यों को भी जीवन में उतारने पर बल दिया गया। संत रविदास जी अपने युग की नब्ज को टटोलने में सक्षम तो थे ही और उन्होंने 21वीं सदी में समाज के दबे कुचले लोगों को जो आवाज दी है उसकी प्रतिध्वनि निरंतर सुनाई पड़ती है। मुझे विश्वास है कि उनकी विचारधारा को आत्मसात कर मनुष्य अपना तो विकास कर ही सकता है और अपने व्यक्तित्व से समाज और राष्ट्र को सही दिशा प्रदान कर सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि संत रविदास के विचार भारतीय समाज में ही नहीं बल्कि मानव मात्र में भी समरसता प्रदान करना चाहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.140
2. उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.168)
3. संत रैदास की मूल विचारधारा - श्याम सिंह, पृ.सं.63
4. आदिग्रंथ, पृ.सं.99
5. सर्वोत्तम सूक्तियों एवं संतों की वाणी - साधना पॉकेट बुक्स रोशननारा रोड, दिल्ली, पृ.सं.195
6. सर्वोत्तम सूक्तियां एवं संतों की वाणी - साधना पॉकेट बुक्स, रोशननारा रोड दिल्ली, पृ.सं.195
7. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ.सं.158
8. वही, पृ.सं.158
9. आदिग्रंथ, पृ.सं.1293
10. उत्तर प्रदेश - (डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.140
11. उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138
12. उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138
13. उत्तर प्रदेश - (डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.132
14. उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138
15. उत्तर प्रदेश - (सौरभ पाल के लेख से), जनवरी-अप्रैल 2012 सं. सुरेश उजाला, पृ.सं.138

साहित्य, समाज का नैतिक दायित्व एवं संवैधानिक मूल्य

डॉ. गोरख प्रभाकर काकडे

सरस्वती भुवन कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, औरंगाबाद -431001

‘एकमेका सहाय्य करू अवघे धरू सुपंथ’

‘मिले सुर मेरा तुम्हारा तो सुर बने हमारा’

इन वचनों के अनुसार अगर हम जीवन जीते हैं, तो निश्चित ही हम स्वयं और हमारा समाज, राष्ट्र और विश्व, जगत सब खुशहाल और सुखी-संपन्न हुए बगैर नहीं रह सकते।

व्यक्ति के जिस प्रकार समाज के प्रति कुछ नैतिक दायित्व होते हैं वैसे ही साहित्य और समाज के भी राष्ट्र और विश्वसमाज के प्रति कुछ नैतिक दायित्व होते हैं।

व्यक्ति मन से समूह मन कुछ अनियंत्रित होता है। व्यक्ति की अपनी सत्ता अपने मन पर होती है परंतु समूह मन की सत्ता में भिन्नता और अस्थिरता होती है।

इसी अस्थिरता को स्थिर करने के लिए समाज व्यवस्था का निर्माण हुआ है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समूह-कबीले, समूह-कबीलों से समाज और समाज से राष्ट्र, विश्व की निर्मिति हुई है। जब से समूह-कबीले से हम विश्वमानव समाज के रूप में स्थापित होने लगे तभी से हमने धीरे-धीरे सामाजिक नैतिक दायित्व को स्वीकार करना आरंभ किया। इन्हीं नैतिक दायित्व ने हमें आज सुसंस्कृत बनाया है। एक सुचारु मनुष्य जीवन जीने की दिशा दी है।

जैसे-जैसे हम समाज के रूप में पक्के बनते गए वैसे-वैसे आरंभ में एकत्रित होते गए और फिर धीरे-धीरे एक दूसरे से दूर होते गए, दूर होते जा रहे हैं। इसी परिणामस्वरूप जन्म हुआ धर्मों का, वर्णों का, वर्गों का और जातियों का। समाज में देश-विदेश, ऊंच-नीच का, अमीर-गरीब, स्पृश्य-अस्पृश्य भेदा-भेद, दूरियां बढ़ती गई। इन्हीं दूरियों को पाटकर हमें फिर से हम एक हैं का भाव जगाना है। इसी भाव को जगाने के लिए साहित्य और समाज को अपने नैतिक दायित्वों का पालन करना होगा।

विश्व का कोई भी धर्म लीजिए वह कभी भी सामाजिक अनैतिकता की बात नहीं करता। वह मानव के साथ-साथ भौतिक एवं अभौतिक, सजीव एवं निर्जीव, चल एवं अचल सभी के प्रति एक सकारात्मक दृष्टि प्रदान करने का काम करता है। हर एक धर्म के धार्मिक तत्वों का, आचरण पद्धतियों का विकास युग-सापेक्ष, वर्तमान की, भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप ही हुआ है।

विश्व के विभिन्न धर्मों द्वारा बताए गए सामाजिक नैतिक दायित्वों की बात अगर हमें करनी हो तो हम भारत को केंद्र में रखकर इस बात को बड़े सरल और सहज ढंग से कर सकते हैं। भारत में अनेक धर्म, संप्रदाय आदि के लोग वास करते हैं। इस संदर्भ में दामोदर धर्मानंद कोसंबी (डी. डी. कोसंबी) अपनी किताब ‘प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता’ में कहते हैं, "एक ही प्रांत के यहां तक कि एक ही जिले अथवा नगर के भारतीय निवासियों में उतनी ही अधिक सांस्कृतिक असमानता है जितनी कि भारत के विभिन्न भागों में प्राकृतिक असमानता है।"¹ यहां सभी धर्मों, पंथों को अपनी-अपनी आचरण पद्धतियों अनुसार जीवन जीने का अधिकार है। तब ऐसी स्थिति में प्रत्येक धर्म समाज को नैतिक दायित्व की शिक्षा सहज ही देता है।

हमारा भारतीय साहित्य और समाज विश्व को 'वसुधैव कुटुंबकम्' के नैतिक दायित्व का संदेश देता है। पूरा विश्वसमाज एक ही परिवार है की शिक्षा देता है और हमें हमारी जिम्मेदारियों दायित्वों से परिचित कराता है। सभी को एक परिवार के सदस्यों की तरह एक-दूसरे की मदद का संदेश देता है। फिर वह चाहे कोई भी क्यों न हो। संतों ने भी यही संदेश अपनी वाणी, भजनों एवं अभंगों से दिया है। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं-

“अवघाचि संसार सुखाचा करीन।

आनंदें भरीन तिन्ही लोक॥”

गोस्वामी तुलसीदास 'रामचरितमानस' में कहते हैं -

“परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥”

अर्थात् लोगों का उपकार करने जैसा, लोगों का हित, मदद करने जैसा दूसरा कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुख देने जैसा अधर्म दूसरा कोई नहीं है।

सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने व्यक्ति और समाज के लिए 'शील, प्रज्ञा और करुणा' को महत्वपूर्ण नैतिक दायित्व माना है।

'गुरु ग्रंथ साहिब' में मूल मंत्र के रूप में - 'एक ओंकार सतनाम' कहकर ईश्वर एक है, तो हम कैसे दो या अलग-अलग हो सकते हैं का सामाजिक नैतिक दायित्ववाला पाठ पढ़ाया है। गुरुद्वारे में चाहे सिख हो, हिंदू हो, इसाई हो, मुस्लिम हो, बौद्ध, जैन हो या अन्य कोई हो। सभी एक साथ बैठकर समानता के दायित्व का पालन करते हैं। इतना ही नहीं तो 'गुरु ग्रंथ साहिब' में सिखों के गुरुओं के साथ-साथ अन्य धर्मियों के वचन, पद संकलित हैं। जिसमें मुस्लिम सूफी संत बाबा फरीद, संत कबीर, संत रैदास, संत नामदेव आदि ऐसे विभिन्न जाति, संप्रदायों से संबंधित संतों के पद भी सम्मिलित हैं और इन पदों का उतनी ही सम्मान के साथ पठन-पाठन होता है जितना कि सिख गुरुओं के वचनों का।

वर्धमान महावीर ने भी समानता, अहिंसा, सत्य आदि सामाजिक नैतिक दायित्वों की बात कही है।

इन भारतीय धर्मों के अलावा भी भारत में अन्य धर्मों के, जनजातियों के लोग रहते हैं। उन्होंने भी सामाजिक नैतिक दायित्व को महत्व दिया है। जनजातियों में तो व्यक्ति जीवन नगण्य होकर समूह जीवन ही महत्वपूर्ण माना गया है। इस संदर्भ में नृतत्वशास्त्री (मानवविज्ञानी) वेरियर एलविन अपनी किताब 'मुरिया और उनका घोटुल' में लिखते हैं, "मुरिया लोग अन्य कबीले के लोगों की तरह ही कबीले की एकता को सबसे नैतिक और उत्तम लक्ष मानते हैं। जो भी कार्य इस एकता और भाईचारे को भंग करता है वह बुरा माना जाता है। व्यक्तिगत पसंद अथवा नापसंद एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण रखना महापाप समझे जाते हैं। इस कारण से लड़ाई, हत्या और चोरी यहां असाधारण बातें हैं तथा ये घटनाएं यहां कभी-कभी ही घटित होती हैं।"²

अब तक जिन बातों की हमने चर्चा की है इससे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि निश्चित रूप से साहित्य और समाज का नैतिक दायित्व किस प्रकार का होता है। उसे कौन-कौन सी बातों को अपनाना चाहिए और कौन-कौन सी बातों को त्यागना चाहिए।

हम भारतीयों को इन विभिन्नताओं के बावजूद एक सूत्र में बांधने का काम करता है हमारे स्वतंत्र भारत का संविधान। सारे धर्मों के अपने-अपने धार्मिक ग्रंथों के अलावा हम सबका आचरण-व्यवहार नियंत्रित करनेवाला सर्वोपरि सबके समान स्वातंत्र्य, बंधुता, एकता एवं समानता की बात करनेवाला ग्रंथ है, हमारा संविधान। हमें संविधान ने

मौलिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के महत्वपूर्ण मूल्य दिए हैं। संविधान के भाग III (अनुच्छेद 12-35 तक) में मौलिक अधिकारों का विवरण है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार इस प्रकार हैं -

1. समता या समानता का अधिकार;
2. स्वतंत्रता का अधिकार;
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार;
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार;
5. संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार;
6. संवैधानिक अधिकार।

साहित्य हमेशा से ही नैतिक, मानवीय मूल्यों की बात करता आया है। उपर आये हुए संतों, कवियों के वचन, वाणी वह स्पष्ट करती ही है। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान स्वीकृत होने के बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल्य/अधिकार को लेकर कवि गजानन माधव मुक्तिबोध अपनी 'अंधरे में' शीर्षक की कविता में लिखते हैं -

“अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे।

तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।”

समता या समानता के मूल्य के संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर अपनी काव्य रचना 'कुरुक्षेत्र' में लिखते हैं -

“श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान।

स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण”

साहित्यकारों ने हमेशा ही मानवीय मूल्यों के, संवैधानिक मूल्यों के अनुपालन की बात की है और आज भी कर रहे हैं।

मौलिक अधिकारों के साथ ही संविधान ने हमें मौलिक कर्तव्यों के मूल्य भी प्रदान किए हैं। संविधान हमें हमारे मौलिक कर्तव्यों के प्रति भी जिम्मेदार होने की नैतिकता की सीख देता है।

संविधान में आरंभ से ही मौलिक अधिकारों का समावेश था परंतु मौलिक कर्तव्यों, दायित्वों को सन् 1976 में स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों के तहत 42 वें संविधान संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 51-क में समाविष्ट किया गया। सन् 1976 में दस मूल कर्तव्यों, दायित्वों को जोड़ा गया था तो सन् 2002 में ग्यारहवें कर्तव्य को 86 वें संविधान संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया। वर्तमान में हम पर ग्यारह मूल कर्तव्यों का निर्वहन करने का सामाजिक दायित्व है। वे ग्यारह कर्तव्य, दायित्व इस प्रकार हैं -

प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज एवं राष्ट्रगान का आदर करे;
2. स्वतंत्रता के लिये हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले महान आदर्शों को हृदय में संजोय रखें और उनका पालन करें;
3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें;
4. देश की रक्षा करें और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करें;
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग आधारित सभी प्रकार के भेदभाव से परे हो। साथ ही ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

6. हमारी समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत को महत्व दे और उसका परिरक्षण करें;
7. प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं रक्षा करें और उसका संवर्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखें;
8. मानवतावाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें;
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें;
10. व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें, जिससे राष्ट्र निरंतर उच्च स्तर की उपलब्धि हासिल करे;
11. माता-पिता या संरक्षक द्वारा 6 से 14 वर्ष तक के आयु के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

इस प्रकार हमारे समाज को, राष्ट्र को नियंत्रित करने वाले सभी के ग्रंथ संविधान ने समाज पर अपने नैतिक दायित्वों, संवैधानिक मूल्यों की जिम्मेदारी डाल दी है। 42 वें संविधान संशोधन ने ही समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखंडता का मूल्य भारतीय समाज को दिया है। हमारा दायित्व है कि हम इन कर्तव्यों का पालन करें।

आज हम देख रहे हैं कि व्यक्ति एवं समाज अपने संवैधानिक अधिकारों के प्रति तो सजग है परंतु संवैधानिक कर्तव्यों से दूर जा रहा है। हमें प्रयासों से उन दायित्वों का भी पालन करना होगा जो संविधान ने हमारे सामने रखे हैं।

बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों की जिम्मेदारी है कि वे संवैधानिक मूल्यों का पालन करें। साथ ही -

आज शिक्षक समुदाय को बड़ी प्रामाणिकता से अपने पेशे से जुड़े दायित्व को पूरा करना होगा तभी एक सशक्त, सुदृढ़ समाज, राष्ट्र का निर्माण होगा।

डॉक्टरों को व्यावसायिकता से ज्यादा सेवा देने पर जोर देना होगा।

संतों, धर्मात्माओं, पंडितों, मुल्ला-मौलवी, पादरियों, चिवरधारियों को मानवता, समानता की सीख देनी होगी।

समाजसेवियों को व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर समाज के लिए काम करना होगा।

लालफीताशाही वाले अफसरों और बाबुओं को अपने कर्तव्यों का, नैतिकता का पालन करना होगा।

इतना ही नहीं तो समाज की प्रत्येक इकाई को अपने कर्तव्यों, दायित्वों का पालन करना होगा ताकि हम मनुष्य होने में गौरव महसूस करें ना कि शर्मिंदगी।

हम न केवल भारत तक ही सीमित रहें बल्कि विश्व के लिए भी एक मार्गदर्शक और आदर्श इकाई बने। कवि दुष्यंत के शब्दों में कहें तो -

“रहनुमाओं की अदाओं पे फिदा है दुनिया
इस बहती हुई दुनिया को संभालो यारों
कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो”

संदर्भ :

1. दामोदर धर्मानंद कोसंबी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्करण - 2016, पृ.12
2. वेरियर एलविन, मुरिया और उनका घोटुल - भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति - 2014, पृ.169

हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी दृष्टिकोण

शोधलेखक

डॉ. शहेनाज अहेमद शेख

असोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग प्रमुख

हु.जयवंतराव पाटील महाविद्यालय

हिमायतनगर नांदेड (महाराष्ट्र)

भारतीय इतिहास में विभाजन एक बड़ी त्रासदी है, जिसके परिणाम आज भी भयावह रूप में उद्वेसित करते हैं। इस विभाजन से उपजे साम्प्रदायिक वातावरण ने मानवीय मूल्य ही बदल गए। आजादी के बाद सोचा गया था कि हमारा देश विभाजन की त्रासदी से बाहर निकलकर धीरे-धीरे सामाजिक सद्भाव की ओर आगे बढ़ेगा, पर संकीर्ण मानसिकता के चलते ऐसा हो नहीं पाया। देश विभाजन ने पूरे उत्तर भारत को साम्प्रदायिकता की ज्वाला में धकेल दिया।

समाज में जो घटित हो चुका है या घटित हो रहा है, उसके दबाव को इतिहास आज तक भूगत रहा है। साम्प्रदायिकता जैसी अपराधी सोच ने मानवीयता और मैत्री की नींव को झकझोर दिया है। कट्टरवादी सोच ने भाषा को भी साम्प्रदायिक दायरे में लाकर खड़ा कर दिया है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मजहब अपने मूल आदर्शों से भटक जाता है। उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिकता के कारण होने वाले दुष्परिणामों को सामने रखकर पाठक वर्ग की आँखों को खोलने का प्रयास किया है।

वर्तमान भारत में भूमंडलीकरण के चलते ऐसी कल्पना की जा रही है, जहां संपूर्ण विश्व के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक हित साझा होंगे, पर इन सबके बावजूद जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद तथा संप्रदायवाद की जड़े, उत्तरोत्तर गहरी होती जा रही हैं। देश-विभाजन के समय भारत में अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिससे जान-माल की भारी क्षति हुई, हिंदू और मुसलमानों की दिलों में नफरत की ऐसी भावना घर कर गयी कि आज भी यदा-कदा छोटे-बड़े साम्प्रदायिक दंगों के रूप में प्रकट होती रहती है। हालांकि भारतीय संविधान लागू होने के बाद भारत धर्म और जाति निरपेक्ष राष्ट्र बन गया, पर साम्प्रदायिकता की समस्या अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

साम्प्रदायिकता के इस भयानक रूप ने साहित्यकारों को भी हिला कर रख दिया। उन्होंने विभाजन के दिनों में ही नहीं बल्कि तब से लेकर आज तक इस विषय पर लिखते ही आ रहे हैं। यह विषय आज तक लगातार प्रासंगिक बना हुआ है। सिर्फ हिंदी के ही साहित्यकारों ने इस विषय पर प्रकाश डाला ऐसी बात नहीं, बल्कि उर्दू के भी अनेक साहित्यकारों ने इस विषय पर अपनी लेखनी चलायी।

हिंदी में यशपाल, कमलेश्वर, राही मासूम रजा, भीष्म साहनी, मंजूर एहतेशाम, अब्दूल बिस्मिह, नासिरा शर्मा, अल्का सरावगी, विभूति नारायण राय, दूधनाथ सिंह, बदीउज्जमा, भगवान सिंह, रवींद्र वर्मा, काशीनाथ सिंह, उर्दू में अमृतलाल नागर, अमृतलाल मदान, गितांजली श्री, प्रताप सहगल, इंतजार हुसैन, सलाम आजाद, शौकत सिद्दीकी, कुर्रतुल ऐन हैदर, अब्बूसमद आदि ने विभाजन की त्रासदी झेलनेवाले अनेक परिवारों की कथा के माध्यम से साम्प्रदायिकता की त्रासदी को समझाने का सफल प्रयास इन उपन्यासकारों ने किया है। “यह एक भीषण और अमानवीय त्रासदी थी, जिससे उपजी साम्प्रदायिकता को हिंदी और उर्दू के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास का विषय बनाया”¹

समाज और साहित्य का संबंध एक दूसरे के लिए पूरक है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो घटित होता है साहित्य उसी के नुसार निर्मित होता है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित होकर साहित्यकार अपनी रचनाओं का सृजन करता है। समाज में जो व्याप्त होता है उसकी निरंतरता हर कृति में एकसी नहीं होती। साहित्य परिवर्तन के साथ समाज व्यवस्था में भी बदलाव आता रहता है। इन सारी सामाजिक व्यवस्थाओं को साहित्यकार अपनी रचना में सांकेतिक रूप में समाविष्ट करता है। साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, इन विधाओं में उपन्यास महत्वपूर्ण विधा है। “समाज में घटित घटनाओं का अत्यंत सजग बोध उपन्यास के द्वारा मिलता है। इस सजग बोध व बोध वृत्ति से मनुष्य की बौद्धिकता या चेतना व्यापक हो जाती है।”² “मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं में अर्थात् जातीय, नैतिक, शैक्षणिक आदि सामाजिक व्यवस्थाएँ शामिल हो जाती हैं, इन सामाजिक व्यवस्थाओं का जिक्र न करने से साहित्य रचना अधूरी रह जाती है।”³

आज साम्प्रदायिकता के अनेक चेहरे हमारे सामने विद्यमान हैं। इतिहास बोध से पता चलता है कि साम्प्रदायिकता के बीज मध्यकाल में ही बोये गये थे और उन्हें फलने-फूलने का अवसर ब्रिटिश शासन व आज की राजनीतिक व्यवस्था ने दिखा। मध्यकाल में लुटमार, मारकाट हिंसा हुई पर अँग्रेजों ने हमारी कमजोरी का फायदा उठाकर हमारी एकता को नष्ट किया। 1984 का सिक्ख विरोधी दंगा, आयोध्या विवाद, 1988-89 का साम्प्रदायिक तनाव, 192 में बाबरी मस्जिद का ध्वंस, गुजरात दंगा, 1993 का मुंबई बॉम्ब ब्लाट आदि जैसी साम्प्रदायिकता का एक लंबा और भयानक सिलसिला जारी है। यह साम्प्रदायिकता सिर्फ हिंदू-मुसलमानों तक ही सिमित नहीं रही बल्कि बौद्ध-बौद्ध, शैव-वैष्णव के बीच संघर्षों की लम्बी परंपरा इतिहास में मौजूद है। आज हम देश में जिस साम्प्रदायिकता को देख रहे हैं, यह राष्ट्रवाद के चिंतन के साथ उभरा है तथा इसके अनेक पहलू हैं। भले ही साम्प्रदायिकता को धार्मिक रूप में रखने की कोशिश की जाती है, लेकिन इसके निहितार्थ राजनीतिक व सामाजिक हैं।

अमानवीयता के हर मुद्दे का प्रतिरोध करना साहित्यकार का समाज के प्रति दायित्व बन जाता है, जिसे साहित्यकार कथा साहित्य के माध्यम से पाठकों को जागरूक करने का धर्म निभा रहे हैं। प्रेमचंद कहते हैं, “जो कुछ असुंदर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असह्य हो जाता है। उसपर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता दिव्यता और भद्रता का ताना बांधे होता है। जो दलित है, पीडित है, वंचित है - चाहे वह व्यक्ति हो या समूह - उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है।”⁴

हिंदी के जाने माने साहित्यकार जिसने प्रेमचंद की परम्परा को अबाधित आगे बढ़ाया ऐसे महान लेखक यशपाल ने अपना उपन्यास ‘झूठा सच’ में देश की आजादी के बाद देश के बंटवारे के परिणामस्वरूप उपजी साम्प्रदायिक हिंसा की त्रासदी का बहुत सजीव और दहलाने वाला चित्रण किया है। इसी प्रकार भीष्म साहनी ने ‘तमस’ में उन परिस्थितियों और कारणों का विश्लेषण अंकित करने का प्रयास किया, जो देश के विभाजन और साम्प्रदायिकता के मूल में थे। उनका मानना है कि साम्प्रदायिकता की आग फैलाने का कार्य ब्रिटिश शासन और पिट्टूओं ने किया था, और वह एक बनी-बनाई योजना का अंग था।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यास लौटे हुए मुसाफिर में पाकिस्तान के नाम पर छले गए मुसलमानों के मोहभंग का अंकन किया है। राही मासूम रजा ने आधा गाँव में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हुए साम्प्रदायिक दंगों का भारतीय समाज, विशेषतया मुसलमानों के जीवन प पड़े प्रभावों का विशद रूप में चित्रण किया है। विभूति नारायण राय के उपन्यास ‘शहर में कफ़रू’ का शहर अपनी-अपनी आबादी के हिसाब से हिंदुस्तान और पाकिस्तान में तब्दील हो जाता है। जिस क्षेत्र में हिंदू अधिक थे वह इलाका हिंदुस्तान और जहाँ मुस्लिम अधिक थे वह इलाका पाकिस्तान जैसा बन जाता है। ऐसे में संघर्ष की तमाम परिस्थितियाँ उपजती हैं। एक

कफरू किस तरह लोगों की जिंदगी बदल देता है। इसी कफरू के कारण इलाज न होने से सईदा जैसी माओं की बेटियों की मृत्यु हो जाती है। कफरू से सबसे अधिक अगर किसी का नुकसान होता है तो वह है रोज कमाने और रोज खानेवाला मजदूर और कामगार वर्ग, जिसके यहां कफरू लगने से भूखों मरने की नौबत आ जाती है।

उसी तरह कमलेश्वर ने अपना दूसरा उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में भी साम्प्रदायिकता विरोधी दृष्टिकोण को चित्रित किया है। जो धर्म, राजनीति, देश, दुनिया और मानवता को बांटने, एक-दूसरे से अलग और लहलुहान करने की दानवी प्रवृत्ति को और उसके प्रतिरोध का अंकन किया है। यशपाल ने झूठा सच के अलावा 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में हिंदुओं और मुसलमानों के गहन भावात्मक, सौदार्हपूर्ण संबंध और राजनीतिक कारणों से उस विघटन का चित्रण, धर्म परिवर्तन कर ईसाई बने परिवारों की मानसिकता और मुस्लिम समाज की सामाजिक मानसिक बनावट का अंकन किया है।

दूधनाथ सिंह के 'आखिरी कलाम' में कथा की पृष्ठभूमि में बाबरी मस्जिद का विध्वंस है। यह उपन्यास राम जन्मभूमि में घटी घटनाओं को केंद्र में रखता है। इसमें भारतीय समाज में बढ़ती साम्प्रदायिकता का सामायिक चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने धर्म के ठेकेदारों और राजनेताओं द्वारा फैलाई जा रही घृणा, भेदभाव, और वैमनस्यता का सजीव चित्रण किया है। स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय जागरण में सबसे आगे रहनेवाली मीडिया ही आज भूमंडलीकरण एवं साम्प्रदायिकता के दौर में अपना स्वार्थ साधने के लिए राष्ट्रीय एकता को ताड़ रही है। प्रफु कोल'यान जी ने एक जगह लिखा है - "साम्प्रदायिकता और जातिवाद की चपेट का असर जगह है। दल और गिरोह की सत्ता अलग अलग नहीं है। कभी दल गिरोह जैसा व्यवहार करता है तो कभी गिरोह दल के रूप में सज धजकर सामने अलग आता है। हमारा समाज एक तरह से सामाजिक अपराध से लिप्त समाज बनता जा रहा है।"5

सन 6 दिसंबर 1992 में रामजन्म भूमि के नाम पर बाबरी मस्जिद का जो ध्वंस हुआ यह राजनीतिज्ञों की रणनीति का फलित है। यह साम्प्रदायिक सौंच की परिणति है। बाबरी मस्जिद की घटना एम धर्म विशेष के विरुद्ध छेड़ा गया जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे हुए। "बाबरी मस्जिद का ध्वंस मात्र एक अपराध या बर्बर काम नहीं था, वह भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष ढांचे को ढाने की कोशिश करनेवाला नृशंस कृत्य था।"6 इसी बाबरी मस्जिद के ध्वंस की समस्या को रवींद्र वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'निन्यानवे' में चित्रित किया है। दो लड़कियों के मिट्टी की मस्जिद बनाकर गिराने संबंधी एतराज के माध्यम से बयान किया है। दो लड़कियों के मस्जिद संबंधी एतराज पर उनकी पिटाई अन्य लड़कियों से होती है तो शिकायत प्रिन्सिपल तक पहुँचती है। प्रिन्सिपल का सोना राजनीतिज्ञों के मौन का प्रतीक है। इस उपन्यास में ब'ो का कहना है-"जनता क्या चाहती है, ब'ो कहता है यह खबर हमें नेता देते हैं। असल में जब वे कहते हैं कि जनता मंदिर चाहती है तो उसका मतलब होता है कि नेता मंदिर चाहते हैं यह राजनीति है।"7 काशीनाथ सिंह ने भी 'काशी का अस्सी' में मस्जिद को उठाया है। इसमें व्यंग्य की दृष्टिसे राजनीति से संबंधित तथ्यों को उजागर किया है। अयोध्या के तमाशे का उ'ेख देखिए-"अगर पाकग'ाम बनाइए तो कार सेवा के बहाने हम भी तमाशा देखने आयोध्या चले। आयोध्या की तरफ जाने वालों में अस्सी के कारसेवक भी हैं, वे राम का नाम लेकर नेताओं के उपदेश सुनकर कुछ सौचने से पहले अयोध्या की ओर आ रहे हैं उनके नारे देखिए -'रामलला हम आएंगे जुलूस के बोलने से पहले राय साहब का लाऊडस्पीकर बोलता मस्जिद वहीं बनाएंगे। उधर से बच्चा राम का।"8

एक तरफ धर्म केंद्रित राजनीति का विभास रूप है तथा दूसरी तरफ धार्मिक सम्प्रदायों के भीतर रूढ़िवादी ताकतों का हिंसक रूप। भलेही धर्म के भीतर निहीत अध्यात्मिक चेतना मनुष्य की अनिवार्यता होती है, पर दुखद तथ्य यह है कि धर्म का पहले भी दुरुपयोग होता रहा है और आज भी हो रहा है। अँग'ेजों ने हिंदु और मुसलमानों के मन में वैमनस्य का बीज बोकर अपना लक्ष्य पा लिया। इस कारण इकबाल व वीर

सावरकर जैसे देशभक्त भी सम्प्रदाय के नाम पर बंट गये। उदाहरण के लिए “आप कौन, मैं विनायक दामोदर सावरकर, पर आप तो राष्ट्रवादी थे, हिंदुत्ववादी नहीं। वह पाकिस्तान का इकबाल भी राष्ट्रवादी था, जिसने लिखा ‘सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तान हमारा’ पर देखते-देखते इन्सान शैतान में बदल गया।”⁹ विभाजन संबंधी माउंटबैटन का वक्तव्य देखिए-“आखिर मैंने उन्हें वही दिया है जो उन्होंने मांगा है। मैंने विभाजन की जरूरत को पं.नेहरू, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी से मंजूर करवा लिया है। अब उन्हें पाकिस्तान की निर्माण के ऐतिहासिक अवसर से पीछे नहीं हटना चाहिए।”¹⁰

अमृतलाल नागर ने ‘पीढीया’ उपन्यास में यह विभाजन राजनीतियों की कपट मानसिकता का ही परिणाम बताया है। हिंदू महासभा के वीर सावरकर ने समान भाव में बंधे भारत की परिकल्पना को मृगतृष्णा के समान जताया है। अलका सरावगी जी ने ‘कलिकथा वाया बाइपास’ उपन्यास में बंगाल के राजनीतिक मतभेद का उल्लेख किया है। हिंदू व मुसलमानों के बीच का संघर्ष अतीत से चला आ रही समस्या है। अगस्त 1946 में कलकत्ता में प्रारंभ हुए दंगे ने आखिरकार देश और बंगाल के विभाजन पर एक तरह से मुहर लगा दी।

नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास जिंदा मुहावरे में साम्प्रदायिक स्थिति से उत्पन्न मानव चेतना का अंकलन सक्षम रूप में किया है। भारत आजादी के पूर्व विशेष तबके के मुसलमान नेताओं ने आम भारतीय मुसलमानों को यह कहकर समझाया कि नया बननेवाला पाकिस्तान तुम्हारे सपनों का देश होगा। मुसलमानों में यह डर पैदा हो गया कि बहुसंख्य जनता उनके मजहब और संस्कृति को क्षति पहुँचाएंगी। परिणाम यह हुआ कि उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, गुजरात से मुसलमानों का पाकिस्तान के लिए प्रयाण शुरू हो गया है। बूढ़ों की जिंदगी असहाय हो गयी। लड़कियों की शादी मुश्किल हो गयी। मुसलमानों को वहां की जनता ने रूढ़ि से नहीं अपनाया। इस प्रकार धर्मान्धता की विजय और मनुष्यता पराजित हुई। नासिरा शर्मा ने लिख है - “आज दोनों देशों में रहनेवाली व जवान होते ही नस्लें बंटवारे जैसी ऐतिहासिक घटना की चश्मदीद गवाह नहीं हैं मगर उनकी अनुगूंज न किये हुए गुनाह की प्रताड़ना बन बचपन से उनका पीछा करती उनके दिल व दिमाग पर फसाद और कटाक्ष के रूप में कोड़े बरसाती उन्हें आत्मग्लानि के सरोवर में गर्दन तक डुबोती रही है।”¹¹

नासिरा जी ने बंटवारे के बाद रह गये और पाकिस्तान चले गये मुसलमानों की वेदना सहानुभूति व संवेदना के साथ अंकित किया है।

इन सबके अलावा बदीउज्जम्मा ने ‘छाको की वापसी’ में देश विभाजन के बाद बिहार से पूर्वी पाकिस्तान गए मुसलमानों के मोहभंग का चित्रण किया है। इसी तरह अमृतलाल मदान के ‘सिंधुपुत्र’, दीपचंद निमेहि के ‘और कितने अंधरे’, हरदर्शन सहगल के ‘टूटी हुई जमीन’ द्रोणवीर कोहली के ‘वाह कैप’ आदि उपन्यासों में देश विभाजन की त्रासदी और साम्प्रदायिक दंगों से बचकर आए शरणार्थी परिवार की कथा कही गई है।

हिंदी के साथ ही उर्दू में साम्प्रदायिक समस्या को लेकर खूब लेखन हुआ है, जिसमें सलाम आजाद का ‘टुटा मत’ कुर्रतुलन हैदर का ‘आग का दरिया’, इंतजार हुसैन का ‘बस्ती’ अब्दुसमद का ‘दो गज जमीन’ अब्दुल्लाह हुसैन का ‘उदास नसलें’ शौकत सिद्दीकी का ‘खुदा की बस्ती’ विशेष है। विभाजन की त्रासदी में अनगिनत परिवार जो दर-दर भटकने को मजबूर हो गए और लाखों की संख्या में ऐसे लोग थे, जो अपनी जन्मभूमि, अपना परिवार, जमीन, जायदाद, नाम, प्रतिष्ठा, आदि छोड़कर जाने को बाध्य हो गये।

जीवनमूल्य हर युग में बदलते रहते हैं किंतु विभाजन ने हमारे मूल्यों व विश्वासों की जड़े हिला दी। विभाजन के बाद परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगी। एक तो जीवन प्रति प्रतिक्रिया तीव्र एवं संवेदनाएँ बहुत गहरी थी। संसार में जहां जहां विभाजन हुआ वहां-वहां कभी न खत्म होनेवाली समस्याएँ दृष्टिगत हो रही हैं। यह विभाजन राजनीतियों की कपट मानसिकता की उपज है। साम्प्रदायिकता के नाम पर कई प्रकार की

भ्रांतियां चल रही हैं। उपन्यासकारों ने नैतिक मूल्यों के जहास व धार्मिक खोकलेपन का उद्घाटन किया है। साहित्यकार इतिहास नहीं रचता बल्कि इतिहास में निहित जिंदगी लिखता है। रचनाकार अपनी मन की भावनाओं अनुभवों विचारों से युक्त कृति का सृजन करता है ताकि जनता इस साम्प्रदायिक दलदल से निकलकर सच की पहचान करे और भारतीय संविधान की सुरक्षा करें।

संदर्भ :-

- 1) श्याम चरण दुबे, परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति
- 2) नंदकिशोर आचार्य - सर्जक का मन पृ.54.
- 3) मैनेजर पांडे - राष्ट्र और कर्म, पृ.37.
- 4) मूंशी प्रेमचंद
- 5) राम पुनियानी - साम्प्रदायिक राजनीति: तथ्य एवं मिथक पृ.14.
- 6) प्रफु कोल'यान - हंस - जनवरी 2002 पृ.67.
- 7) रवींद्र वर्मा - निन्यानवे - पृ.185.
- 8) काशिनाथ सिंह - काशी का अस्सी
- 9) कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान पृ.111.
- 10) कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान पृ.111.
- 11) नासिरा शर्मा - जिंदा मुहावरे - पृ.62.
- 12) समीक्षा - जुलाई - सितम्बर 1979 - साहित्य बनाम सांप्रदायिकता.



हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

श्री. हिरामण देवराम टोंगारे

सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग

राजे रामराव महाविद्यालय, जत.

जि. सांगली. 416404

हिंदी कथाकारों ने अपनी रचनाओं में नारी मुक्ति की अवधारणा को ध्यान में रखकर जो विचार व्यक्त किए हैं वे 'स्त्री विमर्श' के अन्तर्गत आते हैं। पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिती को दर्शाने के प्रयास उपन्यासों एवं कहानियों में बराबर होते आए हैं, किंतु इधर कुछ वर्षों से इसकी चर्चा अधिक होने लगी है। विशेष रूप से कुछ नारी लेखकों ने इस दिशा में विशेष प्रयास किए हैं। उस वर्ग से संबंधित होने के कारण वे नारी मन को अधिक प्रामाणिक ढंग से व्यक्त कर सकी हैं। आठवें दशक में महिला लेखिकाओं ने 'स्त्री विमर्श' को अपनी रचनाओं में अधिक उभारने का प्रयास किया। उषा प्रियवंदा, मन्नु भंडारी, दीप्ती खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, मनिका मोहिनी, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, सूर्यबाला, कृष्णा सोबती, निरूपमा सेवती, चित्रा मुदगल, राजी सेठ, प्रभा खेतान, नसिरा शर्मा, नमिता सिंह, सुधा आरोडा, मैत्रयी पुष्पा, एवं ममता कालिया, जैसे अनेक नाम आठवें दशक में उभरे तथा इनकी रचनाओं ने पाठकों का ध्यान भी आकृष्ट किया।

पुरुष लेखकों ने भी नारी की दशा का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। सर्वप्रथम 'गोदान' में प्रेमचंद ने मेहता के माध्यम से नारी की दशा का निरूपण किया, किंतु प्रेमचंद ने नारीमुक्ती आंदोलन का विरोध किया है, समर्थन नहीं। वे नारी का स्थान पुरुषों से श्रेष्ठ मानते हैं और नारी को यह सलाह देते हैं कि तुम्हें अपना क्षेत्र छोड़कर पुरुष के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए। पश्चिम का अनुकरण भारत की नारियों के लिए घातक है। मेहता जी विमेंस लीग में भाषण करते हुए कहते हैं। "यह पुरुषों का षडयंत्र है, देवियों को उंचे शिखर में खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरुषों का जो कायर हैं। जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व संभालने की क्षमता नहीं है जो स्वच्छंद काम क्रीडा की तरंगों में सांडो की भांति दूसरों की हरी-भरी खेती में मूंह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षडयंत्र सफल हो गया है। और देवियां तितलियां बन गईं। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि, इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी है विशेषकर हमारी शिक्षित बहनों पर वह जादू बड़ी तेजी से चढ़ रहा है। गृहणी का आदर्श त्यागकर तितलियों का मार्ग पकड़ रही हैं।"

प्रेमचंद के गोदान में व्यक्त ऐसे ही विचारों को नारी मुक्ती के समर्थकों ने ठूकरा दिया। 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेंद्र वर्मा) 'बसन्ती' (भीष्म सहानी) 'अर्ध्व नारीश्वर' (विष्णु प्रभाकर) 'बिना दरवाजे का मकान' (रामदरथ मिश्र) जैसी अनेक कृतियों में पुरुष लेखकों ने नारी के प्रति होने वाले अन्याय, का मुखर विरोध किया है, किंतु वे इस पक्ष में नहीं हैं कि नारी पुरुषों का अनुकरण कर अपने कार्यक्षेत्र में परिवर्तन करें।

'स्त्री विमर्श' के प्रारंभिक काल में पुरुष प्रधान समाज में नारी की दीन-हीन स्थिती का चित्रण करते हुए लेखिकाओं ने पुरुषों को दोषी ठहराया किंतु बाद में इस प्रवृत्ति का स्वयं विरोध भी किया। चित्रा मुदगल ने

अपने उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में लिखा "पुरुष विरोध करते हुए पुरुष की तरह निरंकुश और स्वच्छंद हो जाना नारी मुक्ति नहीं है।"

'नारी विमर्श' अभिव्यक्ति की मूल स्वर नारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं नारी-पुरुष की समानता के इर्द-गिर्द घुमता रहा है। आर्थिक स्वावलंबन के अभाव में नारी अपने ही परिवार में शोषित होती रही है, क्योंकि विरोध करने का न उसमें साहस है और न संबल। नारी-पुरुष के लिए समाज ने जो अलग अलग प्रतिमान निर्धारित कर रखे हैं उनका मुखर विरोधी भी कथा साहित्य में हुआ है। मैत्रिणी पुष्पा ने अपनी कहानी 'बेतवा बहती रही' में लिखा है। - "विभिन्न मानसिकता के दुमुहें समाज में आज की नारी मात्र वस्तु, मात्र सम्पत्ती, विनिमय की चीज है।"

नारी को मात्र भोग-विलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता का विरोध भी मुखर रूप में किया गया है। पुरुष भेड़ियों की तरह घात लगाए इस 'नरमिचारे' को उड़ाने के लिए उतावले रहते हैं ऐसी धारणा कथा लेखिका नमिता सिंह की है। 'अपनी सलिबे' नामक कहानी में वे लिखती हैं - "यह जिंदगी तो जैसे अंधेरे घने जंगल से निकलने वाली पगडण्डी का नाम है। कब किधर से कोई बाघ या भेड़िया हमला कर दे। किस पेड़ के पीछे से जंगली सुअर दौड़ता हुआ आए और टक्कर मारकर गिरा दे, कुछ पता नहीं।"

समाज में बेटा-बेटी में जो फर्क किया जाता है वह भी स्त्री को कचोटता है रामदरश मिश्र की कहानी 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी कहती है-"क्या स्त्रियों को कोई दुसरा ईश्वर पैदा करता है या यहाँ स्त्री-पुरुष के लिए दो नियम हैं।" आज की नारियों में आत्माभिमान है, वे अपनी स्थिती को सुधारणों के लिए प्राणपण से जुटी हुई हैं। वह जमाना चला गया जब स्त्रियों को गाय भैंस की तरह चाहे जिस खूँटे से बांध दो, वह उफफ तक न करती थी। अब वह अपने अधिकारों के प्रति सचिंत है। चित्रा मुदगल के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की अंकिता सुधांशु से कहती है - "औरत बोनसाई का पौधा नहीं है- जब जी चाहे उसकी जड़ें काटकर उसे वापस गमलों में रोप लिया। वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी कर सकती है।"

"कीर्तिकथा" नामक कहानी कीर्ती नारी की वर्तमान सामाजिक स्थिती का निरूपण इन शब्दों में करती है- "हर जगह पर औरतों का बुरा हाल है। समाज में कोई दुध का धुला नहीं। हर असहाय स्त्री आज भी शुद्र है, वस्तु है, साधन है, गुलाम है। इसीलिए वह नारी के स्वतंत्रता के अधिकार की जरूरत को समझाती है। उसे नारी के लिए 'बेचारी' सम्बोधन पर आपत्ति है।"

'स्त्री विमर्श' के अंतर्गत कुछ अन्य कथाकारों ने ऐसी नारियों का चित्रण भी किया है जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र एवं स्वावलंबी होकर विवाह संस्था का निषेध करती हैं और पुरुष के साथ 'कंपेनियन' बनकर रहना चाहती हैं, पत्नी बनकर नहीं। पत्नी बनने में उन्हें गुलामी की बु आती है अतः वे प्रेमिका बनकर रहना पसंद करती हैं, जिससे किसी बंधन में न पड़ें। वे पुरुष के स्वैराचार का अनुकरण करती हैं, पतिव्रत पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं तथा मातृत्व का निषेध करती हैं। 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेंद्र वर्मा) 'एक जमीन अपनी' (चित्रा मुदगल) में ऐसी नारी का चित्रण है जो ग्लैमर की दुनिया में संघर्ष उपलब्धी एवं भटकाव का अनुभव करती है। वर्जनाहीन, नैतिकता, विहीन जीवन जीते की ललक पाश्चात नारी मुक्ती के लिए उपयुक्त हो सकती हो, किंतु भारतीय परिवेश में यह स्वीकार्य नहीं है। चित्रा मुदगल के अनुसार - "मर्दों के भाँति रहना, वे समस्त आचार

व्यवहार, व्यवस्थाएँ अपनाता - यही समानता का दृष्टिकोण है?..... जब ये अव्यवस्थाएँ मर्दों के लिए अनैतिक, अमानवीय, और निरंकुशताएँ हैं तो स्त्री के लिए कैसे उचित हो सकती हैं।”

कहीं-कहीं नारी पुरुष अत्याचार का विरोध करती हुई उसकी प्रतिक्रिया में तथा प्रतिशोध भाव से युक्त होकर वह सब करने को विवश होती है जिससे पुरुष ने उसे पीड़ा पहुँचाई है। यदि उसका पति पर - नारी संसर्ग का आकांक्षी है तो वह पर-पुरुषों में आसक्त क्यों नहीं हो सकती, इस विषय को भी कथाकारों ने लिया है। नारी मुक्ति के समर्थकों को नारी से यौन सुचिता की अपेक्षा करना उपयुक्त नहीं लगता। जब पुरुषों में यह नहीं मिलती तो नारी से इसकी अपेक्षा क्यों? कौमार्य, सतीत्व, पतिव्रत, जैसी अवधारणाएँ अब आधुनिक नारी के संदर्भ में अप्रासंगिक हैं- यही स्त्री विमर्श के समर्थकों का तर्क है ‘चाक’ में रेशम और सारंग का दूसरों पुरुषों से यौन संबंध है तथा उन्हें इसका कोई पश्चात्ताप भी नहीं है। ‘मुझे चाँद चाहिए’ की वर्षा वशिष्ठ के भी परपुरुष से संबंध है, किंतु यह यौन स्वतंत्रता वस्तुतः पुरुषों की भोगलिप्सा अधिक है, नारी का अधिकार कम है।

‘एक जमीन अपनी’ की नीता सुधीर जैसे कई पुरुषों द्वारा छली जाती है। यदि इसी को नारी चेतना या स्त्री विमर्श की संज्ञा दी जाए तो यह प्रगतिकामी दृष्टि नहीं है। दूसरी ओर ‘रंगी हुई चिड़िया’ (धर्मेन्द्र गुप्त) की शीला रामेकर है जिसकी एक आवाज पर हजारों मजदूर एकत्र हो जाते हैं। उसे देखकर कोई नहीं कह सकता कि नारी ‘अबला’ है। नारी के इस अबलापन से मुक्ति भी स्त्री विमर्श का एक अंग है। ‘एक जमीन अपनी’ की अंकिता अपनी शर्तों पर संघर्ष कर रही है और कुत्सित समझौता नहीं करती। औरत जब अपने अंदर संघर्ष का जज्बा उत्पन्न कर अत्याचार एवं अन्याय के आगे झुकने से मना कर देती है और जयशंकर प्रसाद के नाटक धृवस्वामिनी की नायिका की भांती अपने कायर पति को चुनौती देती हुई कहती है कि “यदि तू मेरी, अपनी कुलमर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते। मैं उपहार में दी जाने वाली शीतल मणि नहीं हूँ मुझमें रक्त की तरल लालिमा भी है।”

आधुनिक नारी भले ही कोई युगांतकारी परिवर्तन न कर सके किंतु उसकी सोच तो बदली है। ‘अपनी सलीबें’ में नमिता सिंह ने साफ कहा है कि प्रबुद्ध नारियों को जागरण का कार्य अवश्य करना चाहिए। भले ही वे समुद्र पर सेतु न बांधें, रावण-मेघनाद को न मारे किंतु ऐसा करने की इच्छा तो व्यक्त करें - यही उसकी मुक्ति है, जिसका स्वागत किया जाना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि हिंदी कथाकारों की रचनाओं में इस ‘सोच’ एवं ‘वैचारिकता’ वाले नारी चरित्र गढ़े जा रहे हैं।

निष्कर्षतः - यही कहा जायेगा कि भारतीय नारी को समाज में बंधक बनाये रखा जाता है, वह अपने विचार, भावना, ईच्छा प्रकट नहीं कर पाती। समाज की उसकी ओर देखने की दृष्टि कुछ अलग है, वह इन चिजों से आजादी चाहती है, पर यह पुरुषप्रधान संस्कृति उसके आड आती है। इसीलिए समाज में स्त्रियों के बारे में विचार बदलने की जरूरत है। क्योंकि नारी यह प्रकृति को मिली एक बहुत बड़ी देन है, उसे संभालकर रखना चाहिए उसके बंधन की दिवारें खोल देनी चाहिए, जब वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाएगी तब वह चैन की साँस ले सकेगी तभी भारतीय समाज विकसित देश की ओर बढ़ता हुआ हमें दिखाई देगा।

यत्र नार्यस्तू पूजन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

यात्रोतास्तू न पूजन्ते, सर्वासात्रा फलाक्रिया॥

संदर्भसूची:-

- 1) चित्रा मुदगल :- एक जमिन अपनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2008.
- 2) मैत्रेयी पुष्पा :- बेतवा बहती रही , किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली 2006
- 3) नमीता सिंह :- अपनी सलीबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- 4) रामदरश मिश्र :- थकी हुई सुबह, इंद्र प्रस्त प्रकाशन, नई दिल्ली 1994
- 5) कश्मीरी लाला :- कीर्तिकथा, भवन प्रकाशन, नई दिल्ली - 1998.
- 6) जयशंकर प्रसाद :- ध्रुवस्वामिनी, भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली - 2011.
- 7) मुंशी प्रेमचंद :- गोदान, मंजुहम पब्लिशिंग हाऊस, भोपाळ.
- 8) डॉ. भरत सगरे :- दलित साहित्य शोध एवं दिशा, ग्रंथविशेष प्रतिष्ठान,पुणे- 2001.
- 9) डॉ. साताप्पा शामराव सावंत:- दलित कहानियों में नारी, सारंग प्रकाशन,वाराणसी 2014.



हिंदी नाट्य साहित्य एवं संवैधानिक मूल्य

डॉ. विरनाथ पांडुरंग हुमनाबादे

हिंदी विभाग

महात्मा फुले महाविद्यालय, किनगाव

तह. अहमदपूर जि.लातूर

जीवन के साथ जुड़ा शब्द 'मूल्य' है। चिंतन के क्षेत्र में एवं व्यावहारिक रूप से इस शब्द का उपयोग होता दिखाई देता है। यहाँ मूल्य यह शब्द संपूर्ण मानवी व्यवहार से अभिप्रेत है। इससे पता चलता है कि युगों से मानव मूल्यों का महत्व रहा है। यह जीवन मूल्य समाज संस्कृति और राष्ट्र की परम्परा से भी जुड़े थे। आधुनिक युग में भी यही मूल्य हमारे मानवीय दृष्टिकोण को नई सोच एवं उर्जा देने का काम करते हैं पर भारतीय संविधान द्वारा 'संवैधानिक मूल्यों' की प्रतिष्ठापना की गई।

भारतीय संविधान ने समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, धर्म निरपेक्षता, आदि नव मूल्यों को स्थापित किया। इनमें न केवल शासन तंत्र की व्यवस्था है अपितु सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन को भी उजागर किया है। स्वातंत्र्य पूर्व साहित्य युगों में अनेक साहित्यकारों ने अपने लेखन साहित्य में मानवीय मूल्यों को रेखांकित किया है पर उनमें असंदिग्धता थी मतांतर दिखाई देता था। जैसे- कोई साहित्यिक नारी की स्वतंत्रता स्वीकारता तो कोई उसे नकारता दिखाई देता है। कोई वर्ण व्यवस्था को अंगीकारता है तो कोई उसका विरोध करता है। किन्तु स्वातंत्र्योत्तर युग में साहित्य की विभिन्न विधाओं में संवैधानिक मूल्यों के प्रति सजगता दिखाई है। हिंदी साहित्य में नाटक यह एक महत्वपूर्ण विधा है जिसमें नाटककारों ने जीवनमूल्यों को दर्शाया है। जो हाशिए पर समाज था इनमें दलित, नारी, कृषक, आदिवासी आदि समाज के लोकतांत्रिक मूल्यों को पैरों तले कुचल दिया था इन पिछड़े वर्ग के प्रति हिंदी नाटक साहित्य के द्वारा न्याय देने का प्रयास किया है।

डॉ. वीणा गौतम लिखती हैं- "भारत के आचार-विचार, चिंतन-मनन को यदि वर्तमान में कोई बात झिंझोड रही है तो वह है मूल्यों की जीवन में बेमेल होना। अन्य विधाओं के समान नाट्य साहित्य का प्रयत्न एक नए आकाश की ओर बढ़ते हुए समाज के नए स्वरूप को तलाशकर नए जीवन मूल्यों को अपनाने में अपनी अहं भूमिका निभा रहा है।" हिंदी में ऐसे बहुत सारे नाटक हैं जिसमें संवैधानिक मूल्यों को बखूबी दर्शाया है। पुरानी समाजव्यवस्था को नकारकर समताधिष्ठित, स्वस्थ एवं सुंदर समाज की परिकल्पना की है। अपने लेखन साहित्य के माध्यम से जाति, धर्म, वर्ण आदि बंधनों से उपर उठकर देश की एकता, अखंडता एवं सौहार्द भावना को महत्व दिया है। नाथ साहित्य दीपधर्मी बनकर संवैधानिक मूल्यों का संरक्षण कर रहा है।

व्यक्ति, समाज और संस्कृति के विकास में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस संदर्भ में फ्रेंच विद्वान जॉ पॉल लिखते हैं- "साहित्य केवल साहित्य नहीं बल्कि कृति (Art) भी है, और मनुष्य को जो दुष्ट प्रकृति के विरुद्ध सतत संघर्ष चलता रहता है उस संघर्ष में लेखन यह प्रयोजन के तहत उपयोग में लाया जानेवाला शास्त्र है।" इसी बात को मद्देनजर रखते हुए हिंदी नाटककारों ने नई चेतना को उभारा है।

डॉ.लक्ष्मी नारायण लाल ने अपने 'सुखा सरोवर' इस नाटक में सामाजिक मूल्यों की स्थापना की है। वह लिखते हैं

"सरोवर पानी ही नहीं, "

प्यास भी है।

अपनी ही नहीं ,
सारी नगरी की ।

राजा भी हमारी तरह व्यक्ति है हम समाज है एक से एक मिलकर इसलिए हर व्यक्ति राजा है ।³ यहाँ सरोवर भारतीय लोकतांत्रिक चेतना का प्रतीक है । उक्त कथन में अनेक अर्थ अभिप्रेत होते हैं । आज सिंहासन प्राप्त करने के लिए गलत कदम उठाने में नहीं हिचकिचा रहे हैं । इसमें दोराय नहीं कि धर्म और राजनीति के गठबंधन ने जनता के शोषण को गहरा किया है, जातिभेद, प्लुआछुत, उंच-नीच के बीच धर्म एवं राजनीति की देन हैं।

शंकर शेष का ' बाढ का पानी ' यह मौलिक नाट्यकृति है, जिसमें लेखक ने जातिभेद के उपर उठकर नाटक का नायक चंदन गांव में बाढ आने पर सवर्णों के प्राण बचाता है, उन्हें अपने घर में आश्रय देकर भाईचारे की सीख देता है । ' राम की लडाई ' में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने सदियों से पददलित शोषित, उपेक्षित वर्ग की त्रासदी को स्वर दिया है । वह लिखते हैं-

“ जीते हो दरिद्रता करते हो अन्याय
बात करते हो आजादी की ।
राम और कृष्ण ने युद्ध किए हैं
फिर आई है स्वतंत्रता
उठाओ यह धनुष्य
फल प्राप्त करो राम ।
नष्ट हो सारी दरिद्रता । ”⁴

लेखक उक्त कथन से पिछड़े समुह को अपने श्रम एवं कर्म की महत्ता बताते नजर लगते हैं । हमारा संविधान सरकार की राजनैतिक, सामाजिक औद आर्थिक दिशा के निर्देशन का स्त्रोत है । डॉ. अंबेडकर चाहते थे कि संविधान के आचार पर श्रमिकों को छूट और समानता मिलनी जरूरी है और उसके संतुलन के लिए संविधान हो ।

हमारा संविधान सभी को जीने का बराबर का अधिकार देता है परन्तु कुछ लोग किसान, नारी, दलित आदि वर्ग का शोषण करते नजर आते हैं। नाटककार विष्णु प्रभाकर मानवतावादी रचनाकार हैं । वह अपने नाटकों में यथार्थ की अपेक्षा मानविय आदर्श मूल्यों को प्रस्थापित करते हैं। अपने 'अब और नहीं' इस नाट्य कृति में नारी की स्वतंत्रता पर बल दिया है। इस नाटक की मंजरी कहती है- “पुरुष अपने खोला के भीतर सदा सामंतवादी रहता है। निर्दयी, अधिनायक-वादी, क्रूर और अनुदार।” तो 'स्वेत कमल' नाटक की नायिका कहती है- “मैं पूछती हूँ पुरुष प्रधान समाज में नर-नारी के संबंध कैसे है? क्या वे एक-दुसरे के पूरक हैं या भक्षक ? ”⁵ सदियों से नारी पुरुषप्रधान समाज की कठपुतली रही है किन्तु आज नारी अपना अस्तित्व खुद बनाती नजर आ रही है । संविधान के चलते ही हमारी यहाँ सदियों से प्रताडित नारी आज प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक बन चुकी है । यह संविधानिक मूल्यों की ताकद है इसी की छाया हिंदी नाटकों में दिखाई देती है।

सदाचार यह मूल्य प्राचिन काल से चला आया है। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदि ने इस मूल्य पर सर्वाधिक बल दिया है किन्तु आधुनिक युग तक आते-आते सदाचार की जगह न्यभिचार, अनैतिकता, भ्रष्टाचार ने ली है । अधिकारी से लेकर राजनेता तक सभी जन देश एवं गरीबों को लुटते नजर आ रहे हैं । इसी कारण अमीर और गरीब की खाई बढती जा रही है । नाटककार मुद्राराक्षस ने अपनी नाट्य कृति ' आला अफसर ' में भ्रष्टाचार का सच्चा आईना दिखाते हुए कहा है-

“आ गये भेड़िये, खैर बकरे की मनाएं |
माँ कहाँ तक देखिए, खुन इसके युं लगा दे |
भेड़ के चेहत पहनकर, ये न छोड़ेंगे मिसाल
बांटता अंधा बताशे, दे खुद को बार-बार |”⁶

आज भ्रष्टाचार देश की गंभीर समस्या बन गई है | ‘ न्याय की रात ’ नाटक का पात्र हेमंत जनता के नजर में सम्मानित नेता है पर वह एक भ्रष्ट चालाक व्यक्ति है, जो बड़े-बड़े पूँजीपति और अफसरों को पैसों का प्रलोभन देकर उनसे गैर कानूनी काम करवाता है और उन्हें कानून से संरक्षण भी देता नजर आता है | वह कहता है- “ मेरा पेश है बेईमान व्यक्तियों के लिए परमिटों का इंतजाम करना... बड़े-बड़े ठेके दिलवाना |”⁷ हिन्दी नाटक साहित्य में ऐसे कई सारे नाटक हैं जिसमें कुकर्म को दर्शाया है | नाटककारों द्वारा इस नाटकों का उद्देश्य स्वतंत्र भारत से भ्रष्टाचार का समूल नाश करना और देश में गहरी एकता का प्रचार-प्रसार करना यही रहा है |

साहित्य जीवन से निकलता है अतः जीवन के मूल्यों को भी कोई नकार नहीं सकता | मानव मूल्य यह मानव को मानवता या मनुष्यत्व को इंसानियत को सिद्ध करनेवाले ऐसे गुण अथवा तत्व हैं जिसके अभाव में उन तत्वों की महत्ता या उपयोगिता कम नहीं होती बल्कि और बढ़ जाती है | यह तत्व मनुष्य की नीति से जुड़े हैं, इसलिए इसका नीति शास्त्र के अन्तर्गत अभ्यास किया जाता है | यह नैतिकता ही मनुष्य को बनाए रखने का काम करती है | उसे उदात्त भावभूमि तक पहुँचाती है | यह जीवन मूल्य मानवीय प्रतिष्ठा और गौरव के द्योजक हैं तभी डॉ. अंबेडकर ने शाश्वत जीवन मूल्यों को संविधान में स्थान दिया है |

साहित्य भी संविधान के समान देशनिष्ठा, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिकता, मूल्यात्मकता का साधन है | श्रमिक, शोषित , पीडित, वंचित आदि हाशिए पर का समाज साहित्य के केंद्र में रहता है | मनुष्य के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय, आर्थिक सभी प्रकार के शोषण एवं गुलामी को साहित्य नकारता है | वह शोषणमुक्त, समताधिष्ठित नव समाजनिर्मिती का प्रयास करता है | मानवी प्रतिष्ठा को सर्वोच्च मूल्य मानता है | इन संवैधानिक मूल्यों की स्थापना में हिन्दी नाटकों की महत्तम भूमिका रही है | हमें आशा है कि हिन्दी का नाटककार आगे भी समताधिष्ठित समाज निर्मिती के लिए अपने लेखन साहित्य में संवैधानिक मूल्यों को दर्शाता रहेगा जिसके कारण भेद रहित समाज रचना विकसित होगी

संदर्भ सूची :-

- १) डॉ. वीणा गौतम- हिंदी नाटक-आजतक पृ.१९७
- २) सार्त्र- वॉटस इस लिटरेचर पृ.६५
- ३) डॉ. लक्ष्मी नाराणलाल राम की लड़ाई पृ. ५८
- ४) डॉ. लक्ष्मी नाराणलाल - सूखा सरोवर पृ. १४
- ५) विष्णु प्रभाकर-अब और नहीं पृ.१५
- ६) मुद्राराक्षस-आला अफसर पृ.३५
- ७) डॉ.वीणा गौतम हिंदी नाटक आजतक पृ.२९५

हिंदी साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति

प्रा डाॅ विश्वनाथ किशनराव भालेराव

सहयोगी प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक

हिंदी विभाग प्रमुख

शिवाजी महाविद्यालय, उदगीर जिला लातूर

मानवीय जीवन में संवैधानिक मूल्यों को बहुत बड़ा महत्व है। किसी भी भाषा के साहित्य में समता, स्वतंत्रता एवं बंधुता आदि मूल्यों की अभिव्यक्ति होती ही है। लेखक किसी भी भाषा का, प्रांत या देश का हो वह मूल्य पर लिखता है। इसलिए साहित्य में मानवीय जीवन का दर्शन होता है। मनुष्य ने प्राचीनकाल से ही मानवीय सभ्यता का विकास किया है। आदिमानव का जीवन तथा मध्ययुग के मानवीय जीवन में अंतर दिखाई देता है। मनुष्य का विकास उसकी जिज्ञासा वृत्ति के कारण ही हुआ है। जीवन की ओर देखने की जिजीविषा, नए नए आविष्कारों का निर्माण करना एवं मनुष्य को एक संपन्न सुंदर जीवन जीने को प्रेरित करता है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से समृद्धि और संपदाओं को लेकर कोशिश करती रही है। आदिमानवों का जीवन, मध्ययुगीन मानव के जीवन और आधुनिक मानव जीवन में बदलाव दिखाई देता है। क्योंकि अनेक बदलावों के कारण उत्तरोत्तर काल में मनुष्य ने अनेक नए आविष्कार किए-कराए हैं। जिससे समाज, संस्कृति, सभ्यता एवं स्वयं को समृद्ध बनाता चला गया। समृद्धि के साथ साथ जीवन जीने की सामाजिक प्रक्रिया में विकास होता गया। समाज में परिवारों की संकल्पना एक बहुत बड़ी मानव जीवन में बदलाव की स्थिति है। परिवार समाज संप्रदाय धर्म यह मनुष्य के जीवन को समृद्ध बनाने के या सचेत और जागृत करने के माध्यम रहे थे। उस समय समतामूलक जीवन मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण था। क्योंकि संघर्ष की जड़े इतनी मजबूत थीं कि समता, स्वतंत्र, बंधुता आदि मूल्य प्रारंभिक मानवीय विकास में शुरुआती दौर में नहीं के बराबर थे। ऋषियों, मुनियों एवं संतों ने अपने समकालीन व्यवस्था को मूल्य के संबंध में जागरूकता फैलाने का प्रयास किया है। महात्मा गौतम बुद्ध, जैन महावीर, नाथ पंक्तियों ने तथा भक्ति आंदोलन के अनेक संतों ने इन मूल्यों की अभिव्यक्ति की है। आधुनिक भारत में अनेक विद्वानों, समाज सुधारकों, नेताओं ने मूल्य विषयक जागरूकता समाज में फैलाई है। जिससे आजादी के बाद यह मूल्य संवैधानिक दृष्टि से हमारे जीवन में आ गए हैं। हिंदी भाषा के साहित्यकारों ने मानवीय मूल्य का अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है।

जिससे अनेक साहित्यकार तथा भाषा के विद्वानों ने इन मूल्यों की संवैधानिक अभिव्यक्ति आनेवाली नई पीढ़ी के सम्मुख रखा है। मनुष्य जीवन के साथ जुड़ा हुआ शब्द मूल्य है। मूल्यों के कारण ही परिवार समाज और संस्कृति की पहचान होती है। मनुष्य के व्यावहारिक रूप में तथा चिंतन के क्षेत्र में इस शब्द का हमेशा प्रयोग होता रहा है। आदर्श जीवन मूल्य एक नई सभ्यता और संस्कृति को विकसित करने में सक्षम होते हैं। मूल्य शब्द हमारे गौरवशाली परंपरा को अभिव्यक्त करते हैं। साहित्य में जीवन के प्रति मूल्यों की अभिव्यक्ति होती ही है। 'साहित्य से भावा साहित्यम' जिसमें साहित्य की भावना है वह साहित्य है। साहित्य और मूल्यों का अटूट रिश्ता है। व्यवहारिक मूल्यों में एक प्रक्रिया है जिसे कसौटी के तौर पर देखा जा सकता है। यह मूल्य यानी संपूर्ण मानवीय व्यवहार को लेकर अभिप्रेत है। संस्कृत भाषा में 'मूलेन समो मूल्य' कह सकते हैं। शब्द के अर्थ परिवर्तन के कारण शब्द में व्यापकता दिखाई देती है।

संवैधानिक मूल्यों की परिभाषा निम्नलिखित रूप में हम देख सकते हैं ---

1. डी. एच. पार्कर के अनुसार मूल्य की परिभाषा इस प्रकार है -- "मूल्य पूर्णतः मन के साथ संबंधित है। इच्छा की पूर्ति वास्तविक मूल्य है। जिससे वह इच्छा पूरी होती है। वह केवल साधन है। मूल्य का संबंध हमेशा अनुभव से होता है किसी वस्तु के साथ नहीं।"¹
2. जैक आर. फ्रैंकलिन के अनुसार -- "मूल्य आचार, सौंदर्य, कुशलता या महत्व के वे मानदंड हैं, जिनका लोग समर्थन करते हैं जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम रखते हैं।"²
3. अर्बन के अनुसार -- "ऐसी कोई भी वस्तु मूल्य हो सकती है जो जीवन को आगे बढ़ाती है और जीवन को सुरक्षित करती है।"³
4. वुड्स ने मूल्य की परिभाषा इस प्रकार से की है -

"मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत हैं। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं।"⁴

5. डॉ मुखर्जी ने एक विलक्षण ढंग से मूल्य की परिभाषा की है

"मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएं एवं लक्ष्य हैं जिनका अंतरिकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और व्यक्ति श्रेष्ठ अधिमान, मान तथा अभिलाषाएं बन जाती है।"⁵

इन परिभाषाओं से हम यह बोध ले सकते हैं कि मूल्य एक प्रकार से मनुष्य जीवन को आचार, विचार, व्यवहार को लेकर योगदान देता है। शील और चारित्रिक विशेषताओं के नजदीक ले जाता है। वह मूल्य मानवीय जीवन को समाज में प्रचलित साधनों और उद्देश्य के मानदंड को सहायता प्रदान करते हैं। हमें मूल्यों के प्रति हमेशा से आदर भाव युक्त होना चाहिए। मूल्यों की रक्षा करना ही मनुष्यता का मुख्य कार्य है। हमारे जीवन को सौंदर्य संपन्न एवं आदर्श युक्त करना हो तो उसमें मूल्यों का होना आवश्यक है। वर्तमान समय में मनुष्य ने अपना भौतिक विकास तो किया है। मनुष्य को जीवन मूल्यों की भी आवश्यकता होती है। प्राचीन काल से लेकर मूल्य तो हमेशा परिवर्तित होते आए हैं। पुराने मूल्यों को छोड़ मनुष्य ने हमेशा नए मूल्यों को स्वीकारा है। आज मूल्यों का निर्माण स्वयं आदमी खुद अपने लिए कर रहा है। पर ऐसे भी मूल्य चिरंतन शाश्वत रहे हैं। जिसमें नैतिक मूल्य- त्याग, समर्पण, समता, स्वतंत्र, बंधुता, अहिंसा, सेवा, न्याय आदि। भौतिक समृद्धि के साथ-साथ इन मूल्यों में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक बदलाव की संभावना दिखाई देती है। साहित्य के हर विधा में मूल्यों को प्रतिष्ठा अलग-अलग प्रकार से अभिव्यक्त होती है। साहित्यकार अपने समकालीन मूल्य व्यवस्था की अभिव्यक्ति रचनाओं के माध्यम से समाज तक पहुंचाने का प्रयास करते हैं। साहित्यिक रचनाएं मूल्यहीन नहीं होती, उसमें मूल्यों की ही अभिव्यक्ति होती है।

संत नामदेव ने मानवता, समता, स्वतंत्रता, बंधुता का संदेश पूरे भारतवर्ष में फैलाया था। हिंदू और मुस्लिम धर्मियों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। महात्मा कबीरदास भारत के पहले विद्रोही क्रांतिकारी समाज सुधारक हैं। बुरी व्यवस्था के प्रति विद्रोह करनेवाले व्यक्तित्व के रूप में महात्मा कबीरदास की बराबरी कोई नहीं करता। कबीर में समता और स्वतंत्रता के आधुनिक मूल्यों की अभिव्यक्ति मिलती है। वे विवेकवादी थे, उन्होंने ज्ञान को सर्वोपरि माना है।

"अपने जीवन और समाज की विषम भावना को आत्मसात कर उन्होंने मानव मात्र के एक नवजीवन की स्फूर्त चेतना के द्वारा न्यायसंगत तथा मूल्य सापेक्ष जीवन दशा प्रदान की। उन्होंने भूत मात्र की व्यथा को महसूस किया तथा उसे अपनी व्यथा का रूप देकर अभिव्यक्त किया। बड़े दर्द भरे आक्रोश के साथ उस मनोव्यथा को मानवतावादी मूल्य तथा समष्टिगत लोकमंगल चेतना से जोड़कर कबीर ने अपने सत्य के परत दर परत उन्मीलित करते हुए इतना कुछ कह दिया कि आज भी हम उस पर सोचने के लिए बरबस मजबूर होते हैं।" ⁶ मध्य युगीन सभी संत कवियों ने जनमानस में समता, स्वतंत्रता, बंधुता आदि मूल्यों को स्थापित किया है। महाकवि तुलसीदास ने रामचरित्रमानस रचना के माध्यम से भारतीय संस्कृति के आदर्श चरित्रों को अभिव्यक्त किया है।

हिंदी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति की है। व्यवस्था और समाज के स्वभाव में, उनकी कार्यशैली में न्याय, बंधुत्व, समानता, सहभागिता, स्वतंत्रता और करुणा के मूल्य कैसे प्रवाहित हों, इसके विचार आज़ाद भारत में संविधान के माध्यम से हुए हैं। डॉ. बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर ने शोषित पीड़ित दलित समाज को समानता के प्रवाह में लाने का महान कार्य किया है। उन्होंने मानवीय मूल्यों की रचना संविधान के माध्यम से की है। साहित्यकारों ने भी मानवीय और संवैधानिक मूल्यों को अपने व्यवहार के केंद्र में लाने का कार्य किया है। संविधान देश को संचालित करने के लिए मूल्य आधारित व्यवस्था बनाता है। इन सब प्रावधानों का तो थोड़ा बहुत ख्याल रखा भी जाता है। व्यवस्था और समाज के स्वभाव में, उनकी कार्यशैली में न्याय, बंधुत्व, समानता, सहभागिता, स्वतंत्रता और करुणा के मूल्य कैसे प्रवाहित हों। इसका इसका जीता जागता उदाहरण हमें संविधान के माध्यम से मिला है। कुछ बुनियादी ढांचे को बदलाव करने में सक्षम कार्य करने की कोशिश होनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप यह है कि जब एक जाति यह मानने लगे कि दूसरे जाति और उसके मानने वालों को बस्ती में केवल रहने के अधिकार हैं। यह संकुचित मानसिकता हो तब यह अहसास पैदा होता है कि जातियों में भी बुनियादी मानवीय मूल्य चरमराने लगे हैं। जिसका माननीय जीवन पर गहरा असर पड़ सकता है और मानवीय मूल्य टूट सकते हैं।

विभिन्नता हमारे देश की पहचान है किन्तु विविधता में एकता हमारी विरासत भी है। विभिन्न भाषाएं विभिन्न संस्कृतियों, और विभिन्न धार्मिक सामाजिक प्रस्थितियों के बावजूद भी एकात्मकता आकर्षक एक अहम पैमाना भी है। इसमें अलग-अलग समुदाय हैं, उनकी अपनी-अपनी संस्कृति है। उनकी अपनी-अपनी भाषाएं हैं। अपने-अपने त्यौहार और उत्सव हैं। कोई सगुण भक्ति भावना से प्रेरित है तो कोई निराकार निर्गुण भक्ति भावना से प्रेरित होकर जीवन जीते हैं। यहां का मूलनिवासी समाज प्रकृति को अपना ब्रह्म मानता है और प्राकृतिक रूप से जीवन जीता है। यहां उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि जब विविधता का सम्मान करते हुए सामाजिक व्यवहार को संगठित रूप दिया जाता है और जब मूल्यों से उनका शृंगार किया जाता है, तब ही संस्कृति और समाज की आभा निखर कर सामने आती है। सामाजिक चरित्र को गढ़ने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मूल्य पूर्णतः मानवीय जीवन में निर्णय कैसे लिए जाए इसके महत्व को समझाते हैं। कोई एक व्यक्ति या परिवार निर्णय लेगा अथवा निर्णय लेने की प्रक्रिया में सबकी भूमिका और सहभागिता होगी। यह सहभागिता एक प्रकार से मूल्य है। कई लोगों और कई परिवारों से मिलकर एक समुदाय बनता है। लोगों और परिवारों के बीच आपसी व्यवहार समाज में होता है। समाज और संस्कृति एवं धर्म में किस तरह का व्यवहार होगा, यह भी तो मूल्यों से ही तय होता है। यानी हम मानवीय व्यवहार करेंगे अथवा नहीं। हो सकता है कि कुछ परिवार विपन्नावस्था में होंगे और उनके पास जीवन जीने के संसाधन नहीं होंगे। क्या ऐसे में वे अपने जीवन में गरिमामय व्यवहार और बुनियादी

सेवाओं को हासिल करने या बुनियादी जरूरतों को पूर्ण करने से वंचित रहेंगे। फिर शासन और समाज मिलकर उनके जीवन को समृद्ध बनाने में मदद करेंगे। यही कार्य हमें इंसानियत के मूल्य सीखाते हैं।

कुछ लोग ठंडे या बर्फीले इलाकों में रहते हैं। कुछ लोग रेगिस्तानी क्षेत्रों में, कुछ लोग समतल इलाकों में, कुछ लोग पहाड़ी प्रदेश में, कुछ लोग समुद्री किनारों पर क्या इन सभी जगहों पर व्यवहार आचार-विचार खान पान की व्यवस्था एक जैसी होगी। उनकी रोजमर्रा के जीवन में सामग्री का उपयोग एक जैसा होगा। इनके जीवन में विभिन्नता दिखाई देती है। क्या इन सभी जगहों पर पहनावा और रहन-सहन एक जैसा हो सकता है। यह समानता संभव नहीं हो सकती। यदि सभी जगहों को एक ही नीति से संचालित करने की कोशिश करेंगे तो केवल हमें अपने जीवन में नुकसान पहुंच सकता है। ऐसी स्थितियों में अलग-अलग समुदायों को उनके खान-पान, रहन-सहन के तरीकों के साथ सहजता से स्वीकार करना एवं उनसे बराबरी और गरिमा का व्यवहार का उनमें निर्माण करना। उनको एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करना। विविधता का सम्मान करते हुए बंधुता का व्यवहार करना एक अहम मूल्य है। स्त्री और पुरुष प्राकृतिक बनावट भर में भिन्न हैं लेकिन उनकी क्षमताओं में कोई अंतर नहीं है। ऐसे में हर व्यक्ति के योगदान को अंतर्गमन से महसूस करना और उसे स्वीकार करना यह व्यवहार समानता के मूल्य का महत्व प्रतिपादित करता है।

राजनीति भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, चेहराविहीन कानून और नौकरशाही की क्रूरता, उपभोक्तावाद संस्कृति के दुष्प्रभाव के कारण मानवीय जीवन में मूल्यों की टूटने की स्थितियां पैदा हुई हैं। 'सोचती है औरत' इस काव्य संकलन में कुमार नयन ने आज के संदर्भ में कहा है -- "स्वामी विवेकानंद का भूख गुलामी से आजादी का आवाहन, बापू का सत्याग्रह स्वदेशी आंदोलन लोहिया, जयप्रकाश, बाबासाहब अंबेडकर, मार्क्स, लेनिन, प्रेमचंद, टाल्सटाय, गोरकी, बर्नाड शॉ के विचारों, क्रांतियों पर मंथन करते हुए चाहते हैं जो सांप्रदायिकता से आजादी भूख, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार से आजादी जनता के बरक्स खड़े एकांगी लोकतंत्र से आजादी।" ⁷

इस दृष्टि से साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में होती रही है। साहित्यकार साहित्य की ज़मीन को उर्वर बनाता है। भारतीय साहित्यकारों की रचनाएं हमें संवैधानिक मूल्यों को स्थापित करने में सक्षम रही हैं। कोई भी रचनाकार मानवीय मूल्यों से हटकर अपने विचारों को व्यक्त नहीं कर सकता। इसलिए किसी भी राष्ट्र में तथा मानवतावादी दृष्टिकोण से हमें अपने अनमोल मूल्य को ही अपना सहयोग प्रदान करने हैं। यही मानवीय मूल्य मनुष्य को समृद्ध एवं संपन्न बनाने में सहायक होते हैं। मनुष्य को मनुष्य की गरिमा में प्रतिष्ठित करने में मूल्य ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. मूल्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं -- डॉ कैलाश मीना
2. मूल्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं -- डॉ कैलाश मीना
3. मूल्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं -- डॉ कैलाश मीना
4. मूल्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं -- डॉ कैलाश मीना
5. मूल्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं -- डॉ कैलाश मीना
6. कबीर चिंतन - डॉ ब्रज भूषण शर्मा - हाशिए पर
7. सोचती है औरत - कुमार नयन पृष्ठ संख्या 81

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में अभिव्यक्त संवैधानिक मूल्य
(रक्त कमल , एक सत्य हरिश्चंद्र एवं गंगामाटी नाटक के विशेष संदर्भ में)

शोध निर्देशक:

डॉ. मृगेन्द्र कुमार राय ।

शोधछात्रा,

श्रीमती गौतमी अनुप पाटील,

हिंदी विभाग

गुरुनानक खालसा महाविद्यालय आर्ट्स, सायन्स और कॉमर्स

नाथालाल पारेख मार्ग, माटुंगा , मुंबई,

महाराष्ट्र ४०००१९ ।

सारसंक्षेप :

संविधान शब्द का प्रयोग देश के मूल्य सिद्धांत, कानून और नियमों के संदर्भों में किया जाता है। देश के मूलभूत कायदे-कानून को संविधान के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। संविधान लिखित एवं अलिखित दोनों रूपों में पाया जाता है। भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित स्वरूप का संविधान है। स्वतंत्रता आंदोलन स जनता के हृदय में उत्पन्न हुई समस्त सकारात्मक आकांक्षाओं का विचार भारतीय संविधान सृजन के समय हुआ है।

संविधान के कारण ही देश की जनता की आवश्यकताएँ पूर्ण हुई और देश अधिक सक्षम बना । 9 दिसंबर, 1946 को संविधान बनने का कार्य आरंभ हुआ और 26 नवंबर, 1949 के दिन संविधान का संपूर्ण प्रारूप अंगीकार किया गया।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिंदी के बहुमुखी साहित्यकार हैं। परंतु विशेष रूप से डॉ. लाल नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हुए। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म 4 मार्च, 1927 ई. को उत्तर प्रदेश के जिला बस्ती के जलालपुर गाँव में हुआ। बचपन में नाटककार लाल रामलीला, नौटंकी, बिदेशिया जैसी लोकरंगभूमि से भलिभाँति परिचित हुए, नौकरी-व्यवसाय के कारण डॉ. लाल शहरों से जुड़े । कारणवश उनके सृजन कृतियों में भारतीय संस्कृति की, सामान्यजनमानस के सुख-दुःखों की जड़े गहराई से परिलक्षित होती हैं। उनके नाटक आम जनता के जीवन के यथार्थ एवं आंतरिक द्वंद्व का निरूपण करते हैं।

मुख्य शब्द :

- 1) मूल्य : मूल्य का अर्थ दाम अथवा कीमत होता है, अर्थात् प्रत्येक वह वस्तु, क्रिया जिसका अपने जीवन में अनन्यसाधारण महत्व होता है वह मूल्य कहलाता है।
- 2) समानता : समानता का अभिप्राय प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के लिए समान अधिकार एवं अवसर प्राप्त होने से है। समाज के अनेक दुर्बल घटक युगों युगों से संपन्न एवं उच्च वर्गों द्वारा शोषित हुए हैं , उन्हें नैतिक दृष्टि से समता प्रदान करना एवं मुख्य प्रवाह में सम्मिलित करना याने समानता है।
- 3) शोषण : दुर्बलों के श्रम , शरीर , शक्ति एवं बल का अनुचित फायदा उठाना याने शोषण है। समाज में शोषण गरीबों का, महिलाओं का ,बालकों का , यौन का अत्याधिक रूप में लक्षित होता है।

- 4) नाटक : नाटक काव्य का एक रूप है। नट एवं नटी अपने अभिनय कौशल्य के माध्यम से मंच पर दर्शकों का मनोरंजन करते हैं, उसे नाटक कहते हैं। नाटक एक साहित्यिक विधा है। नाटक का विभाजन कथावस्तु, पात्र, संवाद, शिल्प आदि द्वारा होता है।
- 5) संवैधानिक : संवैधानिक का अर्थ संविधान में लिखा अथवा कहा गया दस्तावेज़ है।

प्रस्तावना :

भारत के संविधान में सम्प्रभुता, समाजवाद, पंथ निरपेक्षता, लोकतंत्र, गणतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता, अन्तरराष्ट्रीय शांति तथा न्यायसंगत अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था एवं मौलिक कर्तव्य इन मूलभूत मूल्यों का समावेश हुआ है। भारतीय संविधान देश के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार, समान हक एवं समान न्याय प्रदान करता है। स्त्री अथवा पुरुष, बालक अथवा प्रौढ़, प्रत्येक जाति, समुदाय, पंथ एवं धर्म का हर एक मनुष्य को संविधान समसमान दृष्टि से देखता है। हमारे देश में सर्वमत से भारतीय गणतंत्र का स्वीकार किया गया। विश्व को सत्य, अहिंसा, बंधुता की शिक्षा एवं दीक्षा देने वाला भारत देश और उसका लिखित स्वरूप में श्रेष्ठ संविधान अनंत काल तक संसार के लिए मार्गदर्शक रहेगा।

भारतीय संविधान द्वारा समता एवं बंधुता का स्वीकार किया गया, उसका मूल उद्देश्य देश का पीछड़ा वर्ग, युगों - युगों से उत्पीड़ित स्त्री, शोषित मज़दूर, पूँजिपतियों द्वारा हुए शोषण, समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाएं आदि को रोक लें। इससे अधिक उन समस्त पीड़ित वर्ग के साथ मानव जैसा व्यवहार हो, उन्हें भी सम्मानपूर्वक जीवन जीने का हक प्राप्त हो। परंतु दूर्भाग्य से वर्तमान युग में भी समाज में ऐसी कई घटनाएँ घटित होती हैं, जो मनुष्य को विश्व का सबसे प्रगतिशील सामाजिक प्राणी होने के बावजूद उसे पतन के कगार पर ले जाने के लिए विवश करती हैं जो उसके लिए शर्मनाक स्थिति उत्पन्न करती हैं।

ऐसे अनेक शोषित एवं पीड़ितों की वेदना को डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटकों में वाणी प्रदान की। उनकी प्रथम नाट्यकृति 'अंधा कुआँ' ग्रामीण भारतीय स्त्री के दुःखों का सजीव लेखाजोखा की प्रस्तुति है। 'अंधा कुआँ' की नायिका सूका के जैसी ही 'रातरानी' नाटक की कुंतल सुशिक्षित, नगरीय परिवेश में सुखवस्तु जीवन जीनेवाली स्त्री होने के बावजूद भी उत्पीड़ित ही है। 'राम की लड़ाई', 'एक सत्य हरिश्चंद्र' एवं 'गंगामाटी' जैसे नाटकों के माध्यम से डॉ. लाल छुआछूत एवं वर्णभेद के विरुद्ध पाठकों एवं दर्शकों को सचेत करते हैं। प्रस्तुत शोधालेख में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के कुछ विशिष्ट नाटक 'रक्त कमल', 'एक सत्य हरिश्चंद्र' एवं 'गंगामाटी' में अभिव्यक्त संवैधानिक मूल्यों की चर्चा करना हमारा अभिष्ट है।

अध्ययन क्षेत्र :

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने देश की परतंत्रता देखी थी, गांधीवादी विचारधारा का लाल पर गहरा प्रभाव है, यही प्रभाव उनके नाटकों पर भी प्रखरता से लक्षित होता है। देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई परंतु जिन सकारात्मक परिवर्तन की अभिलाषा सामान्य जनता के मन में थी, वह परिपूर्ण न हो पायी। राजनीतिक, आर्थिक एवं नैतिक परिवेश अस्तव्यस्त हो गया। समाज में सामाजिक एवं आर्थिक विषमता प्रचुर मात्रा में फैली हुई थी। समाज में व्याप्त धर्म, प्रथा एवं परंपरा का आडंबर, राजनीति में फैला भ्रष्टाचार, पूँजिपतियों द्वारा गरीबों का होता शोषण डॉ. लाल देख रहे थे, समाज में परिवर्तन लाना उन्होंने अपना दायित्व माना और अपनी भूमिका सफलतापूर्वक रंगमंच द्वारा अभिव्यक्त की।

हज़ारों वर्षों से भारतीय समाज में असमानता व्याप्त थी। भारतीय समाज अनेक धर्मों, विविध जाति एवं वर्णों में विभक्त था, दुर्भाग्य से आजादी के ७५ वर्षों के बाद भी सामाजिक विषमता, धर्माधता, वर्णित भेद की स्थिति आज भी भारतीय समाज में विद्यमान है। भारतीय सामाजिक जीवन की इन्हीं विषमताओं एवं असमानता को समाप्त करने के लिए हमारे संविधान निर्माताओं ने समानता के अधिकारों की बात कही है, यही नहीं भारतीय संविधान ने भारत के प्रत्येक नागरिक को मूलभूत अधिकार दिए, चाहे उच्च हो या नीच, अमीर हो या गरीब सबको समान अधिकार मिले। जिसके कारण प्रत्येक भारतीय नागरिक को फिर चाहें, किसी भी धर्म का, जाति का, वर्ण का, लिंग का अथवा उसके जन्म स्थान के कारण भेदभाव न कर समान रूप से शिक्षा, नौकरी आदि का अवसर प्रदान किया गया। जिसका मूल उद्देश्य समाज के वंचित, पीड़ित एवं शोषितों को समान रूप से प्रगत एवं विकसित करना था।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा लिखित नाटक 'रक्त कमल' सन् 1962 ई. में प्रकाशित हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में भ्रष्टाचार, शोषण, अनैतिकता, घूसखोरी पनपती गयी। तब भारत के अनेक नवयुवकों ने देश में नवजागरण और नवचेतना का भगिरथ प्रयास किया। डॉ. लाल के नाटक 'रक्त कमल' का नायक कमल उन्हीं नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करता है। कमल सर्वोपरी आदर्श पुरुष है, जिसके भीतर महात्मा गांधी की छबी झलकती है। कमल कहता है, "गांधीजी के रास्ते की मंजिल इस देश की आजादी थी। वह अपने इस महान धर्म में पूर्ण हुए किन्तु जब वह अपनी इस मंजिल को पारकर फिर देश को शुद्ध करने चले, इसके दूषित मन-प्राण को परिवर्तित करने चले, तो इसी कुरूप समाज ने उन्हें गोली मार दी। क्योंकि आजादी के बाद वह केवल मसीहा थे, राजतन्त्र नहीं। राजतन्त्र तो उस समाज के हाथ में चला गया था, जिसमें गुलामी के वे सारे नासूर अभी जिन्दा थे - जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रान्तीयता, गुंडागिरी, अमीरी और गरीबी! और इन सबके बीच शक्ति प्राप्त करने की भयानक भूख!"¹

ऐसे आदर्श पुरुष केवल मिथकों में पाए जाते हैं, परंतु डॉ. लाल ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण जान-बूझकर करते हैं। जो संपूर्ण भारत को एकरूप देना चाहता है, जो समाज में समानता लाना चाहता है। गांधीजी के उपरांत संपूर्ण देश को एकसूत्र में बाँधकर रखनेवाले नायक की राह देश की गरीब जनता देखती रही। 'रक्त कमल' का नायक वैसा ही है, जो प्रत्येक जाति एवं धर्म-समुदाय के भीतर भारतीयता की भावना जागृत करता है।

कमल एवं महावीरदास दोनों भाई हैं। महावीरदास पूँजिपति वर्ग का प्रतिनिधि है, अपने इलाके में वे कॉस्मेटिक की फैक्टरी लगवाना चाहते हैं, इसलिए वे गाँव के एक गरीब किसान की हत्या कर उसकी ज़मीन हड़प लेते हैं। उनका छोटा भाई कमल विदेश से अपनी शिक्षा प्राप्त कर लौटा है। विदेश में उसने भारत एवं भारतीय समाज के प्रति अत्यंत अपमानजनक शब्दों का अनुभव किया। कमल को प्रकर्षता से प्रतीत हुआ कि स्वातंत्र्य प्राप्त होने के उपरांत भी हम वास्तविक स्वतंत्रता के प्रति अनभिज्ञ हैं।

कमल सभी जाति एवं धर्म के अपने समवयस्क मित्रों को एकत्रित कर परिवर्तन की कामना करता है। देश के उद्धार के लिए वह एक नाटक प्रस्तुत करना चाहता है,

"गंगा रे जमुनवा की धार नयनवाँ से नीर बही।

फूटल भारतिया को भाग भारत माता रोय रही ॥

सब मिलि चली इक साथ

¹ रक्त कमल, पृष्ठ 83, लक्ष्मीनारायण लाल

आजु सखि देखन को!
कउन डगरिया भारत माता
कउन डगरिया सुराज
आजु सखि देखन कौ।"²

इस प्रकार कमल सर्वप्रथम अपने परिवार से ही इस विषमता एवं भेदभाव करता है। कमल के विद्रोह का मार्ग शांति, अहिंसा से परिपूर्ण सत्याग्रह का है।

महावीर प्रसाद के भाँति गुरु, एम. एल. ए. इंद्रजीत, बिल्लुसिंह भी समाज में तनाव एवं अशांति को फैलाने के लिए ही कार्यरत रहते हैं। सारंग और कनु के संदर्भ में गुरुराम का वक्तव्य अत्यंत घृणास्पद है, "शूद्र की जात, इन्हें जूते से बात।"³ वास्तव में ऐसे ही विचारों से भरे 'मनुस्मृति' ग्रंथ को जलाकर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने देश को संविधान दिया, डॉ. आंबेडकर के स्वप्न का भारत जातिविरहित एवं धर्मनिरपेक्ष देश था, परंतु दुर्भाग्य से महात्मा गांधी, महात्मा फूले, डॉ. आंबेडकर के महान विचारों की अवहेलना कर गुरु, महावीर प्रसाद जैसे व्यक्ति देश की गरीब एवं वंचित जनता का शोषण करने में स्वयं को धन्य ही धन्यता मानते हैं।

डॉ. करुणा शर्मा के इस संदर्भ के विचार अत्यंत सोचनीय हैं, "देश के संविधान में छुआछूत को कानूनी रूप से अवैध करार देने के बावजूद यह समस्या बढ़ती ही गई। धर्मनिरपेक्ष राज्य में धार्मिक संकीर्णता और जातीय द्वेष का ही बोलबाला रहा। सांप्रदायिक दंगों के धार्मिकता और भेदभाव की भावना को प्रोत्साहन दिया। राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के कारण जातीय भेदभाव उत्पन्न करते रहे। इसी प्रकार छुआछूत की समस्या भी हिंदू समाज में भयंकर बीमारी के समान निरंतर बढ़ती ही गई।"⁴

कमल गाँव की नीची जाति, मुसलमान एवं ईसाई धर्म के भाई-बहनों को एकरूप कर अपने नाटक की रचना करता है। इस नाटक के भीतर एक अन्य नाटक का आयोजन कर भारत की देवता का चरित्र निर्माण किया है, वह बेड़ियों में ज़ख्मी भारत देवता अपनी परतंत्रता और गुलामी को उजागर करती है। देश की सत्ता एवं वर्तमान चंद राजनेता एवं पूँजिपतियों के हाथों में बंद है। पहले देश की दूरावस्था के ज़िम्मेदार अँग्रेजों को कहा जाता था, परंतु अब तो देश में अँग्रेज नहीं है, फिर भी देश विकास एवं प्रगति से काफी दूर है। इसका मुख्य कारण देश अनेक जाति, धर्म, भाषा, प्रांत, समुदाय एवं राज्यों में विभक्त है। देश के हुए बाहरी बँटवारे से अधिक दर्दनाक अंतर्गत बँटवारा हैं।

देश की देवता अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहती हैं, "लोग मेरे ही भीतर आपस में ही लड़ते रहे, ताकि मैं अपने-आपमें एक होकर न कभी अपने-आपको सोच ही सकूँ, न देख ही सकूँ।"⁵ देश जैसे जाति, धर्म-संप्रदायों में विभाजित हुआ है, वैसे ही गरीब एवं अमीरों में भी बँट गया है। देश में व्याप्त गरीबी कमल को आंतरिक रूप से झँकझोर देती है, उसका संवेदनशील मन उसे समाज के लिए प्रेरणास्रोत है। उसके बड़े भाई उससे बिल्कुल विरुद्ध है। सामंतशाही एवं शोषक के प्रतिक महावीर को कमल यथार्थ का दर्शन करवाता है, "जिस देश के सिर्फ पाइण्ट फ़ोर प्रतिशत आदमी धनी हों, शेष सब गरीब हों, जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और

² रक्त कमल, पृष्ठ 25,26, लक्ष्मीनारायण लाल

³ रक्त कमल, पृष्ठ 28, लक्ष्मीनारायण लाल

⁴ लक्ष्मीनारायण ला का नाट्य-साहित्य : सामाजिक दृष्टि, पृष्ठ 92, डॉ. करुणा शर्मा

⁵ रक्त कमल, पृष्ठ 98, लक्ष्मीनारायण लाल

विलास के स्वर्ग में रहने वाले हों, शेष नंगे और भूखें हों, जहाँ सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढ़े - लिखे हों , शेष गँवार, अंध-विश्वासी और अचेतन हों - यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या है ?"⁶ सत्य तो है , केवल आर्थिक विषमता के कारण समाज का निम्न वर्ग सारे सुख-सुविधाओं से , शिक्षा जैसे मूलभूत हकों से वंचित रहा है।

कमल की लड़ाई शोषक बनाम शोषितों की है । सामाजिक विषमता धार्मिक , जातिय एवं आर्थिक स्वरूप की होती है । संविधान में अभिव्यक्त समानता को वास्तविक रूप से भारत में अवतरित करने के लिए डॉ. लाल निरंतर प्रयत्नरत रहे । 'रक्त' एवं 'कमल' दोनों का रंग लाल है, यही लाल रंग क्रांति का भी तो प्रतिक है। यह सामाजिक क्रांति कमल के माध्यम से डॉ. लाल देश में लाना चाहते हैं।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा लिखित नाटक 'एक सत्य हरिश्चंद्र' में धर्म द्वारा फैले आतंक , सत्ताधारीयों का पाखंड , समाज की प्रस्थापित प्रथा-परंपरा का आडंबर एवं विषमता का यथार्थ चित्रण किया है। प्राचीन भारत से वर्तमान युग तक धर्म के रक्षक हमेशा से ही सवर्ण एवं ब्राह्मण वर्ग ही रहा है। इसी वर्ग ने धर्म एवं पूजा-अर्चना के नियमों में जटिलताएँ उत्पन्न की। कारणवश दलित एवं निम्न वर्ण के लोग उच्च वर्ग से अलग होकर मूल प्रवाह से वंचित रह गए । यह वंचित वर्ग उच्च वर्ग से हमेशा अवहेलना सहता रहा । सवर्णों के त्यौहार , पूजा-अर्चना , शादी ,उत्सव जैसे समारोह से उन्हें वर्जित किया गया। उनकी बस्ती , कुएँ तक अलग रखे गये। उन्हें अस्पृश्य कहा गया।

'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक द्वारा मिथकों का संदर्भ लेते हुए डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक युग के शोषितों की त्रासदी उजागर करते हैं। इस नाटक के संदर्भ में पाल जेकब लिखते हैं, "इस कथा अभिनय को प्रस्तुत करने वाले लोग हैं वे जो सदियों से धर्म, जात-पाँत , नीच-ऊँच की बलिवेदी पर शक्तिशाली लोगों द्वारा शोषित ,दंडित और अनुशासित रहे हैं। इस प्रतारणा , शोषण और दंड का माध्यम कभी धर्म रहा है, कभी राजनीति।"⁷ यही वास्तव है कि कभी सत्ताधारी , तो कभी पंडित , कभी ठाकुर कई बार धर्म की आड़ से शोषितों के मन में भय निर्माण करते हैं, तब विश्वास के स्थान पर अंधविश्वास पनपने लगता है।

'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक की कथावस्तु गाँव के दृश्य से आरंभ होती है। मंच पर दो कुएँ दर्शाये हैं , वह भी अत्यंत सुक्ष्मता से बायीं ओर हरिजनों का कुआँ है और दायीं ओर सवर्णों का कुआँ है। एक प्यासा चमार जब सवर्णों के कुएँ पर पानी माँगता है , तब पुरोहित उसे दुतकारता है । नाटक के इस दृश्य से स्वतंत्र भारत के दलित वर्ग की वेदना सुक्ष्मता से चित्रित : अधोरेखित हुई है। सवर्णों द्वारा हरिजनों के साथ हुआ यह अन्यायी कृत्य संविधान के विरुद्ध है। संविधान में छुआछूत और अस्पृश्यता मानना कानूनी तौर से अपराध है, इसके बावजूद आधुनिक भारत में ऐसे घटनाओं की अनेक बार चित्रण होता है। भारतीय समाज की रचना वर्ण-व्यवस्था पर निर्धारित हुई है, संवैधानिक तत्वों के आधार पर देश के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्राप्त हुए हैं। परतंत्रता में देश में व्याप्त विषमता को मिटाना संविधान के सृजनकर्ता का स्वप्न था , परंतु स्वतंत्रता के बाद भी देश की सत्ता केवल उच्च वर्ण के हाथों में ही रही, अतः शोषितों का उत्पीड़न समाप्त ही नहीं हुआ । निम्न जाति का शोषण करने हेतु सत्ता एवं धर्म के अंधविश्वास का आश्रय लेकर सवर्ण सत्ताधारी कोई न कोई षड्यंत्र योजित करते ही हैं। प्यासे घुमंतू को दुतकारकर पुरोहित अपने माथे पर जल छिड़कता है, मानों अछूत की छाया तक निषिद्ध है।

⁶ रक्त कमल , पृष्ठ 38, लक्ष्मीनारायण लाल

⁷ एक सत्य हरिश्चंद्र , पृष्ठ 8, लक्ष्मीनारायण लाल

दलितों की वेदना वृद्ध के संवाद से उमड़ पड़ती है, "इ कैसा सुराज है भइया, इससे तो अंग्रेजी राज अच्छा रहा।"⁸ यह वास्तव अत्यंत कड़वा है कि स्वातंत्र्य के बाद भी देश की सामाजिक परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

देवधर गाँव का नेता है, साथ ही वह शोषक का प्रतिक भी है। नाटक का नायक लौका दलित युवक है, तथा समाज में परिवर्तन लाने में प्रतिबद्ध भी है। देवधर उसे अपना प्रतिद्वंद्वी मानता है। देवधर चुनाव में विजय हासिल करने के लिए लंबे - चौड़े वचन देता है, अपनी ओर से गाँव में संपूर्ण क्रांति लाने का वादा भी करता है। लौका देवधर के पाखंड को पहचानता है, लौका को प्रश्न है कि गाँव की क्रांति के लिए संपूर्ण गाँववासियों की मदद की आवश्यकता है, परंतु देवधर अपना नेतृत्व सहजता से किसी अन्य के हाथों जाने नहीं देगा। इसी समस्या का निदान करते हुए जीतन कहता है, "इसके लिए भीतर आग चाहिए। मैं पता लगा रहा हूँ, वह आग सिर्फ ऊँची जाति के लोगों में है। नीचे के लोगों में वह आग हजारों साल पहले कुचलकर बुझा दी गई है।"⁹ सोचने-विचारने की क्षमता शिक्षा एवं ज्ञान से बढ़ती है, परंतु हजारों वर्षों यह शूद्र वर्ग शिक्षा से वंचित रखा गया, कारणवश उनका वर्तमान एवं भविष्य दोनों अंधकारमय हुआ। वस्तुतः संविधान के शिल्पकार की मनीषा है, कि यह पीड़ित समुदाय जो युगों युगों से अज्ञान के अंधकार के समुद्र में गोते खा रहा है, शिक्षित होने के उपरान्त उनमें भी जागृति और आत्मविश्वास पैदा होगा। किन्तु, लोकतंत्र के बाद चुनाव के माध्यम से सत्ता केवल उच्च वर्ग के हाथों तक ही सीमित रही, फिर इस दलित वर्ग का किसी न किसी रूप में शोषण होता ही रहा।

लौका मिथकों की राजा हरिश्चंद्र की कथा को आधुनिक संदर्भों में नाटक द्वारा ग्रामीण प्रजा के सम्मुख प्रस्तुत करता है। देवधर राजनीति का दुरुपयोग कर ब्राह्मणों एवं शुद्रों के भीतर दंगे उत्पन्न करता है। लौका दोनों में फिर एक बार अहिंसा के मार्ग से शांति निर्माण करता है। लौका लोकरंगभूमि के सहयोग से अपने पात्रों द्वारा हरिजनों के विविध प्रकार से होते शोषण को उजागर करता है। पुराण कथा में विश्वामित्र की मदद से देवराज इंद्र हरिश्चंद्र की कठोर परीक्षा लेता है, अपनी इच्छानुसार हरिश्चंद्र को दंडित भी करते हैं। इंद्र सत्ताधारी वर्ग का और विश्वामित्र व्यवस्था का प्रतिक है। यह दोनों वर्ग अपनी इच्छानुसार हरिश्चंद्र रूपी सामान्य जनता का शोषण करने में ही वीरता का अनुभव करते हैं। लौका इस उत्पीड़ित जनसमुदाय का संघर्ष उजागर करता है, उसके नाटक के अन्य पात्र सदियों से सवर्णों की तानाशाही, अन्याय और हिंसा को सहते आये हैं।

लौका उच्च वर्ग से सोयी हुई जनता को जागृत करता है, धीरे-धीरे समाज को ऊँच-नीच वर्गों में विभाजित करने वाले देवधर के साथी भी लौका के विचारों से प्रेरित होते हैं। यह वास्तविक समाज क्रांति है, यही संवैधानिक मूल्यों की असली विजय है। लौका देवधर की दौंव-पेंच से बदलती राजनैतिक भूमिका का भेद उजागर करता है। लौका कहता है, "हरिश्चंद्र सदा अपने सत्य परीक्षा देता रहे और तुम परीक्षा लेते रहो ! मैंने इस नाटक में राजा बनकर देख लिया ; जब तक तुम हो, हम केवल बनाये ही जा सकते हैं, अपने आप कुछ नहीं हो सकते। पर अब बनने और होने का मर्म हमें मिल गया।"¹⁰

समाज में आज भी दलित वर्गों पर होते अत्याचारों की घटनाएँ अनेकोबार सुनने में आती हैं। यह हरिजन समाज अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ रहें, इसलिए चंद वर्ग ने भरकस प्रयास किया है। अपनी प्राचीन संस्कृति और उसकी परंपरा की विसंगतियों को डॉ. लाल ने 'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक द्वारा अभिव्यक्त किया है।

⁸ एक सत्य हरिश्चंद्र, पृष्ठ 19, लक्ष्मीनारायण लाल

⁹ एक सत्य हरिश्चंद्र, पृष्ठ 20, लक्ष्मीनारायण लाल

¹⁰ एक सत्य हरिश्चंद्र, पृष्ठ 77, लक्ष्मीनारायण लाल

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा लिखित नाटक 'गंगामाटी' में नारी शोषण एवं छुआछूत के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते हैं। मनुष्य के सहज जीवन पर सामाजिक मान्यता, धर्म का बंधन, श्रद्धा - अंधश्रद्धा, आर्थिक समस्या एवं प्रथा - परंपराओं का कड़ा पहरा रहता है। 'गंगामाटी' उसी व्यथा से जन्म लेता है। शिवानंद जैसे पाखंडी धर्म के रक्षकों द्वारा गंगा जैसी निरीह और सर्वार्थ से आदर्श युवती का भावनिक एवं मानसिक शोषण करता है। वस्तुतः संविधान में स्त्री शोषण, स्पृश्य-अस्पृश्यता के विरुद्ध कानून बनाया है। संवैधानिक मूल्यों में समानता एक महत्वपूर्ण मूल्य है, वास्तविक प्रत्येक मनुष्य के साथ मनुष्य जैसा व्यवहार करना ही मानवता है, परंतु भारत जैसे विशाल एवं प्राचीन संस्कृति के देश में युगों युगों से स्त्री प्रताड़ित हुई है, वैसे ही जात-पाँत, छुआछूत की प्रथा के कारण समाज के विशिष्ट मानवों का भी शोषण किया गया।

भारतीय ग्रंथों में लिखा गया है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है, उसका सम्मान किया जाता है वहाँ देवताओं का वास होता है। परंतु कथ्य और तथ्य भिन्न होता है, जहाँ नारी की लक्ष्मी के रूप में पूजा की जाती है, वहाँ नन्हीं नन्हीं कलियाँ माँ की पेट में ही नष्ट की जाती है, दहेज के लिए कई नववधूओं को जलाया जाता है, आये दिन बलात्कार, शारीरिक शोषण की खबरों से समाचार पत्रों के पन्ने भरे हुए पाए जाते हैं। 'गंगामाटी' नाटक की रचना सन् 1977 ई. में हुई, परंतु आज 21वीं शती में भी गंगा के भाँति कई नारियों को घरेलू एवं सामाजिक अत्याचारों से झुँझना पड़ता है। 'गंगामाटी' नाटक नारी एवं शुद्रों जैसे सामाजिक दृष्टि से अवहेलना हुए वर्ग की जीवंत व्यथा है।

गंगा एक सुशिक्षित युवती है, नदी के भाँति निर्मल एवं सदा आनंद से वह बहती है। गंगामाटी गाँव के धर्मशास्त्र की दृष्टि से गंगा अपराधी है, क्योंकि वह अछूतों के संग उठती-बैठती है, उनके घर का खाना खाती है। गंगा जन्म से ब्राह्मण है, परंतु कर्म से सच्ची मानव है। उसके इस अपराध का दंड उसके शुद्धीकरण में छिपा है। शिवानंद मंदिर के पुजारी है, साथ ही स्वयं घोषित धर्म रक्षक एवं धर्म व्यवस्थापक भी है। अतः गाँव के उच्च एवं दलित दोनों के मन में शिवानंद के प्रति भय है, संपूर्ण गाँव उनकी पूजा-अर्चना के बल से दबता है। शिवानंद संपूर्ण गाँव के सम्मुख गंगा की शुद्धि करते हैं और स्वयं की प्रतिमा अधिक उज्ज्वल करने के हेतु अनाथ गंगा का विवाह अपने अनपढ़ पुत्र देवल से कर उसका 'उद्धार' करते हैं। देवल विकृत है, बचपन से पिता द्वारा वह भी प्रताड़ित है। इसलिए वह पिता की धर्म साधना का विरोध कर तंत्र साधना का मार्ग चुनता है। ऐसे घर पर विवाह कर आयी गंगा अत्याचार समस्त अत्याचारों का मूक रूप से सहती है, फिर भी उसके उच्च विचारों का वह त्याग नहीं करती। कानूनी तौर पर अवैध घोषित हुई छुआछूत 'गंगामाटी' नाटक में प्रमुखता से लक्षित होती है। निम्नांकित संवाद इसे प्रखरता से दर्शाते हैं,

शंभु : ब्राह्मण कन्या, चमारों शुद्रों के घर उठती-बैठती है।

देवल : लोगों ने आँखों देखा है - उनके हाथ का छुआ खाती - पीती है

शंभु : राम राम राम ! हद कर दिया इसने !

देवल : बड़ा घमंड है इसे। रूप का, दिमाग का।

गोसाई : न आगे नाथ न पीछे पगहा ... बिलकुल आज़ाद है।

मालिक : इसका बाप क्या कम था, इसका बाबा क्या कम था ? याद है, जियाहो की पूजा में इसके बाबा ने शुद्रों का पक्ष लिया था।"¹¹

¹¹ गंगामाटी, पृष्ठ 5, लक्ष्मीनारायण लाल

गंगा का अंधविश्वासी पति अपनी शमशान पूजा के लिए गंगा की छोटी बहन कुसुम की बलि चढ़ाने के लिए हत्या करने का असफल प्रयत्न करता है। हमारा संविधान नर बलि एवं मनुष्य वध के खिलाफ है, संविधान किसी भी प्रकार के अंधविश्वास का समर्थन नहीं करता, संविधान नागरिकों को सचेत करना चाहता है, ऐसी अंधश्रद्धा के कारण देश का विकास रुक जाता है। धर्मान्धता, जाति-पाति के वर्चस्व के कारण देश की गिनती पिछड़े हुए देशों में की जाती है, यह कितना शर्मनाक है।

संपूर्ण 'गंगामाटी' नाटक में शोषण के विविध रूप यत्र - तत्र बिखरे हुए हैं। देवल और कमल की कोमल बाल्यावस्था का शोषण उनके पिता द्वारा हुआ है, गाँव की रूढ़िवादिता ने गंगा का शोषण किया, अंधश्रद्धा के कारण कुसुम का शोषण हुआ है, शुद्र जाति में जन्म होने के कारण मनोहर और चंदरा का शोषण हुआ है। चंदरा अपने शोषण का बदला पत्नी सीता को मार-पीटकर लेता है। इसप्रकार नाटक का प्रत्येक पात्र शोषित एवं उत्पीड़ित है। नाटक का सूत्रधार पुरुष इस शोषण को व्यक्त करता है,

"समझता था, ऊँची जाति और बड़े लोग ही नीची जाति, गरीब से इस तरह का अन्यायपूर्ण काम लेते हैं। पर यहाँ तो गरीब भी अपने से ज्यादा गरीब और मजबूर के साथ वही कर रहा है। सरकार और शासन का इन्हें कोई डर नहीं? सरकार ने तो सख्त क़ानून बना दिए हैं। पर असली शासन यहाँ अब भी उसी अंधविश्वास का है - पुरोहित पुजारी का नाम लेकर चंदरा ने सीता को क्यों धमकाया? वह क्यों चुप रह गई?"¹²

गंगामाटी गाँव रूढ़िवादी है, परंतु गंगामाटी गाँव संपूर्ण भारत देश का ही प्रतिक है। अनेक युगों से, परंपराओं से चलते आये संस्कार एवं परंपराओं की जड़े यहाँ की मिट्टी में गहराई तक पहुँची हुई हैं, परिणामस्वरूप पाप-भीरु, धर्म-भीरु भारतीय समाज के भीतर धर्म एवं नैतिकता का भय अंदर तक जकड़ा हुआ है। अपने भारतीय समाज का मूल केंद्रबिंदु धर्म ही रहा है, कारणवश अज्ञानता, अशिक्षा, मूढ़ता के फेरों में अटकी जनता को धर्म का भय दिखाकर उनका शोषण किया जाता है। धर्म के भय के कारण मनुष्य का सहज जीवन रुक सा गया है। देवल कहता है, "किसी भी मंत्र, पूजा-पाठ, ईश्वर से जल की प्यास नहीं बुझती। जो जितना सहज था उसे उतना की कठिन बना लिया।"¹³

जिस दिन समाज का केंद्र धर्म से मनुष्य में परिवर्तित होगा उस दिन भारत का वर्तमान एवं भविष्य वास्तविक सुखकर होगा। गाँव में बंद की गयी जिआहो की पूजा गंगा पुनः आरंभ करती है, यह पूजा सहज जीवन का प्रतिक है। जिस पूजा से शुद्रों को, स्त्रियों को वंचित रखा जाता है, उससे यह पूजा भिन्न है। जिआहो की पूजा का मंगल कलश गंगा, देवल, सीता, चंदरा, कमल सबके हाथों से लगता है। समाज में यह परिवर्तन आवश्यक है, जहाँ धर्म का कोई एक ही ठेकेदार न हो।

उपर्युक्त नाटकों द्वारा स्पष्ट होता है कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने लेखनी के माध्यम से समाज में व्याप्त कुप्रथा, जटिल परंपरा, धर्म के आचरणों की स्थापना और रूढ़ियों के आडंबरों का खुलकर विरोध किया। संवैधानिक मूल्यों की रक्षा के लिए डॉ. लाल अपने साहित्य के द्वारा अग्रसर रहें।

निष्कर्ष :

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित नाटक 'रक्त कमल', 'एक सत्य हरिश्चंद्र' और 'गंगामाटी' के माध्यम से भारतीय समाज में फैली दूषित परंपराओं का प्रखर विरोध किया। नाटक 'रक्त कमल' द्वारा गरीब एवं पिछड़े

¹² गंगामाटी, पृष्ठ 27, लक्ष्मीनारायण लाल

¹³ गंगामाटी, पृष्ठ 79, लक्ष्मीनारायण लाल

वर्ग के आर्थिक शोषण का दर्शन हुआ है। समाज में निहित जाति व्यवस्था , धर्म आडंबर और अंधश्रद्धा का विशेष रूप 'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में उभरकर आया है। 'गंगामाटी' नाटक के माध्यम से दलितों एवं नारी शोषण के विरुद्ध समाज को जागृत एवं सचेत किया गया है। इन नाट्यकृतियों का मूल उद्देश्य संविधान के मूल्य , उच्च विचारों की रक्षा एवं आदर करना ही है। समाज में समानता, अहिंसा एवं शांति प्रस्थापित होने के लिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने जिस उज्ज्वल भारत के स्वप्न के लिए भारतीय संविधान की रचना की उसका समाज के प्रत्येक स्तर पर उचित सम्मान करना प्रत्येक भारतीय नागरिक का परम कर्तव्य होगा ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. लाल लक्ष्मीनारायण , रक्त कमल, तृतीय संस्करण 1966 , राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली -6
2. लाल लक्ष्मीनारायण , एक सत्य हरिश्चंद्र , संस्करण 2013, राजपाल एन्ड सन्ज , नई दिल्ली -110006
3. लाल लक्ष्मीनारायण , गंगामाटी, द्वितीय संस्करण 2001. पीताम्बर पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लि. , करौल बाग , नई दिल्ली -110005
4. लाल लक्ष्मीनारायण , रंगमंच और नाटक की भूमिका, प्रथम संस्करण १९६८ नेशनल पब्लिशिंग हाउस , नई दिल्ली
5. लाल लक्ष्मीनारायण , रंगभूमि - भारतीय नाट्य सौंदर्य , नेशनल पब्लिशिंग हाउस , नई दिल्ली
6. रस्तोगी गिरीश , बीसवीं शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच, भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली
7. डॉ. त्रिपाठी नरेन्द्र , हिंदी नाटक के बदलते आयाम, विक्रम प्रकाशन , दिल्ली
8. डॉ. तनेजा जयदेव , हिंदी नाटक आज -कल, तक्षशिला प्रकाशन , नई दिल्ली
9. नवल हरीश, हिंदी नाटक - तीन दशक, देव प्रकाशन दिल्ली
10. डॉ. शर्मा करुणा, लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य साहित्य : सामाजिक दृष्टि , प्रथम संस्करण, २००२ , वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ११०००२, ISBN 81-7055-926-X
11. डॉ. लाल लक्ष्मीनारायण , पारसी-हिन्दी रंगमंच , संस्करण १९७१, राजपाल एन्ड सन्ज, कश्मीरी गेट , दिल्ली
12. प्रशांत कुमार पटेल , लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में सामाजिक समस्याओं का विवेचन , प्रथम संस्करण 2015, सरस्वती प्रकाशन , बौद्धनगर, नौबस्ता कानपुर -21

समतामूलक समाज के महान स्वप्न दृष्टा संत रैदास

प्रो. डॉ. रणजीत जाधव

हिंदी विभागाध्यक्ष,

कै. व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय,

बाभळगाव, ता. जि. लातूर

भूमिका:

जिस समय भारतीय समाज जातिवाद, अस्पृश्यता, छुआछूत, उँच-नीच, मिथ्याडम्बर, पाखंड, और रुढ़ियों में ग्रस्त था उस मध्ययुग में रैदास का अवतरण हुआ। रैदास भक्ति को व्यक्ति चेतना में आमूलचूल परिवर्तन करनेवाला एवं हृदय-परिवर्तन का मुख्य लक्ष्य लेकर चलनेवाले, निर्गुण भक्ति के अग्रदूत कबीर के समकालीन संत थे। समता और समाजसुधार के विचारधारा की मशाल जो कबीर ने जलाई थी उसे रैदास ने बड़ी दृढ़ता और विनयशील तेजस्विता से जनसामान्य तक पहुँचाने का काम किया। संत रैदास ने समाज के उपेक्षित पददलित, शोषित वर्ग में आत्मविश्वास भरकर श्रम को प्रतिष्ठा दिलाई। उनके अनुसार कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता बल्कि कर्म की श्रेष्ठता या हीनता उस व्यक्ति के मानसिकता पर निर्भर होती है। रैदास ने कर्म की सिद्धि को भक्ति के आदर्श से जोड़कर प्रस्तुत किया है। संत कबीर, रैदास, नानक, दादू इन संतों ने सिर्फ मनुष्य-समाज की सुख समृद्धि ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र का भी कल्याण चाहा है। रैदास जी की वाणी मनुष्य-जीवन की सार्थकता के साथ ही, समाज में फैले पाखंड मिथ्याचारों का भी जमकर विरोध करती है। मनुष्य की श्रेष्ठता उच्च जाति में जन्म लेने से नहीं होती बल्कि उसके कर्म से होती है ऐसा वह मानते थे। ईश्वर भक्ति में बाहरी दिखावटीपन कुछ काम का न होकर मन कि निर्मलता, सदाचरण और उपास्य के प्रति निष्ठा होनी चाहिए। रैदास जी की समाज चेतना का वैचारिक आधार मनुष्य का मनुष्य के प्रति सरोकार या मानवीय संबंध है।

रैदास ने वर्णाश्रम व्यवस्था को नकारकर सर्वधर्म समभाव के विचारों को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने का काम किया। कबीर के समान रैदास ने भी हिंदु-मुस्लिमों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया था। इन्होंने पुराण और कुरान अथवा राम-रहीम संबंधी चिंतनधाराओं के मूल तत्वों को खोजकर जन-जीवन के सम्मुख प्रस्तुत किया था जिससे इन दो धर्मों में परस्पर सहृदयता बढ़ी थी। उनका मानना था कि परमात्मा को मंदिर-मस्जिद की सीमाओं में बाँधना नहीं चाहिए, वह तो सर्वत्र व्याप्त है। राम-रहीम एक ही होकर सार्वदेशिक, सार्वकालिक सत्य-सत्ता है, जो हम सब के बीच विद्यमान है। उनके अनुसार-

रविदास उपजइ सभी इकं नूर ते, बाहमन मुल्ला सेख।

सभ को करता एक है, सब कूं एक ही पेख।।

राम और रहीम को उन्होंने अपने हृदय में ढूँढा और वहीं पर उन्हें वह मिले। रैदास ने जिस आदर्श समाज की कल्पना की थी, वह मानवीय चेतना पर आधारित समाज था। उनके स्वप्नों का संसार, समतावादी विचारधाराओं पर निर्भर है। उस समाज में छुआछूत, उँच-नीचता, रुढ़ी-परंपरा, अंधविश्वास, जातिभेद जैसी संकीर्णता नहीं थी। उनके समाज की संकल्पना मानवतावादी, समतावादी विचारधारा का पोषण करती है। रैदास

ने अपने संकल्पित समाज में सभी की स्वतंत्रता का ध्यान रखकर उसमें परस्पर मैत्री का भाव जगाया है, सभी को जियो और जीने दो के विचार से जोड़ा है।

मनुष्य जीवन की सार्थकता यही संत वाणी का मुख्य संदेश रहा है। आहार - निद्रा - भय, मैथुन के लिए जीना और मर जाना, पशु-योनि में जीने और मर जाने के समान मानकर संतों ने जीवन को बड़े उद्देश्य से जोड़कर मनुष्य के संसार में अवतरण की सार्थकता तलाश की है। कबीर, रैदास आदि संतों ने जन्म-मरण की इस संसार यात्रा में सार्थकता पर विचार करते हुए मनुष्य को निरर्थक काम-धंधों का त्याग कर सतमार्ग पर चलने का संदेश दिया है। जो मनुष्य जीवन की सार्थकता बड़े उद्देश्य या बड़े साध्य से जोड़कर नहीं जीता, उसका जीवन निरर्थक होता है। रैदास कहते हैं कि मनुष्य को संसार में उस तरह से रहना चाहिए जैसे जल में कमल रहता है। रैदास जीवन भर सत्य के मार्ग पर चलते रहें, उन्होंने सत्य-परिपालन में कोई समझौता नहीं किया। उन्हें ईश्वर और अपने जीवन के प्रति अटूट विश्वास था। सर्वजीवी चेतना को आत्मसात करने के कारन ही वे, पर दुःख कातरता से द्रवित-संवेदित होते हुए, करुणावतार बुद्ध की तरह सत्य के साथ अहिंसा को भी, जीवन सार्थकता में परम हेतु मानने लगे थे। श्रमावलम्बी जीवन को सार्थक मानते हुए उन्होंने समाज पर बोझ बने हुए परावलम्बी, मिथ्याचारी लोगों का विरोध किया। रैदास ने श्रम को ही ईश्वर स्वरूप माना था इसी कारण से उन्होंने अपने जीवन में श्रम से जुड़े हुए रोंपी और सुआ की कभी उपेक्षा नहीं की।

रैदास काशी के उस परिवेश में पले-बढ़े थे जो वर्णाश्रम व्यवस्था की जकड़बंदी से ग्रस्त था। उस समाज में रहकर रैदास ने वर्ण व्यवस्था का खुलकर विरोध करते हुए, जात-पाँत की अवधारणाओं पर कठोर प्रहार किया। रैदास कहते हैं कि उँच-नीच का विचार अथवा हीनता-श्रेष्ठता की अवधारणा, संकीर्णताजन्य है। जाति-पाँत के दायरों ने समाज को वर्गों में बाँटकर कमजोर किया है। उन्होंने अपने चिंतन और आचरण के बल पर मनुष्य को जन्मजात समानता की दृष्टि से देखते हुए, उँच-नीच संबन्धी सामाजिक विषमता को दूर करने का प्रयत्न किया है। साथ ही उन्होंने रूढ़ियों की जकड़बंदी हो अथवा शासन की दासता, वर्णाश्रम की अधीनता हो अथवा स्वैराचारी इन्द्रियों की उच्छृंखलता, राजनीतिक पराधीनता हो अथवा सामाजिक दमघोटू वातावरण, सभी प्रकार के परतंत्रता को हेय बताया है। रैदास का मानना था कि पराधीनता मानवीय चेतना को परावलम्बी बनाती है। इसीलिए पराधीनता को दृढ़ करनेवाला कोई भी विचार, धर्म-सम्मत नहीं हो सकता। जन्म से हीन और श्रेष्ठ बताने वाले सभी विचार, ऐसी ही धार्मिक संकीर्णता से पैदा हुए संकीर्ण विचार हैं जो जन्म को जाति की हीनता से जोड़ते हैं। रैदास के जीवन-संघर्ष से देखा जा सकता है कि उनकी मुख्य समस्या भक्ति की नहीं बल्कि समाज में व्याप्त उँच-नीच की भावना को मिटाने की थी। भगवान की भक्ति करने में उनका ज्यादा समय यही सिद्ध करने में बीत गया कि उन्हें भक्ति करने का धार्मिक और सामाजिक अधिकार है।

निष्कर्ष:

संत रैदास की समाज-चेतना का वैचारिक आधार है- मनुष्य का मनुष्य के प्रति सरोकार और प्रेम । बाह्याडंबर और-कर्मकांडों से मनुष्य का सहज धर्म कुंठित होता है। मनुष्य का हृदय निर्मल होना चाहिए। सच्चा व्यक्ति तो भक्ति के तत्व को जानने एवं उस पर आचरण करने से ही जाना जाता है। इसके लिए बुद्धि, विवेक का अनुसरण आवश्यक है। बुद्धि-विवेक के बिना आत्म-संयम और उसके बिना षड्-विकारों पर विजय संभव नहीं है और संयम-त्याग के बिना भोग-वृत्ति की तृष्णा समाप्त नहीं होगी, परिणाम स्वरूप स्मृति नष्ट

होती रहती है। जो बुद्धि-नाश का कारण बनती है। रैदास ने अपनी वाणी - ऊर्जा एवम् कृतित्व से अपना युगांतरकारी व्यक्तित्व रचा है। रैदास वाणी का प्रत्येक शब्द उनके विचार कर्म का पूरा बिम्ब प्रस्तुत करने में सक्षम है। दीपक की बाती बनकर रैदास ने स्वयं को निरंतर प्रज्वलित बनाए रखकर, अपने परिवेश को उजागर किया है। जैसे-

प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी, । जाकी अंग - अंग - बास समानी॥

प्रभुजी, तुम घन बन हम मोरा, । जैसे चितवन चंद चकोरा॥

प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती, । जाकी जोति बरै दिन राती॥

रैदास वाणी ने भारतीयों के हृदय में स्थान बनाया है। रैदास के दिखाएँ मार्ग पर चलकर ही मनुष्य का जीवन सार्थक हो सकता है।

संदर्भ:

१. संत रैदास : वाणी और विचार - डॉ. रमेशचंद्र मिश्र
२. संत गुरु रविदास वाणी - डॉ. बी. पी. शर्मा
३. गुरु रविदास- आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद

